ISSN-0971-8397

योजना

विशेषांक

अगस्त 2010 | विकास को समर्पित मासिक | मूल्य : 20 रुपये

मुद्रास्फीति प्रबंधन

विभिन्न मूल्य सूचकांकों के अनुसार वार्षिक मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

माह	डब्ल्यूपीआई		सीपीआई-आईडब्ल्यू		सीपीआई-यूएनएमई		सीपीआई-एएल		सीपीआई-आरएल	
	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10
अप्रैल	8.1	1.3	7.8	8.7	7.0	8.8	8.9	9.1	8.6	9.1
मई	8.9	1.4	7.8	8.6	6.8	9.7	9.1	10.2	8.8	10.2
जून	11.8	-1.0	7.7	9.3	7.3	9.6	8.8	11.5	8.7	11.3
जुलाई	12.4	-0.5	8.3	11.9	7.4	13.0	9.4	12.9	9.4	12.7
अगस्त	12.8	-0.2	9.0	11.7	8.5	12.9	10.3	12.9	10.3	12.7
सितंबर	12.3	0.5	9.8	11.6	9.5	12.4	11.0	13.2	11.0	12.0
अक्तूबर	11.1	1.5	10.4	11.5	10.4	12.0	11.1	13.7	11.1	13.5
नवंबर	8.5	4.8 अ	10.4	13.5	10.8	13.9	11.1	15.7	11.1	15.7
दिसंबर	6.1	7.3 अ	9.7	15.0	9.8	-	11.1	17.2	11.1	17.0
जनवरी	5.0		10.4		10.4		11.6		11.4	
फरवरी	3.5		9.6		9.9		10.8		10.8	
मार्च	1.2		8.0		9.3		9.5		9.7	
औसत	**8.4**		**9.1**		**8.9**		**10.2**		**10.2**	

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग, श्रम ब्यूरो और केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन

अ : अनंतिम

आईडब्ल्यू : औद्योगिक कामगार; यूएनएमई- शहरी श्रमिकेतर कर्मचारी; एएल : कृषि श्रमिक; आरएल : ग्रामीण श्रमिक

डब्ल्यूपीआई और सीपीआई पर आधारित मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियां

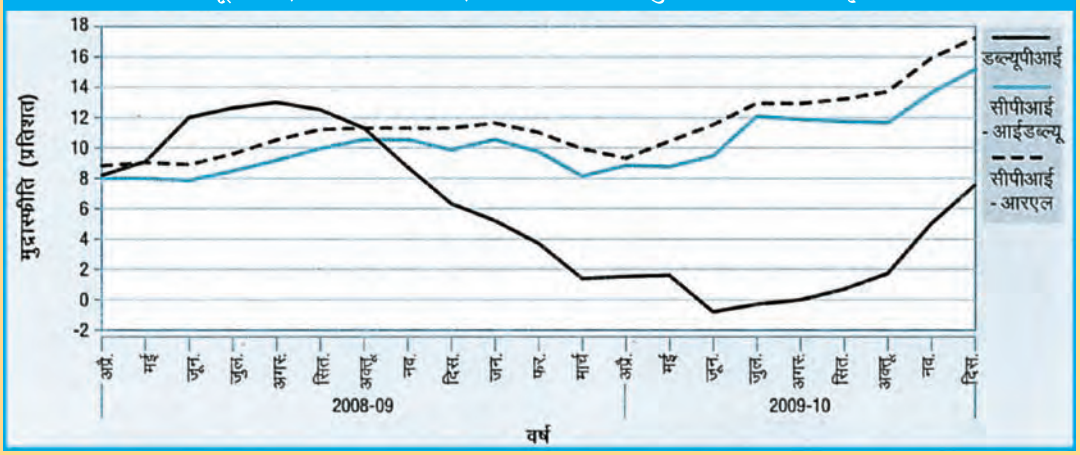

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2009-10

योजना

वर्ष : 54 ● अंक : 8 ● अगस्त 2010 ● श्रावण-भाद्रपद, शक संवत 1932 ● कुल पृष्ठ : 76

प्रधान संपादक
नीता प्रसाद

वरिष्ठ संपादक
राकेशरेणु

संपादक
रेमी कुमारी

संपादकीय कार्यालय

538, योजना भवन, संसद मार्ग,
नयी दिल्ली-110 001
दूरभाष : 23717910, 23096738
टेलीफैक्स : 23359578
ई-मेल : exeed.yojana@gmail.com
yojanahindi@gmail.com
वेबसाइट : www.yojana.gov.in
www.publicationsdivision.nic.in
a) dpd@nic.in
b) dpd@hub.nic.in

संयुक्त निदेशक (उत्पादन)
जे.के. चंद्रा

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन)
सूर्यकांत शर्मा
दूरभाष : 26100207, 26105590
फैक्स : 26175516
ई-मेल : pdjucir@gmail.com

आवरण : **साधना सक्सेना**

इस अंक में

संपादकीय	–	5
मुद्रास्फीति : पुनर्विचार मांगता प्रश्न	कमल नयन काबरा	6
नीतियों को मुद्रास्फीति की चुनौती	शशांक भिड़े	9
भारत में मुद्रास्फीति के प्रकरण	मानस भट्टाचार्य	11
मुद्रास्फीति और अर्थव्यवस्था की स्थिति	के. आर. सुदामन	13
मुद्रास्फीति : मिथक, वास्तविकता एवं नीतिगत एजेंडा	वी. षण्णमुखम देबज्योति डे	16
मुद्रास्फीति प्रवृत्तियां, कारण और नीतिगत विकल्प	एन.आर.भानुमूर्ति	20
मौद्रिक नीति और भावी चुनौतियां	रहीस सिंह	23
मुद्रास्फीति : कुछ पहलू	गिरीश मिश्र	26
कीमतें और मौद्रिक प्रबंधन	–	29
खाद्य मुद्रास्फीति : कारण और निवारण	रमेश चंद्र पी. शिनोज	33
अर्थव्यवस्था में खाद्य मुद्रास्फीति की स्थिति	बृजेश कुमार	37
बढ़ती महंगाई पर अंकुश के प्रयास	ओ. पी. शर्मा	40
मौद्रिक नीति और मुद्रास्फीति	प्रतिमा ऋषि	43
असंगठित क्षेत्र पर महंगाई का असर	अवधेश कुमार	45
भारतीय संविधान के साठ वर्ष	गरिमा मैहदीरत्ता	49
इतिहास का एक विस्मृत अध्याय की वापसी : फॉरवर्ड ब्लॉक	अतुल कुमार	52
रुपये को मिली नयी पहचान	–	54
क्या आप जानते हैं : आधार परियोजना	–	57
जहां चाह वहां राह : जगजगी केंद्रों से सबके लिए शिक्षा	सुजाता राघवन	59
शोधयात्रा : टूथब्रश में ही टूथपेस्ट	–	61
वक्फ बोर्ड ने लिखी मेवात में नयी तालिम की इबारत	–	63
मनरेगा में सामाजिक अंकेक्षण	अरविंद प्रकाश	64
सामुदायिक रेडियो और विकास	शैलेंद्र प्रताप	67
स्वच्छता अभियान तथा निर्मल ग्राम	राजेश्वरी	69
वर्षा जल संचयन से रोकिए बरसात का पानी	नरेन्द्र देवांगन	71

योजना हिंदी के अतिरिक्त असमिया, बांग्ला, अंग्रेजी, गुजराती, कन्नड़, मलयालम, मराठी, तमिल, उड़िया, पंजाबी, तेलुगु तथा उर्दू भाषाओं में भी प्रकाशित की जाती है। पत्रिका मंगवाने हेतु, नयी सदस्यता, नवीकरण, पुराने अंकों की प्राप्ति एवं एजेंसी आदि के लिए मनीआर्डर/डिमांड ड्राफ्ट/पोस्टल आर्डर 'निदेशक, प्रकाशन विभाग' के नाम से बनवा कर निम्न पते पर भेजें : व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार एवं विज्ञापन), प्रकाशन विभाग, ईस्ट ब्लाक IV, लेवल VII, आर.के. पुरम, नयी दिल्ली-110066 दूरभाष : 26100207, 26105590, तार : सूचनाप्रकाशन।

सदस्य बनने अथवा पत्रिका मंगाने के लिए आप हमारे निम्नलिखित बिक्री केंद्रों पर भी संपर्क कर सकते हैं :- सूचना भवन, सीजीओ कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110003 (दूरभाष : 24367260, 5610), हाल सं. 196, पुराना सचिवालय, दिल्ली-110054 (दूरभाष : 23890205) * 701, सी- विंग, सातवीं मंजिल, केंद्रीय सदन, बेलापुर, नवी मुंबई-400614 (दूरभाष : 27570686) * 8, एसप्लानेड ईस्ट, कोलकाता-700069 (दूरभाष : 22488030) * 'ए' विंग, राजाजी भवन, बंसल नगर, चेन्नई-600090 (दूरभाष : 24917673) * प्रेस रोड नयी गवर्नमेंट प्रेस के निकट, तिरुवनंतपुरम-695001 (दूरभाष : 2330650) * ब्लॉक सं-4, पहला तल, गृहकल्प, एमजी रोड, नामपल्ली, हैदराबाद-500001 (दूरभाष : 24605383) * फर्स्ट फ्लोर, 'एफ' विंग, केंद्रीय सदन, कोरामंगला, बंगलुरु-560034 (दूरभाष : 25537244) * बिहार राज्य कोऑपरेटिव बैंक भवन, अशोक राजपथ, पटना-800004 (दूरभाष : 2683407) * हॉल सं-1, दूसरा तल, केंद्रीय भवन, सेक्टर-H, अलीगंज, लखनऊ-226024 (दूरभाष : 2225455) * अंबिका कॉम्प्लेक्स, फर्स्ट फ्लोर, पाल्दी, अहमदाबाद-380007 (दूरभाष : 26588669) * के.के.बी. रोड, नयी कॉलोनी, मकान संख्या-7, चेनीकुटी, गुवाहाटी-781003 (दूरभाष : 2665090)

चंदे की दरें : वार्षिक : 100 रु. **द्विवार्षिक :** 180 रु.; **त्रैवार्षिक :** 250 रु.; **विदेशों में वार्षिक दरें : पड़ोसी देश:** 500 रु.; **यूरोपीय एवं अन्य देश :** 700 रु.

'योजना' में प्रकाशित लेखों में व्यक्त विचार लेखकों के अपने हैं। ज़रूरी नहीं कि ये लेखक भारत सरकार के जिन मंत्रालयों, विभागों अथवा संगठनों से संबद्ध हैं, उनका भी यही दृष्टिकोण हो। पत्रिका में प्रकाशित विज्ञापनों की विषयवस्तु के लिए 'योजना' उत्तरदायी नहीं है।

आपकी राय

विकास का आधार

योजना का जून 2010 अंक मिला। पढ़कर बहुत अच्छा महसूस हुआ। वास्तव में इंसान की तरक्क़ी का आधार शिक्षा है। मानव जब शिक्षित होगा तो अपने अधिकारों के प्रति जागरूक होगा। रंजीत अभिज्ञान द्वारा प्रस्तुत आंकड़ों से विभिन्न देशों में महिला साक्षरता दर के बारे में जानने को मिला। मलेशिया और इंडोनेशिया में मुस्लिम राष्ट्र होते हुए भी महिला साक्षरता दर 83 व 81 प्रतिशत है। क्या हिंदुस्तानी मुसलमान ही शिक्षा की दृष्टि से पिछड़े हुए हैं? अगर हम मेहनत न करेंगे और दूसरों को दोष देते रहेंगे तो यही स्थिति बनी रहेगी।

अगर हम दृढ़संकल्प व परिश्रम से काम लेंगे तो कोई चुनौती हमारे लिए कठिन नहीं होगी। शाह फ़ैसल इसकी ताज़ा मिसाल हैं। अंक पढ़ने के बाद मालूम हुआ कि भारत में मानव विकास की कई संभावनाएं हैं। ज़रूरत है तो सिर्फ़ सकारात्मक सोच की।

दिलावर हुसैन राशदी
मेहराबाद, जैसलमेर, राजस्थान

विश्व गुरु बनने की क्षमता

योजना का जून 2010 अंक अत्यधिक ज्ञानवर्द्धक लगा। कम पृष्ठों तथा कम मूल्य पर अधिकाधिक जानकारियां एवं हर बार विभिन्न प्रकार की उपयोगी सामग्रियों का पत्रिका में समावेश करना प्रशंसनीय है।

मेरे विचार से शिक्षा हमें त्रिकालदर्शी बनाता है। यह अतीत की असफलताओं के प्रति सचेत करता है, वर्तमान में समस्याओं के समाधान का विकल्प उपलब्ध करवाता है तथा भविष्य में सफलता, विकास तथा प्रगति के पूर्वानुमान की क्षमता देता है। शिक्षा मानव की आधारभूत आवश्यकता है। वर्तमान अर्थव्यवस्था में निस्संदेह इसकी प्रासंगिकता बढ़ी है। राष्ट्र में निहित राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक पिछड़ेपन के मूल में शिक्षा का अभाव है। शिक्षा की चुनौती चरित्र निर्माण करना और व्यावहारिक ज्ञान प्रदान करना है जिसके अभाव में आज भारत का युवा वर्ग हतोत्साहित है। स्त्री के राजनीतिक आरक्षण के समानांतर उसकी शिक्षा पर भी संवेदनशीलता प्रदर्शित करना होगा। इस अंक में मानव संसाधन विकास के सभी संभावित पहलुओं, चुनौतियों एवं उपायों पर संतुलित और उचित विमर्श किया गया है। यह भारत के 'विश्व-गुरु' बनने की क्षमता को स्पष्ट करता है। लेखों के लेखकों तथा आपको हार्दिक धन्यवाद। सदैव की भांति संपादकीय उत्कृष्ट लगा। 'क्या आप जानते हैं?', 'समाचार', 'स्वास्थ्य-चर्चा', 'मंथन' एवं 'नये प्रकाशन' जैसे नियमित स्तंभ ज्ञानवर्धक हैं।

प्रवीण कुमार शर्मा
दिलावरगंज, किशनगंज, बिहार
ई-मेल: prabinkr.s@gmail.com

ज्ञानवर्धक अंक

मानव संसाधन विकास पर केंद्रित *योजना* के जून अंक में शिक्षा से संबंधित विभिन्न विषयों पर स्तरीय आलेख दिए गए हैं। मदन मोहन का लेख 'उच्च शिक्षा : वर्तमान परिदृश्य और भावी चुनौतियां' तथा उमेश चतुर्वेदी का लेख 'ज्ञान आयोग की सिफ़ारिशें और मानव संसाधन' अत्यंत ज्ञानवर्धक लगे। भारत जैसे विशाल जनसंख्या वाले राष्ट्र में सबके लिए शिक्षा की व्यवस्था करना एक दुष्कर कार्य है क्योंकि आज भी विद्यार्थियों की तुलना में, शिक्षकों की संख्या अत्यंत कम है। अत: शिक्षा का प्रसार बढ़ाने हेतु आवश्यक है कि समुचित मात्रा में शिक्षकों की व्यवस्था की जाए।

'झरोखा जम्मू-कश्मीर का' के अंतर्गत इस वर्ष सिविल सर्विस के टॉपर रहे डॉ. शाह फैसल की मां श्रीमती मुबिना बेग़म का आलेख बहुत प्रेरणाप्रद है। डॉ. फ़ैसल को हार्दिक बधाई!

रमेश चंद्र शुक्ल
कानपुर, उ.प्र.

सार्थक पहल की आवश्यकता

योजना के जून अंक में तथ्यपरक लेखों ने सच्चाई से परिचित कराया। वास्तव में आज़ादी के 62 वर्षों बाद भी मानव संसाधन विकास के मूल उद्देश्य मृगतृष्णा बनकर रह गए क्योंकि विकासपरक कार्यों के समुचित ढंग से नियोजन व क्रियान्वयन के अभाव में विकेंद्रीकरण निचले स्तर तक न होने से मानव विकास सूचकांक में भारत का दर्ज़ा काफ़ी नीचे है। इस दिशा में एक सार्थक पहल करने की आवश्यकता है।

श्यामानंद पांडेय
गौरी बाज़ार, देवरिया, उ.प्र.

नशाखोरी एक गंभीर समस्या

योजना का 'मानव संसाधन विकास' पर केंद्रित अंक पढ़ा। 'क्या आप जानते हैं' के अंतर्गत 'मानव विकास सूचकांक' को जाना। ए.के. अरुण द्वारा लिखे 'बिहार में मानव विकास की संभावनाएं' शीर्षक लेख को पढ़ने के बाद पता चला कि बिहार में मानव विकास की क्या स्थिति और संभावनाएं हैं। स्वास्थ्य चर्चा के अंतर्गत 'नशा मुक्त समाज और नशाखोरी नियंत्रण' शीर्षक सुशील किशोर श्रीवास्तव का लेख नशा मुक्त समाज के लिए प्रेरित करता है। सचमुच में नशा आने वाली पीढ़ी को बर्बाद करती जा

रही है। यह एक गंभीर समस्या का रूप लेती जा रही है। नशामुक्ति या नशाखोरी नियंत्रण के लिए समाज के हर व्यक्ति को जागरूक होना पड़ेगा तब जाकर कहीं हम इस अभियान को सफ़ल कर सकते हैं। मंथन के अंतर्गत 'गुमराह होते युवा' में लेखक सरोज कुमार वर्मा की चिंता लाज़मी है। युवा ही हमारे देश के भविष्य हैं और अगर ये ही गुमराह और भटके रहेंगे तो हमारे देश की बागडोर किनके हाथों में होगी? इस बात पर समाज के बुद्धिजीवी लोगों, स्वयंसेवी संगठनों, समुदायों और सरकार को एक होकर एक कार्यक्रम के तहत आगे आना होगा, तभी हम अपने देश के भविष्य को यानी युवा वर्ग को बचा सकते हैं। अंक में छपे अन्य लेख भी अच्छे और ज्ञानवर्धक रहे। इसके लिए *योजना* की पूरी टीम को साधुवाद।

राजीव रंजन शर्मा
ई-मेल: srvchausa@gmail.com

रोज़गार के अवसरों का विकेंद्रण करें

योजना के संपादक से मेरा तहेदिल से अनुरोध है कि दिल्ली में बढ़ती भीड़भाड़ की समस्या पर कुछ विशेष लेख दें। दिल्ली भारत की राजधानी है। यहां पर रोज़गार के अवसर अन्य प्रांतों के अलावा (मुख्य मेट्रो शहरों को छोड़कर) अधिक हैं इसलिए लोगों का विभिन्न प्रांतों से यहां पर रोज़गार की तलाश में आना एक ज़रूरत है। यदि सरकार दूसरे राज्यों में और उनके मूल निवास स्थल के क़रीब रोज़गार के अवसर अधिक उपलब्ध कराए तो लोगों का राजधानी में रोज़गार की तलाश में आना कम हो जाएगा और दिल्ली में भीड़-भाड़ की समस्या से निज़ात मिलेगी। अपने प्रांत में रोज़गार के अवसर अधिक न होना और लोगों का रोज़गार की तलाश में अन्य प्रांतों से आना एक विकट समस्या है। अत: आपसे मेरा पुन: अनुरोध है कि दिल्ली की भीड़भाड़ एक समस्या को भरसक उजागर करें।

प्रवीण शर्मा
यमुना विहार, दिल्ली

मानव संसाधन विकास के लिए अन्यत्र भी देखें

योजना का जून 2010 अंक हस्तगत हुआ। अंक में शामिल लेख अच्छे लेकिन एकांगी हैं। प्राय: सभी लेखों का स्वर एक जैसा है और वे शिक्षा के विभिन्न पहलुओं पर केंद्रित हैं। इस तरह से कहा जाए तो पूरा अंक ही एकांगी है। क्या मानव संसाधन विकास का अभिप्राय केवल शिक्षा हासिल करना या कराना है? माना कि शिक्षा जरूरी है और भारत जैसे अर्धशिक्षित देश में शिक्षा का समुचित प्रसार अनिवार्य है लेकिन क्या शिक्षा के साथ-साथ खेल, विभिन्न प्रकार के शिल्पों, कलारूपों का ज्ञान विकास की परिधि से बाहर हो चुका है?

उल्लेखनीय है कि इसी साल हम देश में राष्ट्रमंडल खेलों की मेज़बानी कर रहे हैं और उसकी तैयारी में मशगूल हैं। ऐसा भी सुनने में आ रहा है कि इसके बाद हम एशियाई खेलों की पुन: मेजबानी करने के साथ-साथ सन् 2020 अथवा 2024 ओलंपिक खेलों की मेजबानी के बारे में भी सोच रहे हैं। लेकिन ऐसी मेजबानी का क्या?

क्या तैयारी का मतलब केवल सड़कें, पुल, फुटपाथ और स्टेडियम सजाना है? खेलों के प्रशिक्षण की क्या स्थिति है? खेल संघों की राजनीति भावी खिलाड़ियों को कितना बना और बिगाड़ रही है? गांवों और दूर-दराज के इलाकों से प्रतिभाओं को ढूंढने, आगे लाने और प्रशिक्षित करने का काम कौन और किस तरह कर रहा है? इन दूर-दराज के इलाकों में खेलों की प्रशिक्षण सुविधाएं क्यों नहीं उपलब्ध हो पा रही हैं? इस तरह के अनेक सवाल हैं जो मन को मथते हैं। *योजना* क्या इनके उत्तर देना चाहेगी या उत्तर ढूंढेगी?

हमारे सामने जो खेल प्रतिभाएं व्यक्तिगत स्पर्धाओं में उपलब्धियां हासिल करती हैं उनमें से ज्यादातर की तैयारी में सरकारी तंत्र का कोई हाथ नहीं होता। उनकी और उनके परिवार की प्रतिभा और संकल्प की वजह से ही वे आगे बढ़ पाती हैं। टीम स्पर्धाओं में चाहे वह हॉकी हो या फुटबॉल या टेनिस या एथलेटिक्स या कोई और खेल, जिनकी जिम्मेदारी कोई-न-कोई खेल संघ संभालता है, प्राय: अंतरराष्ट्रीय प्रतिस्पर्धाओं में हम फिसड्डी ही साबित होते हैं। जाहिर है कि खेल संघों में मामले में कहीं-न-कहीं बड़ी गड़बड़ी है। सरकार इस तरफ जितनी जल्दी देखे उतना ही बेहतर है।

चंद्रमाधव प्रसाद वर्मा
हरमू हाउसिंग कॉलोनी, रांची

योजना
आगामी अंक

सितंबर 2010 अंक

योजना का सितंबर 2010 अंक 'भारत में खेलों का विकास' पर केंद्रित होगा।

अक्तूबर 2010 अंक

योजना का अक्तूबर अंक 'खाद्य सुरक्षा' पर केंद्रित होगा।

टाटा मैक्ग्रा-हिल

सिविल सेवा मुख्य परीक्षोपयोगी पुस्तकें

नवीन प्रकाशन

ISBN	AUTHOR	TITLE	EDITION	PRICE
9780070144859	खुल्लर	* भूगोल मुख्य परीक्षा के लिए	1	–
9780070678880	लक्ष्मीकांत	* भारत की राजव्यवस्था	3	–
9780070703209	हुसैन	* भौगोलिक मानचित्रावली	2	–
9780070263741	सिंह	* GS मुख्य परीक्षा 2010 ट्रैंड एंड टिप्स	1	–
9780070704831	मिश्रा	* निबंध मंजुषा	2	–
9780070705449	पाण्डे	* प्राचीन भारत	1	–
9780070655515	सिंह	* भारतीय अर्थव्यवस्था	1	–
9780070263772	हुसैन	भौगोलिक मोडल्स	1	205
9780070667716	हुसैन	भारत का भूगोल	1	325
9780070263765	हुसैन	भूगोल वर्कबुक	1	199
9780070082540	हुसैन	संक्षिप्त भूगोल	1	325
9780070678873	हुसैन	भूगोल: पारिभाषिक शब्द संग्रह	1	195
9780070660106	मिश्रा	प्राचीन भारत का नवीन मूल्यांकन	1	225
9780070221758	पाण्डे	भारत में सामाजिक समस्याऐं	1	295
9780070264205	पाण्डे	समाजशास्त्र: मुख्य परीक्षा	1	350
9780070655645	पंत	अंतर्राष्ट्रीय संगठन	1	175
9780070659964	पंत	विश्व इतिहास	1	195
9780070679733	पंत	21वीं शताब्दी में अंतर्राष्ट्रीय संबंध	2	225
9780070144842	पंत	भारत की विदेश नीति	1	195
9780070090033	सिंह	सामान्य अध्ययन 60 दिनों में	1	255
9780070655492	सिंह	विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी	1	325
9780070151949	सिंह	विज्ञान एवं प्रौद्योगिकी का विकास	1	265
9780070679740	सिंह	संविधान एवं राजव्यवस्था	1	250
9780070660328	तारीख	आधुनिक भारत का इतिहास	1	195
9780070090118	टीएमएच	सामान्य ज्ञान मंजुषा	1	175
9780070153189	उदयभान	सांख्यिकी विश्लेषण: ग्राफ एवं आरेख	1	275

* 15 जुलाई 2010 से पुस्तक विक्रताओं के पास उपलब्ध होगी।

Tata McGraw Hill Education Pvt. Ltd.

East: Ritesh Kalian (09830239115); Anindya Mukherjee (09836425322); Md. Zahid Ali (09334135451), Jagdish Pd Dhyani (09471228334), Ranvijay Kumar (08809561425); Dharmendra Kumar Singh (09237328904)

North: Naveen Bagga (09810079532); Ashish Prashar (09717005237), Deepak Shrivastava (09794679797), Manish Varshney (09818062336), Prakash Sharma (09907486734)

West: Arup Raut (09371776450); Sachin Gajrawala (09898242368), Bhoopesh Bondle (09372524543)

For Sales and Publishing enquiries write to ***testprep@mcgraw-hill.com***

YH-8/10/4

संपादकीय

उदारीकरण का युग शुरू होने के पूर्व भारत में मुद्रास्फीति के दौर कई बार आए। प्राय: सभी प्रकार की वस्तुओं के अभाव के साथ-साथ विस्तारवादी मौद्रिक नीति के मिले-जुले प्रभाव को यदि सरल शब्दों में व्यक्त किया जाए तो कहा जा सकता है कि ढेर सारा पैसा थोड़े से सामान के पीछे पड़ा हुआ है। नब्बे के दशक के पूवार्द्ध में आर्थिक सुधारों की शुरुआत के फलस्वरूप त्वरित और तीव्र विकास के युग में भारत के प्रवेश करने के साथ ही सौभाग्य से उस दुखद अध्याय की इति हो गई। नियंत्रणकारी प्रशासकीय उपायों में शिथिलता का भी इसमें विशेष योगदान रहा। इसके बाद भी मुद्रास्फीति के दौर आते रहे हैं, परंतु इनके पीछे कोई विशेष कारण रहा होता है और नीतिगत परिवर्तनों का असर इन पर शीघ्र पड़ने लगता है।

परंतु वर्ष 2008-09 के प्रारंभ से ही मुद्रास्फीति का जो दौर इस बार शुरू हुआ है, वह थमने का नाम ही नहीं ले रहा। प्रारंभिक चरण में इसका कारण था, वैश्विक स्तर पर वस्तुओं और जिन्सों के मूल्यों में अचानक आई तेज़ी, जो भारतीय अर्थव्यवस्था में भी दबे पांव घुस आई थी। लगभग इसी समय ज़मीन-ज़ायदाद की क़ीमतों में भी तेज़ी आनी शुरू हो गई जिसके कारण मूल्य नियंत्रण के सारे प्रयास निष्प्रभावी और जटिल होते गए। भारतीय रिज़र्व बैंक ने ब्याज दरों में वृद्धि कर कई बार इसे नियंत्रित करने का प्रयास किया परंतु वैश्विक अर्थव्यवस्था में छाई मंदी के कारण उनका कोई विशेष प्रभाव नहीं हुआ। मुद्रास्फीति और गिरती विकास दर का पीछा करते हुए केंद्रीय बैंक ने वर्ष 2008-09 के उत्तरार्द्ध में गिरती विकास दर को थामने पर ज़ोर देना शुरू किया। यह चरण भी वर्ष 2009 के मई-जून महीनों में समाप्त हो गया।

अब मुद्रास्फीति में जो वृद्धि हो रही थी, वह जिन्सों की महंगाई के कारण हो रही थी। परंतु इस बार का दबाव घरेलू कारणों से आ रहा था। सरकार को इस बात का श्रेय दिया जाना चाहिए कि महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी कार्यक्रमों और अन्य सुविचारित कार्यक्रमों के माध्यम से पिछले कुछ वर्षों में ग्रामीण भारत की क्रयशक्ति में अच्छी वृद्धि हुई है। अत: अब तक भूख और ग़रीबी की यातना सह रहे गांव के लोगों में बेहतर जीवन की अभिलाषा कुलबुलाने लगी है। फलस्वरूप उनके खान-पान के स्तर में कुछ सुधार आया है। उनकी थाली में अब जो भोज्य पदार्थ दिखने लगे हैं उनके बारे में वे पहले सोच भी नहीं सकते थे। शायद यह भी एक कारण हो सकता है कि खाद्यान्न मुद्रास्फीति कम होने का नाम ही नहीं ले रही है।

वर्तमान परिदृश्य में संतोष की जो बात दिखाई दे रही है वह है विनिर्माण क्षेत्र में मूल्यों की मज़बूती। मांग की स्थिति में सुधार के कारण औद्योगिक गतिविधियां सुचारू रूप से जारी हैं। ज़मीन-ज़ायदाद की क़ीमतों में, विशेषकर दिल्ली, मुंबई, पुणे और जयपुर में पुन: सुधार होने लगा है। आशंका है कि आने वाले समय में इसमें और वृद्धि होगी।

उद्योग जगत की ऋण की मांग को पूरा करने के लिए रिज़र्व बैंक ने मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि यानी तरलता बनाए रखने के लिए तेज़ी से क़दम उठाए हैं। सकल घरेलू उत्पाद की विकास दर में आ रही तेज़ी और मुद्रास्फीति से मोटा-मोटा अनुमान लगाया जा सकता है कि बढ़ती अर्थव्यवस्था की आवश्यकताओं को पूरा करने के लिए कितने पैसे (ऋण) की ज़रूरत है। ऋण में वृद्धि की यह गति ही मुद्रास्फीति को और हवा देती है।

अत: इन सब मिले-जुले कारणों से संभावना यही दिखती है कि मुद्रास्फीति अभी कुछ समय तक यूं ही बनी रहेगी। इस बीच वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने कहा कि अगस्त तक मुद्रास्फीति की तकलीफ़ कुछ कम हो जाएगी। यह आशा पिछले वर्ष इसी अवधि की मूल्य स्थिति पर आधारित है।

योजना के प्रस्तुत विशेषांक में विभिन्न विषय के विशेषज्ञों ने मुद्रास्फीति के विभिन्न पहलुओं की गहराई से विवेचना की है। आशा है आप इन्हें उपयोगी पाएंगे। ❑

मुद्रास्फीति : पुनर्विचार मांगता प्रश्न

● कमल नयन काबरा

अन्य सभी क्षेत्रों की तरह ही अर्थ जगत और उसके सारे पहलू निरंतर बदलते और घटते-बढ़ते रहते हैं। यदि किसी विशेष परिस्थितिवश कोई पहलू थोड़े समय के लिए अपरिवर्तित रह जाता है तब भी इस प्रथम दृष्टया 'अपरिवर्तित' पहलू की सापेक्ष अथवा तुलनात्मक स्थिति बदल जाती है। अत: आर्थिक प्रबंधकारों और नीतिकारों के सामने विभिन्न दरों से परिवर्तनीय पहलुओं के बीच कई दृष्टियों से उपयुक्त, न्यायपूर्ण तथा टिकाऊ संबंध बनाए रखने की चुनौती बनी रहती है। यह स्थिति क़ीमतों के बारे में ख़ासतौर पर नज़र आती है।

अर्थव्यवस्था की एक ख़ास बात यह होती है कि सीधे-सीधे या घुमा-फ़िराकर, क़मोबेश हर बात, हर पहलू एक-दूसरे को प्रभावित करते हैं। क़ीमतें, चाहे वे किसी एक वस्तु, सेवा, उत्पादन में संसाधन आदि किसी भी वस्तु या सेवा की हों या सब क़ीमतों का प्रतिनिधित्व या प्रतिबिंबन करता उनका सूचकांक हो, आर्थिक पहलुओं के पारस्परिक प्रभावों के कारण ये प्रभावित होते रहते हैं। कुछ स्वैच्छिक प्रक्रियाओं के द्वारा भी इन क़ीमतों को प्रभावित होने से रोका जा सकता है। उदाहरण के लिए जनसंख्या, प्राकृतिक प्रभाव, लोगों की पसंद-नापसंद, उत्पादन, तकनीकी जानकारियां, राजकीय नीतियां, लोगों की प्रेरणा के स्रोत तथा उनके बीच के सापेक्ष अहमियत के रिश्ते बदलते रहते हैं। इनमें देश के बाहर से आए प्रभावों को भी शामिल करना पड़ता है। विभिन्न प्रकार के लेन-देन में विभिन्न क़िस्म की क़ीमतें निर्धारित होती हैं। प्रादेशिक स्तरों पर भी क़ीमतों में विविधता आती रहती है। इन सब प्रभावों को केवल मांग तथा पूर्ति नामक दो पक्षों में बांधना आमतौर पर प्रचलित रहता है। किंतु कई प्रभाव अल्पकालिक और सतही तो कई बहुत गहरे और दीर्घकालिक होते हैं। ये कई बार ख़ासकर एक गतिमय संदर्भ में मांग और पूर्ति दोनों पक्षों को प्रभावित करते हैं। उपर्युक्त बातों पर ध्यान देने की ज़रूरत बढ़ रही है। कारण स्पष्ट है। आजकल भारत में क़ीमतों का सवाल आम आदमी के स्तर पर शायद सर्वाधिक महत्वपूर्ण है। इसे या तो बहुत सीधा मांग और पूर्ति के नाम पर सपाट, स्पष्ट या बाज़ार की आज़ादी से जुड़ा मसला मान लिया जाता है और इस विषय में कुछ ख़ास हस्तक्षेप की संभावना से इंकार कर दिया जाता है अथवा दूसरी ओर इसे इतना उलझा हुआ मान लिया जाता है कि सार्वजनिक या निज़ी, समष्टिगत या व्यक्तिगत स्तर पर कुछ ठोस और शीघ्र नतीज़ा देने वाले हस्तक्षेपों का दायरा अति सीमित मान लिया जाता है। किंतु इस मसले पर ज़रूरत फौरी असर की होती है। क़ीमतों के विभिन्न रूपों को मापने और उनके बारे में पुख़्ता और नियमित जानकारी का अभाव भी क़ीमतों के बारे में कुछ तिलिस्मी भाव पैदा करते हैं। परंतु सबसे अहम बिंदु वह है जहां कुछ आर्थिक इकाइयों के लिए क़ीमतें, लागत या ख़र्च का हिस्सा होकर एक तरह की देयता प्रकट करती हैं। उनका मकसद या हित इन क़ीमतों के निचले स्तर पर रहने में होता है। वहीं साथ-साथ ये ही क़ीमतें कुछ आर्थिक इकाइयों के लिए आमदनी या पारिश्रमिक होती हैं और उनका एक ख़ास आकर्षण उनके ऊंचे स्तर से जुड़ा रहता है। वैसे उत्पादन प्रक्रिया तथा आर्थिक-संस्थागत-संगठनात्मक ढांचा आधुनिक विशालकाय अर्थव्यवस्था में ऐसा होता है कि अधिकांश लोग क़ीमतदाता या चुकाने वाले होते हैं और अपेक्षाकृत छोटी संख्या में लोग क़ीमत प्राप्तकर्ता होते हैं। किंतु इसी विशेषता का दूसरा पक्ष यह है कि क़ीमत प्राप्तकर्ता तबकों की आर्थिक ताक़त क़ीमत दाताओं के मुक़ाबले ज्यादा होती है। अर्थव्यवस्थाओं में, यहां तक की लोकतांत्रिक, राजनीतिक व्यवस्थाओं के तहत कार्यरत अर्थव्यवस्थाओं में भी, ज्यादा क्रियाशील धनी तबकों के पास निर्णयों को प्रभावित करने की ताक़त अपेक्षाकृत ज्यादा होती है। भारत में महंगाई की प्रवृत्तियों, प्रतिक्रियाओं, प्रभावों आदि को समझने में उपर्युक्त सामान्य बातों पर ध्यान देना उपयोगी होगा।

अब हम आजकल चर्चा का केंद्र बनी महंगाई के कुछ ख़ास पहलुओं पर नज़र डालें। सभी चीज़ों की क़ीमतों को शामिल करके क़ीमतों का सूचकांक बनाया जाता है जो देश की मुख्य वस्तुओं और सेवाओं की क़ीमतों के स्तर, उनके उतार-चढ़ाव की मात्रा और ऐसे परिवर्तन की रफ़्तार या दर को प्रकट करते हैं। हमारे देश के उपभोक्ताओं को तीन श्रेणियों में बांटकर उनके लिए क़ीमतों के तीन सूचकांक बनाए जाते हैं। इसके अलावा थोक स्तर पर

ख़रीदी-बेची जाने वाली चीज़ों और इस्तेमाल की जाने वाली सेवाओं का एक अलग से सूचकांक बनाया जा सकता है। इन सूचकांकों के साथ-साथ विभिन्न वस्तु समूहों के भावों का सूचकांक भी बनाया जाता है। भारत में इन चार सूचकांकों के आधार पर क़ीमतों की स्थिति का आकलन किया जाता है। स्पष्ट है कि किन्हीं दो अवधियों के बीच मूल्य सूचकांक में आए बदलाव को सीधे-सीधे उसके अंकों के परिवर्तन की मात्रा या संख्या के रूप में बताया जा सकता है। जैसेकि पिछले सप्ताह या महीने या साल में मूल्य सूचकांक में इतने अंकों की घटत या बढ़त दर्ज़ की गई। इस परिवर्तन का पहला आवधिक बिंदु जो चुना जाए उसी से क़ीमत परिवर्तन की मात्रा प्रभावित होगी। यह भी संभव है कि किन्हीं दो अवधियों के दौरान हुए परिवर्तन को प्रतिशत दर के रूप में मापा जाए। क़ीमत सूचकांक फलां मात्रा में बदला नहीं बताकर परिवर्तन की प्रतिशत दर बताने का प्रचलन भारत में आधिकारिक स्तर पर है। मुख्यत: मुद्रास्फीति की दर घटने का अर्थ यह नहीं है कि क़ीमतों का स्तर घटा है। आम आदमी का सीधा वास्ता क़ीमतों के स्तर से होता है। किंतु लगता है विशेषज्ञों को क़ीमतों का व्यवहार उनकी परिवर्तन दर से ज्यादा बेहतर समझ में आता है। यहां लगे हाथ यह भी कह दिया जाए कि हमारे यहां थोक मूल्य सूचकांक के परिवर्तन की दर को खुदरा बाज़ार या उपभोक्ता क़ीमतों को ज्यादा और अधिक बार प्रचारित किया जाता है। आमतौर पर ख़ासकर पिछले कुछ अरसे से तो विशेष रूप से उपभोक्ता बाज़ारों की क़ीमतें थोक बाज़ारों की क़ीमतों से ज्यादा तेज़ी से बढ़ी हैं।

एक बात और, रुपये-पैसे का महत्व और अर्थ उनके अंकित मूल्य स्तर से कम और उनकी असली क्रय शक्ति से ज्यादा होता है। मूल्य सूचकांक के आधार पर मुद्रा की वास्तविक क्रय शक्ति का ज़ायज़ा लिया जा सकता है। अत: कम-से-कम हर तीसरे-चौथे महीने हमारी सांख्यिकी संस्थाएं यदि सीधे-सीधे यह आकलन प्रचारित करें कि थोक बाज़ार में, खुदरा बाज़ार में, किसी एक आधार वर्ष या गणना के शुरुआती वर्ष के मुक़ाबले भारतीय मुद्रा की देश के आंतरिक बाज़ारों में क्रय-शक्ति कितनी रह गई है, कितनी घटी या बढ़ी है तो यह आंकड़ा सच्चाई का बखान या संदेश लोगों तक पहुंचाने के साथ-साथ उन्हें ज्यादा वाज़िब आर्थिक निर्णय लेने में भी सहायक हो सकता है। आजकल हमारी आर्थिक नीतियों की एक विशेषता है बाज़ार के खिलाड़ियों को स्वतंत्र रूप से निर्णय लेने देना ताकि उनके विवेक के अनुसार बिना नियंत्रण के, रोक-टोक के अर्थव्यवस्था की गतिविधियों का संचालन हो। यदि ऐसे हालात में मुद्रा के अंकित मूल्य के आधार पर निर्णय लिए जाते हैं न कि उसके वास्तविक मूल्य के आधार पर, तो यह अर्थव्यवस्था के निर्णयों, ख़ासतौर पर दीर्घकालिक निर्णयों को विवेकात्मक तथा सर्वाधिक उपयुक्त रहने के रास्ते में बाधाएं खड़ी करेगा। ख़ासकर छोटी आर्थिक इकाइयों के लिए जो ज्यादातर क़ीमत दाता या चुकाने वाली होती हैं न कि क़ीमत प्राप्तकर्ता।

इसी से जुड़ी क़ीमतों के व्यवहार का एक पहलू और ध्यान देने योग्य है। आज़ादी के बाद भारत में इक्के-दुक्के शुरुआती, ख़ासकर पहली योजना के एक-दो सालों को छोड़कर मूल्यों के सामान्य स्तर का सूचकांक लगातार अलग-अलग गति से ऊपर चढ़ता रहा है। कुछ मोटे आंकड़ों पर नज़र डालिए। सन् 1999-2010 की क़ीमतों पर निवल राष्ट्रीयता उत्पाद का सूचकांक सार 1950-51 के आधार वर्ष से 2007-08 में बढ़ते-बढ़ते क़रीब 13.5 गुना बढ़ गया। साढ़े तेरह गुना राष्ट्रीय आय में वृद्धि की जो प्रक्रियाएं चलीं उनके सम्मिलित प्रभाव में चालू क़ीमतों पर राष्ट्रीय आम सूचकांक इसी दौरान 413 गुना से ज्यादा ऊपर चढ़ गया। इस दौरान सन् 1980 तक और 1980 से 1989 तक कुछ कम राजकीय आर्थिक नियंत्रणों के तहत हमारी अर्थव्यवस्था संचालित होती थी। किंतु सन् 1990-91 के सुधारों के बाद बाज़ार के स्वनियमित मानी जाने वाली प्रवृतियों को अपने निज़ी विवेक से संचालित करने का दायरा अत्यधिक विस्तृत कर दिया गया। सन् 1990-91 से सन् 2008-09 तक अपरिवर्तित क़ीमतों पर निबल राष्ट्रीय आय 3.87 गुना और चालू क़ीमतों पर 10.26 गुना बढ़ी। यदि हम औद्योगिक मज़दूरों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को देखें तो इसमें इस दौरान काफ़ी तेज़ी आई। स्पष्ट है महंगाई या मुद्रा स्फ़ीति हमारे यहां कोई यदाकदा आने वाली मेहमान नहीं बल्कि हमारी चिरस्थाई साथिन है।

अब हमारी आर्थिक संवृद्धि प्रक्रिया के कुछ तत्वों पर नज़र डालें तो एक सीमित सीमा तक महंगाई की कभी मंथर गजगामिनी चाल तो कभी हिरणों जैसी लंबी कुलाचें मारती चाल समझ में आ सकती है। अर्थव्यवस्था में मुद्रा की मात्रा और उसकी चलन दर का अर्थव्यवस्था-व्यापी समष्टिगत मांग पर सीधा असर नज़र आता है। पिछले दो दशकों में भारत में व्यापक अर्थ वाली मुद्रा जिसे तकनीकी भाषा में एम-3 कहते हैं, 18 प्रतिशत सालाना दर से बढ़ी है। काले धन की अति सक्रियता भी व्यापार को प्रभावित करती है। पिछले 18 सालों में वास्तविक आय की औसत सालाना वृद्धिदर 6.2 प्रतिशत के क़रीब रही है। इस स्थिति को क़ीमतों पर दबाव बढ़ाने में सहायक माना जा सकता है। दूसरी ओर खेती तथा ग़ैर-खेती दोनों क्षेत्रों में तक़नीकी चयन ऐसा किया गया है कि औसत और सीमांत लागत दोनों बढ़े हैं। आयातित पूंजीगत साज़ो-सामान, मध्यवर्ती तथा मूलभूत वस्तुओं आदि का आयात बढ़ा है। ख़ासकर पश्चिम के धनी औद्योगिक देशों से जहां मज़दूरी की दर हमारे यहां से कई गुना ज्यादा है और वहां का मूल्य स्तर हमारे यहां से काफ़ी ऊंचा होता है। उन जैसे देशों में आय और संपत्ति के वितरण में असमानताओं में बढ़ोतरी को कोई भी झुठलाता नहीं है। स्वयं बीती अवधि की महंगाई अपने प्रभाव से ग़ैर-बराबरी वाले क्रय वितरण को बढ़ावा देकर आगे की अवधि में महंगाई बढ़ाने में सहायक बनती है। हमारी औद्योगिक, व्यापारिक, मौद्रिक, राजकोषीय नीतियों में भी समानतावर्धक तत्व अपेक्षाकृत क़मजोर रहे हैं। यहां तक कि काले धन, कर-चोरी, रिश्वतख़ोरी, पूंजीवादी विकास नीतियां, देश में प्रचलित और बढ़ता उपभोक्तावाद, राष्ट्रीय आय में सेवाओं के क्षेत्र का वस्तु उत्पादक आर्थिक क्षेत्र के मुक़ाबले ज्यादा होता अनुपात, सरकार की प्रशासनिक मूल्य नीति की अंतत: मूल्यवृद्धि की ओर बढ़ने की प्रवृत्ति अथवा मज़बूरी आदि अनेक कारक मुद्रास्फीति को बढ़ाने में सहायक साबित हुए लगते हैं। कम-से-कम तथ्य तो यही दिखाते हैं कि क़ीमत स्थायित्व की प्रवृत्ति कहीं भी नज़र नहीं आती। वैसे वैचारिक नीतियों के उद्देश्य निर्धारण आदि स्तरों पर क़ीमतों का सापेक्षिक ठहराव इतिहास बना चुका है। कहा यह भी गया है कि

5 प्रतिशत की मूल्यवृद्धि सहनीय है ख़ासकर प्रतिव्यक्ति अंकित मूल्य मौद्रिक आय के बढ़ते हुए स्तर के साथ क्योंकि मौद्रिक-भ्रम काफ़ी मज़बूती से जनमानस में जड़ें जमा चुका है। यह मंथर गति से बढ़ती महंगाई मुनाफ़े की दर को भी बढ़ाती है। कल की क़ीमतों पर आज के उत्पादन के लिए आवश्यक साज़ो-सामान नीची क़ीमत पर ख़रीदकर उत्पादित माल आने वाले समय में ऊंचे भाव पर बेचना मुनाफ़ा बढ़ाने वाला सौदा है। इस तरह आर्थिक बढ़त की मशीन का मोबिल है क़ीमतों का बढ़ना। यानी बढ़ती क़ीमतों को बढ़त के लिए प्रेरक तत्व माना जाता है।

यदि राजनीति-अर्थशास्त्र और शक्ति-संतुलन पर भी नज़र डालें तो यह भी निर्विवाद माना जाएगा कि आम आदमी के मुक़ाबले संसाधनयुक्त वर्ग का राजनीतिक दबदबा ज्यादा है। मुद्रास्फीति आय में मज़दूरी तथा स्वरोज़गारियों की आय के मुक़ाबले मुनाफ़े का हिस्सा तुलनात्मक रूप में ज्यादा बढ़ाती है। राष्ट्रीय आय के संगठित क्षेत्र में कर्मचारियों को मिले हिस्से के मुक़ाबले अधिशेष का अनुपात बढ़ने का आंकड़ा सीएसओ के राष्ट्रीय आय के हिसाब-क़िताब में साफ़-साफ़ दिखाया गया है। हमारे यहां संगठित श्रम के मुखर तबके को महंगाई भत्ता देकर उनके द्वारा संभव विरोध के स्वर को मंद कर दिया गया है। असंगठित तबक़े जो शहरों और गांवों में अधिसंख्यक हैं और वस्तुतः महंगाई जिनके हितों के ख़िलाफ़ होता है वे आज तक इतनी संगठित राजनीतिक ताक़त नहीं जुटा पाए हैं कि आर्थिक संतुलन सुदृढ़ करने वाले असली समावेशी विकास को बढ़ा पाएं। आजकल तो हालात ऐसे हैं कि कभी तेज़ तो कभी मंद गति से महंगाई के घोड़े भारतीय अर्थव्यवस्था के जनपथ को रौंदते जा रहे हैं।

पिछले एक-दो साल के अनुभव से स्पष्ट होता है कि खाद्यान्नों के दामों के बढ़ने की तेज़ रफ़्तार को धीमा करके खाद्य-सुरक्षा क़ायम करने के स्वीकृत लक्ष्य की ओर बढ़ना संभव था किंतु वह भी नहीं हो पाया। सच है कि मानसून की बार-बार दग़ाबाज़ी हमारी नियति बनी हुई है। किंतु इस तरह आई आपूर्ति की कमी को देश के भीतर उपलब्ध सरकारी आरक्षित भंडार को ज़ारी करके पाटा जा सकता था। सन् 2009-10 की आर्थिक समीक्षा में ठीक ही कहा गया है कि यदि आपूर्ति में महंगाईवर्धक कमी को आरक्षित भंडार को निकासी करके पाटा नहीं जाता है तो ये भंडार निरर्थक हैं ठीक उसी तरह जैसे फ़ागुन का मेह। इन दिनों दहाई के अंक में भुगती गई खाद्यान्नों और सामान्य मूल्य-स्तर की वृद्धिदर को अपरिहार्य तथा अनियंत्रित मानना किसी भी अर्थ में सही नहीं है।

इन सालों में हमारे यहां लोगों का आजीविका संकट रोज़गार के पुख्ता तथा सम्यक अवसरों के अभाव तथा उनकी गुणवत्ता में गिरावट के कारण गहराया है। अन्नोत्पादन तथा औसत अन्न उपलब्धता घटी है। सामाजिक सुरक्षा कवच नदारद है बहुजनों के लिए। इसलिए आज खाद्य सुरक्षा, शिक्षा का अधिकार, काम का अधिकार आदि के प्रायोजन महत्वपूर्ण होकर सर्वस्वीकृति की ओर बढ़ रहे हैं। इन सबको ठोस, साकार रूप देने में महंगाई नियंत्रण के उपायों का बहुत बड़ा हाथ हो सकता है, बशर्ते बाज़ार की तथाकथित ताक़तों की संभावित प्रवृत्तियों और उनके सद्व्यवहार के शुरू होने की संभावना और ऐसे नतीज़ों के साकार होने की अवधि के अनुमानित समय की घोषणा से आगे बढ़ा जाए। अनेक जटिल समस्याओं से ग्रस्त देश में किसी भी ख़ास क़िस्म का रूढ़िवादी आग्रह या दुराग्रह, जनपक्षीय हित साधना और संवैधानिक मूल्यों पर आधारित समाज के निर्माण में बाधाओं की दीवार खड़ी करते हैं। हमें तो वह बिल्ली चाहिए जो चूहे को पकड़े। जिस तरह बर्लिन दीवार को गिराया गया था, हमें भी नीतिगत रूढ़िवाद तथा लोचहीन नीति-निर्णयों की ऊंची दीवारों को गिराना होगा। रुपये के वास्तविक मोल में यथासंभव स्थायित्व अच्छे विकास पक्ष का लक्षण है।

यदि कुछ विकल्पों पर विचार करने की ज़रूरत है और एक राष्ट्रीय बहस इन बिंदुओं पर मुनासिब मानी जाती है तो हम केवल एक सुझाव के साथ इस आलेख का उपसंहार करना चाहेंगे। दक्षिण कोरिया ने अपने आर्थिक विकास तथा तीव्र गति औद्योगीकरण के शुरुआती चरण में आम आदमी के उपभोग में आने वाली खाद्य वस्तुओं के दामों को लंबे समय तक स्थिर बनाए रखा था। यह जनहित ही नहीं औद्योगिक विकास तथा अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में अपने निर्यात माल की मांग बढ़ाने के लिए भी हितकर साबित हुई। हमारे यहां 90 प्रतिशत से ज्यादा लोग असंगठित क्षेत्र से आजीविका पाते हैं। उनकी वास्तविक आय को महंगाई भत्ता देकर दरकिनार नहीं किया जा सकता है। अतः आम उपभोग की वस्तुओं और सेवाओं की एक ऐसी सूची बनानी चाहिए जिनकी क़ीमतें सरकार पूरे देश में एक समान और लंबे समय तक स्थिर रखे। इस तरह की क़ीमत नीति का उल्लेख संत कवि तुलसीदास तक ने रामराज्य की परिकल्पना के तहत किया। उनका एक दोहा है :

मणिमाणिक महंगे किये, सहंगा तृण, जल, नाज।
तुलसी ऐसे जानिए, राम ग़रीब नवाज़।।

तृण यानी घास उत्पादन में सहायक मध्यवर्ती वस्तु है। जल की भूमिका भी यही है। अनाज जीवनदायक, श्रमशक्ति के स्तंभ श्रमिक उपभोग की वस्तुओं की नुमाइश ही करते हैं। इन सब चीज़ों के दाम बांधे रखिए सारे देश में सबके लिए और मणि-माणिक, जो धनी तथा उपभोक्तावादी संस्कृति के उपासकों की उपभोग सामग्री की प्रतीक है, उनके दामों को स्वतंत्र रूप से गगनगामी होने दीजिए। इनके दामों में अलग-अलग प्रवृत्ति रखकर धनी वर्ग से ऊंची क़ीमतों के रूप में प्राप्त राशि का उपयोग आवश्यक चीज़ों की क़ीमत नीचे रखने के लिए की जा सकती है। वह भी एक दोहरी मूल्य नीति के साथ में क्रॉस-सब्सिडाईजेशन कराके। किंतु यह नीति अनाज़ तथा जीवनोपयोगी अपरिहार्य उपभोग वस्तुओं की दो क़ीमतें तय करके काला बाज़ारी को नहीं बढ़ाती है। निजी क्षेत्र के उत्पादक जीवनोपयोगी उत्पादन में कम हुई आय की भरपाई ग़ैर-ज़रूरी और विलासिता की वस्तुओं-सेवाओं की क़ीमतों को गगनोन्मुखी करके कर सकते हैं। यह कर नीति द्वारा भी किया जा सकता है। यह एक सुझाव पूरी और समन्वित मूल्यस्फ़ीति नीति का स्थान नहीं ले सकता है। मुख्य बात है इसके पीछे छिपी भावना और उसे लागू करने के तौर-तरीक़ों की पहचान। हमारे देश में सुपात्र, विवेकशील विशेषज्ञता का कोई टोटा नहीं है। केवल एक राजनीतिक निर्णय की दरकार है। फिर ऐसी नीतियों का ढांचा खड़ा होने में कोई बाधा नहीं रहेगी। ❑

(लेखक वरिष्ठ अर्थशास्त्री हैं और आईआईपीए, नयी दिल्ली में प्रोफ़ेसर रह चुके हैं।

ई-मेलः kamalnkabra@yahoo.co.in)

नीतियों को मुद्रास्फीति की चुनौती

● शशांक भिड़े

मुद्रास्फ़ीति की ऊंची दर उपभोक्ताओं की गृहस्थी, व्यापार और कुल मिलाकर अर्थव्यवस्था को अस्थिर बना रही है। मुद्रास्फीति दर दो अंकों में चल रही है, जिससे सामान्य उपभोक्ताओं की क्रय शक्ति कम-से-कम वर्तमान आय स्तर पर नहीं बढ़ रही है। अपेक्षाकृत काफ़ी लंबे अर्से तक मुद्रास्फीति दर सामान्य स्तर की रही और अब हम मुद्रास्फीति की ऊंची दर महसूस कर रहे हैं। जुलाई 2009 से मई 2010 तक औद्योगिक श्रमिकों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति की वार्षिक दर दो अंकों की रही है। पिछले पांच महीनों में जहां मुद्रास्फीति दर असाधारण रूप से तब भी ऊंची रही जब थोक बिक्री मूल्य सूचकांक का इस्तेमाल किया गया। यह ध्यान देने की बात है कि पिछले ढाई वर्षों के दौरान (जनवरी 2008 से मई 2010) मुद्रास्फीति दर में तीख़ा उतार-चढ़ाव आता रहा है। इसी अवधि में मूल्य स्थिति बहुत ऊंची दर से बदलकर ऋणात्मक मुद्रास्फीति बन गई और उसके बाद फिर से उच्च मुद्रास्फीति दर पर आ गई है। दोनों ही मामलों में अंतरराष्ट्रीय मूल्यों में परिवर्तन देश की अर्थव्यवस्था के लिए महत्वपूर्ण कारक बन गए। इससे कमज़ोर मानसून के रूप में घरेलू आपूर्ति कम हुई और यह लक्षण वर्ष 2009-10 की दूसरी छमाही में ज्यादा स्पष्ट थे। हाल की मुद्रास्फीति के समय मांग पक्ष के कारकों का महत्वपूर्ण प्रभाव रहा और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक संकट से पहले बड़ी मात्रा में विदेशी पूंजी देश में आई, जिससे भारतीय रिज़र्व बैंक को मुद्रा विनिमय दर में घट-बढ़ के प्रबंधन के लिए सक्रिय रूप से हस्तक्षेप करना पड़ा।

वर्ष 2007-08 और 2009-10 के दौरान मुद्रास्फीति का एक महत्वपूर्ण लक्षण यह रहा कि इसके कारण ईंधन और खाने-पीने की चीज़ें महंगी हो गईं। इनका व्यापक प्रभाव पड़ा। इस मामले में अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों ने मुद्रास्फीति को कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रखने की सकारात्मक भूमिका निभाई। वर्तमान मुद्रास्फीति ऐसे समय घटित हुई है जब मांग पूर्ति समान न होने के कारण बाज़ार की भूमिका अधिक महत्वपूर्ण रही है। कुछ भी हो, अब व्यापार नीतियां पहले के मुक़ाबले अधिक निष्कंटक हैं, विनिमय दर ज्यादा सुनम्य है, घरेलू बाज़ारों में प्रतिस्पर्धा बढ़ी है और मुद्रानीति मुद्राप्रसार से निपटने में अधिक सक्षम है। अगर ये बातें न होतीं, तो मुद्रास्फीति का असर और ज्यादा दिखाई देता। ऐसा नहीं है कि इस अवधि के दौरान मांग पक्ष को प्रभावित करने वाले कारक मौजूद नहीं थे। अंतरराष्ट्रीय संकट की अवधि के दौरान निजी क्षेत्र में गिरती हुई मांग का प्रभाव दूर करने के लिए राजकोषीय नीति की व्यापक भूमिका थी। मुद्रानीति उदार थी जिससे व्यवस्था में अधिक तरलता तब आ सकती थी जब उधार देने वालों में ज़ोखिम की आशंका बढ़ गई हो। इन राजकोषीय और मुद्रानीति संबंधी बातों का भी मुद्रास्फीति के असर पर प्रभाव पड़ा।

इस प्रकार से अर्थव्यवस्था के अंतरराष्ट्रीय और घरेलू पक्ष मूल्य परिदृश्य को प्रभावित कर रहे थे। समुचित नीतियां बनाकर इन सभी समस्याओं से निपटना था। यह सुनिश्चित करना ज़रूरी था कि ज़रूरी वस्तुओं की समुचित आपूर्ति बनी रहे और साथ ही यह भी ज़रूरी था कि मध्यम अवधि और दीर्घ अवधि तक की आपूर्ति की संभावनाओं के अनुकूल मांग बनाए रखी जाए।

वर्ष 2008-09 की अवधि से पहले के अंतरराष्ट्रीय संकट में अंतरराष्ट्रीय मंडियों में खाद्य पदार्थों की क़ीमतें तेज़ी से बढ़ने का असर पड़ा। जुलाई 2007 में जहां कच्चे तेल की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतें 70 डॉलर प्रतिबैरल थीं, वहीं अगस्त 2008 में यह बढ़कर 140 डॉलर प्रतिबैरल पर पहुंच गई। बताया गया कि ख़ासतौर से चीन और भारत में आर्थिक विकास की गति तेज़ हो जाने के कारण क़ीमतों में यह बेतहाशा वृद्धि हुई। ऊर्जा मूल्यों में बढ़ोतरी के कारण किसानों ने अनाज़ की जगह ऊर्जा वाली फ़सलें उगाना शुरू कर दिया। लेकिन वर्ष 2008 में अंतरराष्ट्रीय वित्तीय बाज़ारों में गिरावट आ गई। अंतरराष्ट्रीय व्यापार में मंदी पैठ गई और दिसंबर 2008 आते-आते कच्चे तेल की क़ीमतें घटकर 40 डॉलर प्रतिबैरल हो गईं। मुद्रा संकुचन की आशंका चर्चा का विषय बन गई जो मुद्रास्फीति की चुनौती के लिए नीति बनाने से कम महत्वपूर्ण नहीं। मार्च 2010 तक कच्चे तेल की क़ीमतों में फिर इज़ाफ़ा शुरू हो गया और अब ये 80 डॉलर प्रतिबैरल के स्तर पर आ गई है। पेट्रोलियम क्षेत्र में घरेलू मूल्यों पर अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों का असर सरकार की मूल्य नीति से प्रभावित होता है और पेट्रोल, डीजल, रसोई गैस और मिट्टी के तेल की क़ीमतें उसी के अनुसार तय होती हैं।

वर्ष 2009-10 की दूसरी छमाही में मुद्रास्फीति दर बढ़ने पर टिप्पणी करते हुए वर्ष 2009-10 के आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया कि कृषि उत्पादन में कमी की आशंका इस वर्ष दक्षिण-पश्चिमी मानसून से कम वर्षा के चलते हो सकती है और यह मुद्रास्फीति बढ़ाने के लिए प्रमुख रूप से उत्तरदायी है। इस सर्वेक्षण में उम्मीद ज़ाहिर की गई कि दिसंबर 2009 में 19.77 प्रतिशत के उच्चस्तर पर पहुंच जाने के बाद खाद्य मुद्रास्फीति घटेगी।

जनवरी 2010 से मई 2010 के बीच थोक मूल्य सूचकांक के आधार पर निकाली गई कुल मिलाकर वार्षिक मुद्रास्फीति दर 10 प्रतिशत के आसपास रही। यह नोट करने की बात है कि मार्च और जून 2009 के बीच थोक मूल्य सूचकांक आधारित वार्षिक मुद्रास्फीति दर वास्तव में दो प्रतिशत से नीचे रही थी। मुद्रास्फीति की यह कम दर नवंबर 2009 तक जारी रही, जब मुद्रास्फीति दर बढ़कर 5.5 प्रतिशत हो गई। आंकड़ों से घट-बढ़ की तेज़ रफ़्तार ज़ाहिर है। मुद्रास्फीति के प्रमुख चालकों की भूमिका तब स्पष्ट हो जाती है जब हम क्षेत्र विशेष की क़ीमतों पर विचार करें। जैसाकि पहले भी कहा

गया है, खाद्य पदार्थों और ईंधन की क़ीमतों ने वर्ष 2008 से 2010 तक की कुल मिलाकर मूल्य सूचकांक दर में उतार-चढ़ाव लाने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाई। इससे यह भी संकेत मिलता है कि इन क्षेत्रों में मांग पूर्ति के बीच असंतुलन की बड़ी भूमिका है और कुल मिलाकर सामान्य मांग बढ़ने के कारण होने वाली मुद्रास्फीति अमहत्वपूर्ण हो जाती है। अगर इन चुनौतियों का सामना करने में अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों से मदद नहीं मिलती तो अनाज और ईंधन की क़ीमतों में वृद्धि आम महंगाई का कारण बन जाती है।

जुलाई 2009 से मई 2010 तक की अवधि के दौरान श्रमिकों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की दर में वृद्धि दो अंकों में बनी रही। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में खाने-पीने की चीज़ों को अन्य जिंसों के मुक़ाबले ज्यादा महत्व दिया गया। मूल्य वृद्धि के इस परिदृश्य पर कोई कैसे भी नज़र डाले, ज़ाहिर होगा कि पिछले 6 से 8 महीनों के दौरान महंगाई में काफ़ी बढ़ोतरी हुई है। दालें, आलू जैसी सब्जियों और चीनी, अंडा, मीट मछली तथा दूध जैसे खाद्य पदार्थों की क़ीमतें बहुत ज्यादा बढ़ी हैं। इनमें से कुछ जिंसों की मूल्य वृद्धि पिछले साल कम वर्षा के कारण आपूर्ति में कमी होने के चलते भी हो सकती है। लेकिन नीतिगत प्रयासों का प्रयोजन यह सुनिश्चित करना रहा है कि बाज़ार प्रतिस्पर्धी बने रहें और सार्वजनिक वितरण व्यवस्था जैसे सुरक्षा तंत्र कुशलता के साथ काम करते रहें। साथ ही अंतरराष्ट्रीय मंडियों तक पहुंच भी बाधारहित बनी रहे।

अकसर कहा जाता है कि हमें एक स्थिर व्यापार नीति की जरूरत है ताकि पूर्तिकर्ता और उपभोक्ता लंबी अवधि के परिदृश्य में व्यापार फ़ैसले कर सकें। जहां तक कृषि उपज और ख़ासतौर से अनाज़ उत्पादों का सवाल है, हमारा रवैया आत्मनिर्भरता का रहा है। हमें जहां घरेलू उत्पादन क्षमता बढ़ाना ज़रूरी है, वहीं अंतरराष्ट्रीय आपूर्ति तक पहुंच बनाए रखने की भी ज़रूरत है और घरेलू उत्पादकों को अंतरराष्ट्रीय मंडियों के फ़ायदे भी दिलाने हैं। ज़रूरत इस बात की है कि उत्पादकता में सुधार किया जाए ताकि हमारे उत्पादक अंतरराष्ट्रीय मंडियों में प्रतियोगिता करने में सक्षम साबित हों।

पेट्रोलियम पदार्थों के मामलों में भी दीर्घावधि दृष्टिकोण अपनाने की ज़रूरत जान पड़ती है। अनाज़ और ईंधन जनित मुद्रास्फीति संयोग की बात हो सकती है लेकिन इससे ज़ाहिर हो जाता है कि हमें इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में लंबी अवधि तक के लिए क़ारगर रवैया अपनाने की ज़रूरत है। इसमें कोई शक नहीं कि हमें ग़रीबों को वाजिब दरों पर ज़रूरी चीज़ें उपलब्ध कराने के लिए एक प्रभावी सार्वजनिक व्यवस्था की ज़रूरत है। लेकिन ऐसी स्थिति से बचना भी ज़रूरी है जब हमें अंतरराष्ट्रीय मंडियों में अपना अनाज़ ग़ैरवाजिब दरों पर बेचना पड़े। यह भी एक विरोधाभासी स्थिति है कि ऐसे समय भंडारों में अनाज़ भरा पड़ा है जब क़ीमतें चढ़ रही हैं। हमें उन क्षेत्रों में संसाधन लाने की ज़रूरत है जहां आपूर्ति रुक सकती है और इन संसाधनों को कुछ ही क्षेत्रों तक सीमित रखना वांछनीय नहीं होगा। ज़रूरत है कि ज्यादा मात्रा में सब्ज़ियां उगाई जाएं क्योंकि यह ऐसी जिंसें हैं जिन्हें जल्दी खराब होने के कारण आयात नहीं किया जा सकता।

इसी तरह पेट्रोलियम क्षेत्र भी एक गंभीर चुनौती वाला क्षेत्र है। औसत और दीर्घ अवधि में ऊर्जा की मांग बढ़ती जाएगी। हमें ऐसी नीतियों की ज़रूरत है जो ऊर्जा के कुशल उपयोग को प्रोत्साहन दें। मिट्टी के तेल और डीजल जैसे क्षेत्रों में, जहां संसाधनों का अकुशल उपयोग होने की आशंका है, हमें सब्सिडी के लाभों को प्रभावशाली ढंग से लक्षित समूहों तक पहुंचाना है। इन ऊर्जा स्रोतों की आवश्यक प्रकृति को ध्यान में रखते हुए हमें ग़रीबों के लिए एक प्रभावी सुरक्षा तंत्र बनाने की ज़रूरत है। लेकिन उपभोक्ता को सब्सिडी के जरिये राहत देना लंबी अवधि तक मुश्किल होगा और हमें जल्दी-से-जल्दी आपूर्ति व्यवस्था सुधारनी होगी। ऐसे समय में जब ईंधन पर काफ़ी ज्यादा सब्सिडी दी जा रही है, उन्हें विनियमन से मुक्त करना क़ीमतों में बेतहाशा वृद्धि करने जैसा होगा। लेकिन विनियमन के जरिये मिलने वाले परिणाम लंबी अवधि तक प्रभावी होंगे। साथ ही, इस बात की भी ज़रूरत है कि पेट्रोलियम क्षेत्र में ऊंची कर व्यवस्था की ज़रूरत है और इसे पारदर्शी बनाया जाए। अगर ऊर्जा के इस्तेमाल में कुशलता लाने के उपाय सफ़ल न हुए, तो ये सरकार के लिए सिर्फ़ राजस्व बढ़ाने के स्रोत ही साबित होंगे।

पिछले दो वर्षों में बढ़ती हुई मुद्रास्फीति से यह बात सामने आ गई है कि खाद्य पदार्थों और ऊर्जा के क्षेत्रों में मांग और पूर्ति का संतुलन बनाना बहुत महत्वपूर्ण है। सरकार के पास अनाज़ के पर्याप्त भंडार हैं जो असुरक्षा से बचाव करने वाले साबित हुए हैं। ऊर्जा के मामले में अदायगी का अधिक सुरक्षित संतुलन सुरक्षा का स्रोत रहा है। अल्प अवधि के नीतिगत उपायों का उद्देश्य तरलता प्रबंधन और ज़माख़ोरी तथा सट्टेबाजी रोकने तक सीमित रहा है। लेकिन हमें ऐसे लंबी अवधि के उपायों की भी ज़रूरत है जो अर्थव्यवस्था में पूर्ति तंत्र में सुधार लाएं और जब भी मांग और पूर्ति में संतुलन बिगड़े, तो तुरंत प्रभावी साबित हों तथा मुद्रास्फीति के दुष्प्रभाव रोक सकें। ❑

(लेखक राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्र एवं नीति अनुसंधान केंद्र पूसा, नयी दिल्ली में निदेशक एवं वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं।

ई-मेल : sbhide@ncaer.org

अपने लेख हमें ई-मेल करें

आप हमें अपने लेख और पत्र ई-मेल भी कर सकते हैं। ई-मेल करने इसके लिए कृतिदेव फांट इस्तेमाल करें और वर्ड ओपन फाईल exeed.yojana@gmail.com अथवा yojanahindi@gmail.com पर भेजें। एक से अधिक लेखकों के नाम केवल विशेष शोध लेखों पर ही दें। जिन रचनाओं के साथ मौलिकता का प्रमाणपत्र संलग्न नहीं होगा वे स्वीकार नहीं की जा सकेंगी। रचना के प्रकाशन के संबंध में किसी प्रकार का पत्र-व्यवहार अथवा फोन न करें। विशेष अवसरों के लिए लेख तीन माह पूर्व प्राप्त हो जाने चाहिए। रचनाओं के साथ यथासंभव प्रासंगिक चित्र भी भेजें। डाक से भेजे जाने वाले लेखों की एक प्रति सीडी में भी भेजें। वापसी के लिए कृपया टिकट लगा और पता लिखा लिफ़ाफ़ा संलग्न करें।

– वरिष्ठ संपादक

भारत में मुद्रास्फीति के प्रकरण

● मानस भट्टाचार्य

भारत में परंपरा से मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण आपूर्ति संकट, सूखा और उनके कारण खाद्य पदार्थों की वस्तुओं के मूल्य में होने वाली वृद्धि रहा है; या फिर कच्चे तेल के अंतरराष्ट्रीय मूल्यों में वृद्धि के कारण ऐसा होता रहा है। यदा-कदा मुद्रास्फीति में मांग के दबाव की छाया भी दिखाई देती है। आमतौर पर वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के फलस्वरूप सरकारी कर्मचारियों के वेतन में हुई वृद्धि को भी इसका कारण बताया जा रहा है। यदि घरेलू और बाहरी कारण एक ही समयावधि में घटित हों तो स्थिति और बिगड़ सकती है। यहां यह याद दिलाना उचित होगा कि वर्ष 1979-81 की मुद्रास्फीति में तेज़ी मुख्य रूप से अंतरराष्ट्रीय तेल मूल्यों में वृद्धि और घरेलू कृषि क्षेत्र को नुक़सान पहंचाने वाले सूखे के मिले-जुले असर से आई थी।

नब्बे के दशक के प्रारंभिक वर्षों में भारत को दोहरे अंकों की मुद्रास्फीति का सामना करना पड़ा था। उस समय खाड़ी संकट के मद्देनज़र विश्वभर में तेल के मूल्यों में वृद्धि के कारण तेल के आयात मूल्यों में आई तेज़ी ही मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण थी। यह वह समय था जब कई वर्षों तक लगातार कृषि उत्पादन संतोषजनक नहीं रहा था जिससे आपूर्ति का संकट पैदा हो गया था। भारी राजकोषीय घाटे और मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि से समस्या और भी विकट हो गई थी। आर्थिक सुधारों के कारण अवमूल्यन में आई तेज़ी से भी आयात महंगा हो गया था।

इस संकट का सामना करने के लिए जो नीतिगत उपाए किए गए उनमें मौद्रिक नीति को सख़्त बनाना, सरकार द्वारा जारी किए जाने वाले तदर्थ राजकोषीय देयकों पर रोक लगाना ताकि सरकारी लेनदारी पर लगाम लगाई जा सके और अभावों को दूर करने के लिए आयात को उदार बनाया जाना शामिल थे।

वर्ष 2000 से शुरू होने वाले दशक में भारत को दोहरे अंकों की मुद्रास्फीति का सामना नहीं करना पड़ा। इस दशक में मुद्रास्फीति 8 से 9 प्रतिशत के बीच सीमित रही। वर्ष 2007-08 तक औसत वार्षिक मुद्रास्फीति की सर्वाधिक वृद्धिदर का अनुभव वर्ष 2000-01 के दौरान हुआ जो 7.2 प्रतिशत थी। उस वर्ष भी इसके लिए मुख्य रूप से ईंधन, ऊर्जा और तेल समूह ही उत्तरदायी थे। जिनका औसत वार्षिक मुद्रास्फीति में 28.5 प्रतिशत वृद्धि दर्ज़ की गई थी।

उच्च मुद्रास्फीति का अगला दौर वर्ष 2008-09 के दौरान आया जब औसत वार्षिक मुद्रास्फीति की दर 8.41 प्रतिशत दर्ज़ की गई। इसका प्रमुख कारण था प्राथमिक वस्तुओं के मूल्यों में तीव्र वृद्धि जो 10.06 प्रतिशत तक पहुंच चुकी थी। विनिर्मित (औद्योगिक) उत्पादों के मूल्यों में भी अप्रत्याशित वृद्धि हो रही थी जो इस अवधि में 8.10 प्रतिशत तक पहुंच चुकी थी। इस दशक में यह सर्वाधिक वृद्धि थी। ईंधन की क़ीमतें ऊंची थीं पर अधिक ऊंचाई पर नहीं थी। यहां यह याद रखना होगा कि वर्ष 2008-09 का वर्ष मंदी का वर्ष था। पूर्व के तीन लगातार वर्षों में 9 प्रतिशत से अधिक की विकास दर हासिल करने के बाद वर्ष 2008-09 में विकास दर गिरकर 6.7 प्रतिशत पर आ गई थी। इस दौरान संयोग से कुछ अन्य कारक भी साथ जुड़ गए। पहला, प्राथमिक क्षेत्र की विकास दर वर्ष 2007-08 के 4.6 प्रतिशत से गिरकर वर्ष 2008-09 में 1.6 प्रतिशत पर आ गई। दूसरे, छठे वेतन आयोग की प्रथम किस्त का भुगतान और बढ़ गया और तीसरे, आयात की मात्रा और आयात के मूल्यों में तीव्र वृद्धि देखी गई। आयात का इकाई मूल्य सूचकांक वर्ष 2007-08 के 210 से बढ़कर 2008-09 में 239 तक पहुंच गया। आयात की मात्रा सूचकांक भी 218 से बढ़कर 262 तक पहुंच चुका था (आधार वर्ष 1999-2000 =100)। धान के न्यूनतम समर्थन मूल्य में भारी वृद्धि हुई थी जो 2007-08 के 645 रुपये प्रति क्विंटल से बढ़कर वर्ष 2008-09 में 850 रुपये प्रति क्विंटल तक पहुंच चुका था। भारत सरकार की वर्ष 2008-09 की आर्थिक समीक्षा के अनुसार वर्ष 2008-09 में प्राय: प्रत्येक फसल के न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में लगभग 30 प्रतिशत या उससे भी अधिक की वृद्धि हुई थी।

प्राथमिक वस्तुओं में खाद्यान्न मुद्रास्फीति 8 प्रतिशत थी जोकि पिछले पांच वर्षों में सर्वाधिक थी। ग़ैर-खाद्यान्न वस्तुओं की मुद्रास्फीति भी 11.2 प्रतिशत की ऊंचाई पर थी जो पिछले पांच वर्षों में दूसरी बार इस ऊंचाई तक पहुंची थी। खनिजों की मुद्रास्फीति भी 34.9 तक पहुंची थी। यह भी पिछले पांच वर्षों में दूसरी सर्वाधिक वृद्धिदर थी। विनिर्मित उत्पाद वर्ग में खाद्य उत्पादों का पलड़ा सबसे भारी है जिसकी मुद्रास्फीति में 10 प्रतिशत की तीव्र वृद्धि दर्ज़ की गई जो पिछले पांच वर्षों में सबसे अधिक रही। इसी प्रकार रसायन और रासायनिक उत्पादों का समूह भी है जो विनिर्मित उत्पादों के समूह में सबसे अधिक वज़न रखता है। इसकी मुद्रास्फीति में 7.2 प्रतिशत की वृद्धि हुई जो पिछले पांच वर्षों में सबसे ज्यादा थी। बुनियादी धातुओं और मिश्र धातुओं के उत्पाद समूह में 14.4 प्रतिशत की मुद्रास्फीति दर्ज़ की गई। पिछले पांच वर्षों में दूसरी बार ऐसा अनुभव किया गया। इस मुद्रास्फीति की अनूठी विशेषता यह थी कि इतने सारे उत्पाद समूहों के मूल्यों

पर एक साथ ही दबाव आन पड़ा। अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल, खनिजों और धातुजनित उत्पादों के मूल्यों में आई तेज़ी से भारत के घरेलू मूल्यों पर भी भारी प्रभाव पड़ा। भारत में मुद्रास्फीति का दवाब अगस्त 2008 में अपने चरम पर 12.8 प्रतिशत तक पहुंच गया। तदंतर शनैः शनैः इसमें कमी आई और वैश्विक प्रवृत्ति के अनुसार ही भारत में भी मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति बनी रही।

वर्ष 2009-10 में औसत वार्षिक मुद्रास्फीति की दर 3.6 प्रतिशत के अल्प स्तर पर थी। परंतु इससे यह तथ्य नहीं छिपाया जा सकता कि प्राथमिक वस्तुओं की मुद्रास्फीति की दर में वृद्धि हो रही थी और इनकी औसत वार्षिक मुद्रास्फीति की दर 10.62 प्रतिशत थी। मुद्रास्फीति की दर कुल मिलाकर इसलिए कम थी, क्योंकि ईंधन, ऊर्जा और तेल श्रेणी की मुद्रास्फीति ऋणात्मक प्रवृत्ति अपनाए हुए थी और विनिर्मित उत्पादों की मुद्रास्फीति की प्रवृत्ति सकारात्मक परंतु निम्न दर की ओर जा रही थी। इसी समय घरेलू पेट्रोल और डीज़ल के सरकारी मूल्यों में संशोधन कर उनमें वृद्धि की गई जो जुलाई 2009 से प्रभावशील हो गया।

वर्ष 2009-10 में वर्षानुसार तुलना करें तो मुद्रास्फीति की दर अगस्त 2009 में सबसे कम (ऋणात्मक) थी। परंतु उसके बाद बढ़नी शुरू हो गई। मुद्रास्फीति की दर सितंबर 2009 के 0.5 प्रतिशत के निचले स्तर से बढ़ते हुए मार्च 2010 में 9.9 प्रतिशत तक पहुंच गई। मुख्य रूप से प्राथमिक वस्तुओं की मुद्रास्फीति में वृद्धि के चलते ऐसा हुआ। छठे वेतन आयोग की दूसरी क़िस्त अक्तूबर 2009 में जारी की गई जिससे बाज़ार में मांग का दबाव बढ़ गया। अक्तूबर 2009 में विश्व स्तर पर खाद्य पदार्थों के मूल्यों में वृद्धि का दौर शुरू हुआ। इसलिए इस कालखंड को मुद्रास्फीति के संदर्भ में निर्णायक दौर कहा जा सकता है। इसी अवधि में प्राकृतिक दुर्योग का क्रम मानसूनी वर्षा में कमी, दक्षिणी राज्यों में बाढ़ और कृषि उत्पादन में कमी के रूप में सामने आया। फलस्वरूप घरेलू बाज़ार में अभाव की स्थिति पैदा होने लगी।

पिछले वर्ष की तुलना में अप्रैल 2010 में मुद्रास्फीति की दर 9.59 प्रतिशत थी। प्राथमिक वस्तुओं के वर्ग में मुद्रास्फीति की दर 13.88 प्रतिशत थी। ईंधन और ऊर्जा वर्ग में 12.55 प्रतिशत और विनिर्मित उत्पादों के वर्ग में 6.70 प्रतिशत थी। मई 2010 के महीने में कुल मिलाकर पिछले वर्ष की तुलना में मुद्रास्फीति की दर 10.16 प्रतिशत थी। प्राथमिक वस्तुओं की मुद्रास्फीति की दर 16.60 प्रतिशत थी। ईंधन समूह की दर 13.05 प्रतिशत रही और विनिर्मित उत्पादों के वर्ग में 6.41 प्रतिशत की दर से मुद्रास्फीति दर्ज़ की गई।

भारत में मुद्रास्फीति की गणना थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) के अनुसार की जाती है और इसमें अंतरराष्ट्रीय मूल्यों पर भी नज़र रखी जाती है। उल्लेखनीय है कि मुद्रास्फीति की गणना अंतरराष्ट्रीय स्तर पर उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआई) के आधार पर की जाती है। भारत में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की गणना, औद्योगिक श्रमिकों (सीपीआई-आईडब्ल्यू) शहरी, ग़ैर-शारीरिक श्रम कर्मचारियों (सीपीआई-यूएनएमई) और कृषि (ग्रामीण) श्रमिकों (सीपीआई-आरएल) के लिए पृथक से की जाती है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की गणना के लिए शामिल वस्तुओं की संख्या थोक मूल्य सूचकांक की वस्तुओं से काफ़ी कम होती है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की गणना के लिए के लिए आधार वर्ष इस प्रकार है– औद्योगिक श्रमिकों के लिए वर्ष 1982; शहरी क्षेत्र के अशारीरिक श्रम कर्मचारियों के लिए वर्ष 1984-85 और कृषि श्रमिकों के लिए 1986-87। तुलनात्मक दृष्टि से देखें तो थोक मूल्य सूचकांक की गणना का आधार वर्ष 1993-94 है। यदि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के आधार पर मुद्रास्फीति की गणना की जाए तो उसमें असंतुलन की संभावना रह सकती है। क्योंकि एक तो उसमें शुमार वस्तुओं की संख्या कम है और दूसरे उसका आधार वर्ष भी कुछ पीछे का है। इसलिए समय-समय पर उत्पादों और उपभोक्ताओं के नमूनों के तौर-तरीकों में आए परिवर्तनों को सही ढंग से पकड़ न पाने की संभावना बनी रहती है। फलस्वरूप, मूल्यों में परिवर्तन का प्रभाव उपभोक्ता कल्याण पर पड़ सकता है। तथापि, भारत सरकार की वर्ष 2009-10 की आर्थिक समीक्षा में दर्शाया गया है कि अप्रैल 2008 से लेकर दिसंबर 2009 तक की खाद्यान्न मुद्रास्फीति की गणना सभी तीनों सूचकांकों– थोक, उपभोक्ता और कृषि (ग्रामीण)श्रमिक द्वारा एक ही तरीक़े से की गई है। खाद्य पदार्थों के मूल्यों की ताज़ा प्रवृत्तियों का अध्ययन करना ख़ासी दिलचस्पी का विषय हो सकता है। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक से स्पष्ट है कि खाद्य पदार्थों पर उसका प्रभाव प्राथमिक वस्तुओं पर थोक मूल्य सूचकांक के प्रभाव की तुलना में काफ़ी अधिक होता है। इन दिनों खाद्य पदार्थों के मूल्य का मुद्रास्फीति पर निर्णायक प्रभाव पड़ रहा है जिससे निर्धनता पर भी उल्लेखनीय प्रभाव पड़ता है। इस सूचकांक से पता चलता है कि खाद्य वस्तुओं की मुद्रास्फीति की दर दिसंबर 2009 में 21.29 प्रतिशत पर अपने चरम पर पहुंच गई थी। उसके बाद इसमें धीरे-धीरे गिरावट आनी शुरू हुई और मार्च 2010 में यह 16.03 प्रतिशत पर आ गई। आंशिक रूप से इससे यह तथ्य भी सामने आता है कि अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी कुछ कमी आ रही है। अतः यह आशा की जा सकती है कि आगामी मानसून यदि इस बार धोखा नहीं देता है और बारिश ठीक-ठाक होती है तो मुद्रास्फीति में कमी का यह सिलसिला आगे भी जारी रहेगा।

सरकार मुद्रास्फीति का सामना करने के लिए आमतौर पर नियामक, प्रशासनिक और आर्थिक उपाय अपनाती है। वर्ष 2009-10 में जो उपाय किए गए उनमें मौद्रिक कठोरता, आयात का उदारीकरण, खाद्य वस्तुओं पर आयात शुल्क में कमी, आयातित चीनी पर लेवी की अनिवार्यता को समाप्त करना, ग़ैर-बासमती चावल, खाद्य तेलों और दालों (काबुली चना को छोड़कर) के निर्यात पर प्रतिबंध लगाना, प्याज के निर्यात को नियमित करने के लिए न्यूनतम निर्यात मूल्य (एमईपी) का उपयोग करना, चावल, उड़द और अरहर में वायदा बाज़ार पर रोक लगाना; धान, दालों, चीनी, खाद्य तेल और तिलहनों के मामलों में भंडारण निर्धारित सीमा तक करना, राज्यों को कम क़ीमत पर आयातित खाद्य तेल का वितरण, सार्वजनिक वितरण प्रणाली के जरिये कम क़ीमत पर आयातित दालों का वितरण और राज्यों को वितरण के लिए गेहूं और चावल का अधिक आवंटन आदि शामिल है।

अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के प्रति भारत की संवेदनशीलता में स्पष्ट वृद्धि हो रही है और इससे ग़रीबों को भारी कष्ट हो सकता है। इसे देखते हुए ज़रूरी है कि भारत के कृषि क्षेत्र को सुदृढ़ और आधुनिक बनाने के लिए दीर्घकालिक कार्ययोजना बनाई जाए। इस क्षेत्र में हो रहे सुधार की गति अभी सुस्त और धीमी है। ❑

(लेखक भारत सरकार के पर्यटन मंत्रालय में आर्थिक सलाहकार हैं।

ई-मेलः manasbz@gmail.com)

मुद्रास्फीति और अर्थव्यवस्था की स्थिति

● के. आर. सुदामन

मुद्रास्फीति ऐसी स्थिति है जिससे कोई खुश नहीं होता। यह ऐसा कर है जिसका ग़रीबों पर सबसे बुरा और सबसे कड़ा प्रहार होता है। मुद्रास्फीति का मतलब है एक हफ़्ते या एक महीने- किसी तय समयावधि के दौरान क़ीमतों में वृद्धि की दर। इसे आवश्यक वस्तुओं, ईंधन और निर्माता वस्तुओं तथा खाद्य सामग्री के संदर्भ में आंका जाता है। अगर कोई कहता है कि मुद्रास्फीति दर कम हो रही है तो इसका मतलब यह नहीं कि क़ीमतों में गिरावट आ रही है। इसका मतलब यह है कि क़ीमतों में वृद्धि की दर कम हुई है। भारत में मुद्रास्फीति को थोक मूल्य सूचकांक के अर्थों में आंका जाता है। लेकिन विकसित देशों में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को मुद्रास्फीति मापने का आधार बनाया जाता है, जिसमें फ़ुटकर क़ीमतों का महत्व झलकता है। विकासशील अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति का थोड़ा बहुत समावेश होता है। भले ही, परंपरागत आर्थिक सिद्धांतों के संदर्भ में मुद्रास्फीति की दर कम हो तो उसे अर्थव्यवस्था के लिए ठीक समझा जाता है क्योंकि इससे विकास की गति तेज़ होती है।

भारत में वर्ष 2009 और चालू वर्ष 2010 के दौरान मुद्रास्फीति दर ऊंची होने का मुख्य कारण यह है कि देश को कई बार भयंकर सूखे का सामना करना पड़ा जिसके परिणामस्वरूप ख़रीफ़ की फ़सल की पैदावार कम हुई। इससे मुद्रास्फीति दर बढ़कर अभूतपूर्व स्तर पर पहुंच गई और खाद्य मुद्रास्फीति दर 2009 में बढ़कर 20 प्रतिशत के निशान को छूने लगी। इसके बाद उसमें गिरावट शुरू हो गई। खाद्य मुद्रास्फीति मुख्यत: आपूर्ति में बाधा पड़ने के कारण आई जो रबी की फ़सल बाज़ार में आ जाने के साथ कम होनी शुरू हो गई। इस तरह से अर्थव्यवस्था पर पड़ने वाले मौसम का प्रभाव स्पष्ट हो गया। एक और समस्या यह उठ खड़ी हुई कि खाद्य मुद्रास्फीति अन्य क्षेत्रों को प्रभावित करने लगी जिसके कारण कुल मिलाकर मुद्रास्फीति दर दोहरे अंकों वाली हो गई। इस वर्ष मई में जहां मुद्रास्फीति दर 10.16 प्रतिशत थी वहीं जून में इसके और बढ़ने की उम्मीद थी जिसमें मुख्यत: हाल की ईंधन मूल्यों में बढ़ोतरी का हाथ था। इस बीच सरकार ने एक अलोकप्रिय सुधारात्मक उपाय शुरू करने का फ़ैसला किया। वह है- पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमतों पर प्रशासनिक नियंत्रण हटाना। डीजल को भी नियंत्रण मुक्त करने की बात थी। सरकार के स्वामित्व वाली तेल कंपनियां भारी घाटा उठाते हुए दिवालिया होने की तरफ बढ़ रही थीं जिसे देखते हुए सरकार के लिए और इंतजार करना संभव नहीं था। कम मूल्यों पर पेट्रोलियम पदार्थ बेचकर तेल कंपनियां भारी घाटा उठा रही थीं। इसीलिए सरकार ने पेट्रोलियम पदार्थों को नियंत्रण मुक्त कर दिया। इसी का नतीज़ा था कि पेट्रोल की क़ीमतें प्रतिलीटर 3.50 रुपये बढ़ गईं। डीजल को भी नियंत्रण मुक्त किया जाना है। इस लक्ष्य के मद्देनज़र इसकी क़ीमत भी 2 रुपये प्रतिलीटर बढ़ गई। मिट्टी का तेल 3 रुपये प्रतिलीटर महंगा हो गया और रसोई गैस 35 रुपये प्रति सिलेंडर महंगी हुई। ईंधन में इस प्रकार से वृद्धि के बावजूद इंडियन ऑयल, भारत पेट्रोलियम और हिंदुस्तान पेट्रोलियम जैसी सरकारी तेल कंपनियों को इस वित्त वर्ष में भी 53 हज़ार करोड़ रुपये घाटा होने की संभावना है।

ईंधन की क़ीमतें बढ़ने से जून में भी मुद्रास्फीति दर में वृद्धि हो सकती थी। लेकिन इससे भी महत्वपूर्ण यह है कि मुद्रास्फीति दर कम होने की भी संभावना है। इसका कारण है आधार प्रभाव क्षीण होना। साथ ही, ईंधन की क़ीमतों में बढ़ोतरी से मुद्रास्फीति अल्प अवधि में बढ़ सकती है लेकिन दीर्घ अवधि में इससे मांग में कमी लाने में सहायता मिलेगी जिससे मुद्रास्फीति की बढ़ोतरी थमेगी। जून में कम आधार प्रभाव भी क्षीण होने की संभावना थी। मुद्रास्फीति को साल-दर-साल आधार पर आंका जाता है। वर्ष 2008-09 में अंतरराष्ट्रीय मंदी के कारण मुद्रास्फीति दर असाधारण रूप से कम थी और इस दौरान ऐसे भी मौक़े आए जब यह दर ऋणात्मक हो गई। मुद्रास्फीति को इससे पहले वाले वर्ष की मुद्रास्फीति से तुलना करके देखा जाता है अत: इस साल मुद्रास्फीति दर ज्यादा दिखाई पड़ रही है और इसका कारण है कम आधार प्रभाव।

इस वर्ष जून में कम आधार प्रभाव क्षीण हुआ जिससे मुद्रास्फीति दर में गिरावट शुरू हो गई और जैसाकि रिज़र्व बैंक और भारत सरकार ने अनुमान लगाया था, इसके वर्ष 2010-11 के आख़िर तक 5-6 प्रतिशत रहने की उम्मीद है। इस साल अच्छी वर्षा होने के संकेत हैं जिससे अनाज़ पैदावार भी अच्छी होने की संभावना है। कृषि क्षेत्र से संबद्ध योजना आयोग के सदस्य अभिजीत सेन ने कृषि उपज में 5-6 प्रतिशत बढ़ोतरी होने की बात कही है।

इस वर्ष भारत के भंडारों में सबसे ज्यादा अनाज़ है, इसके लगभग 6 करोड़ टन होने का अनुमान है। इसीलिए पिछले साल के विपरीत

इस वर्ष खाद्य मुद्रास्फीति ऊंची होने की संभावना नहीं है। पिछले साल के मध्य से मुद्रास्फीति दर ऊंची चल रही है जिससे उच्च आधार प्रभाव सक्रिय हो जाएगा और इससे मुद्रास्फीति दर और कम करने में मदद मिलेगी। यह भी महत्वपूर्ण है कि पिछले साल भले ही अनाज भंडार 4.4 करोड़ टन के आसपास सुविधाजनक स्थिति में था, लेकिन गेहूं और चावल की क़ीमतें काफ़ी ज्यादा थीं क्योंकि सरकार इन चीज़ों को सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के जरिये जारी करके कम क़ीमतों पर बेचने के बारे में कोई फ़ैसला नहीं कर पाई। ऐसी स्थिति तब है जब सरकार अनाज़ों पर दी जाने वाली सब्सिडी का भारी-भरकम बिल अदा कर चुकी है और वह वर्ष 2009-10 में भी अनाज़ पर अधिक सब्सिडी देना जारी रखने की स्थिति में नहीं थी। पिछले साल राजकोषीय घाटा सकल घरेलू उत्पाद के 6.6 प्रतिशत के बराबर पहुंच गया। इसमें सरकार द्वारा भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंतरराष्ट्रीय संकट का प्रभाव टालने के लिए दी गई राजकोषीय सुविधाओं का योग था। यह हैरतअंगेज़ बात है कि इसके कारण वर्ष के दौरान अनाज़ भंडार में 70 लाख टन की बढ़ोतरी हुई हालांकि कम वर्षा के चलते अनाज़ की पैदावार कम हुई।

मुद्रास्फीति में एक महत्वपूर्ण कारक है न्यूनतम समर्थन मूल्य, जो विभिन्न फ़सलों को पिछले वर्षों से दिया जा रहा है। इसके कारण किसानों की जेब में ज्यादा पैसा आ गया है। लेकिन साथ ही, इसके कारण खेती में पैदा होने वाली जिंसों की क़ीमतें बढ़ गई हैं। भारतीय गेहूं की क़ीमत अंतरराष्ट्रीय मंडियों की क़ीमत से ज्यादा है। विदेशों में गेहूं की क़ीमत 170 से 200 डॉलर प्रतिटन के आसपास है। इसका मतलब यह है कि भारत की धरती पर पहुंचकर आयातित गेहूं 10-11 रुपये प्रति किलोग्राम पड़ता है जबकि पंजाब से चेन्नई भेजे जाने पर गेहूं की ढुलाई ही 13-14 रुपये प्रति किलोग्राम पड़ जाती है। इसके कारण बड़ी विचित्र स्थिति पैदा हो गई है। दक्षिण भारत की आटा मिलें पंजाब या हरियाणा से गेहूं मंगाने के बजाय आयात करना बेहतर समझती हैं। साथ ही, अनाज़ों की ढुलाई और भंडारण पर आने वाली ऊंची लागत के कारण भी भारतीय अनाज़ों की क़ीमतें बढ़ जाती हैं।

इसीलिए सरकार ने ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले पांच से सात करोड़ परिवारों को खाद्य सुरक्षा देने की एक महत्वाकांक्षी योजना बनाई है। देखा जाए तो शिक्षा के अधिकार द्वारा सर्वशिक्षा अभियान के बाद काम पाने के अधिकार के अंतर्गत राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम शुरू किया गया और उसके बाद गरीबों का सामाजिक उत्थान करने के उद्देश्य से खाद्य सुरक्षा अभियान सरकार द्वारा शुरू किया गया तीसरा बड़ा अभियान होगा। खाद्य सुरक्षा कानून बनाया जा रहा है और इसके अंतर्गत गरीबी रेखा से नीचे वाले सभी परिवारों को हर महीने तीन रुपये प्रतिकिलो की दर से 35 किलो अनाज़ उपलब्ध कराया जाएगा।

एक और महत्वपूर्ण घटनाक्रम यह है कि अब कोई मुद्रास्फीति के बारे में शिकायत नहीं करता। कारण यह कि लोगों की क्रय शक्ति बढ़ गई है और इसका कारण है ग्रामीण क्षेत्रों में सरकार द्वारा किया जाने वाला न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ा दिया गया है और ग़रीबों को राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार कार्यक्रम से काम मिल रहा है जिससे उनकी क़माई हो जाती है।

लेकिन मुद्रास्फीति मोर्चे पर एक चिंताजनक बात यह है कि अब यह निर्माता उद्योगों में भी फैल गई है और ख़ासतौर से उन छोटे उद्योगों पर इसका असर दिखाई दे रहा है जो आर्थिक मंदी से उबर रहे थे। पिछले साल रिज़र्व बैंक ने रियायती और सरल मुद्रानीति बनाई थी और सरकार ने भी राजकोषीय प्रोत्साहन वाली दो-तीन अस्थायी तौर की रियायतें दी थीं जिससे भारतीय अर्थव्यवस्था पर अंतरराष्ट्रीय संकट का असर कम पड़ा।

सरल मुद्रानीति और राजकोषीय प्रोत्साहन रियायतों का उद्देश्य मांग बढ़ाने में सहायता देना था ताकि विकास दर गिरने न पाए। सरकार ने वर्ष 2008 के दौरान कई बार में नकद जमा अनुपात में 9 प्रतिशत की कमी की और वर्ष 2009 के शुरू में भी इस दर में 5 प्रतिशत कमी का एलान किया। इसके परिणामस्वरूप बैंकिंग व्यवस्था में 4 लाख करोड़ रुपये की तरलता आई। नकद जमा अनुपात जमा राशियों का वह प्रतिशत है जो कमर्शियल बैंक, सेंट्रल बैंक के पास जमा करते हैं। नकद जमा अनुपात ऐसा तंत्र है जिसे बैंकिंग व्यवस्था से फ़ालतू तरलता हटाने या बढ़ाने में इस्तेमाल किया जाता है। इस साधन का इस्तेमाल मुद्रा आपूर्ति नियंत्रित करने और उसके जरिये मुद्रास्फीति घटाने के लिए भी किया जाता है। इस समय नकद जमा अनुपात 6 प्रतिशत है। अब जबकि आर्थिक मंदी से अर्थव्यवस्था उबर चुकी है और विकास के रास्ते पर चल पड़ी है, मुद्रास्फीति बढ़कर दो अंकों में पहुंच गई है जिससे रिजर्व बैंक को मुद्रानीति कसनी पड़ी है।

अब पूंजी प्रवाह तेज़ हो गया है और रिज़र्व बैंक संभवत: बैंकिंग व्यवस्था से फ़ालतू तरलता हटाना चाहेगा। वह इसे कम करके सामान्य स्तरों पर लाना चाहेगा। लेकिन फ़िलहाल अस्थायी तौर पर तरलता की स्थिति मुश्किल है और इसका कारण है थ्री-जी और ब्रॉडबैंड स्पेक्ट्रम नीलामी के कारण एक लाख करोड़ रुपये से ज्यादा का भुगतान। यह स्थिति जल्द ही बदल जाएगी और रिज़र्व बैंक सीआरआर बढ़ाना शुरू कर देगा। संभवत: जुलाई के आख़िर तक मुद्रानीति की तिमाही समीक्षा बैठकों में ऐसा किया जाएगा।

ब्याज दरों को कठोर बनाने की प्रक्रिया भी शुरू की जा सकती है क्योंकि रिज़र्व बैंक मुद्रास्फीति दर को क़ाबू करने के लिए प्रमुख नीतिगत दरें बढ़ा सकता है। अब जबकि मई में मुद्रास्फीति दर 10.16 प्रतिशत पहुंच चुकी है, ये बात इसका संकेत हैं कि महंगाई बढ़ाने में गैर खाद्य वस्तुओं का योगदान हो रहा है। ऐसी स्थिति में केंद्रीय बैंक की राय है कि अब मुद्रास्फीति सामान्य हो गई है और मांग पक्ष के दबाव स्पष्ट दिख रहे हैं। इसीलिए रिज़र्व बैंक ने एक और क़दम उठाया है जिसे रिज़र्व बैंक के गवर्नर डी. सुब्बाराव ने 'बेबी स्टेप' कहा है। इसका उद्देश्य रेपो और रिवर्स रेपो दरों में 0.25 प्रतिशत बढ़ोतरी करके मुद्रास्फीति को क़ाबू करना है। रेपो ऐसी ब्याज दर है जिस पर सेंट्रल बैंक अन्य बैंकों को कम अवधि के लिए ऋण देता है। रिवर्स रेपो वह ब्याजदर है जिस पर बैंक अपनी फ़ालतू रकम रिज़र्व बैंक के पास जमा कराते हैं। रेपो और रिवर्स रेपो दरों को प्रमुख नीतिगत दरें अथवा ओवरनाइट रेट भी कहते हैं। एक जुलाई को की गई बढ़ोतरी के बाद अब रेपो दर 5.5 प्रतिशत और रिवर्स रेपो दर 4 प्रतिशत है। अप्रैल की वार्षिक मुद्रानीति में रिज़र्व बैंक ने रेपो और रिवर्स रेपो दरें क्रमश: 0.25 प्रतिशत से 5.25 प्रतिशत तक और 3.75 प्रतिशत बढ़ा दी थीं। ये इस बात के स्पष्ट संदेश हैं कि इन प्रमुख मुद्रा दरों को वर्ष 2008 से पहले के सामान्य स्तरों पर वापस लाना है। जुलाई में नीतिगत घोषणा के जरिये इन दरों और सीआरआर में और ज्यादा बढ़ोतरी की जा सकती है।

रिज़र्व बैंक ने सीआरआर को अभी तक यह कह कर अछूता छोड़ दिया है कि एक ही समय तरलता में ढील देना और दरें बढ़ाना समीचीन नहीं होगा। लेकिन ये ध्यान देने की बात है कि तरलता में कमी लाने के उपाय ज़रूरी हो गए हैं। इन्हें किसी तरह से अनुपयुक्त नहीं कहा जा सकता क्योंकि मुद्रानीति इनके अनुरूप है और इस नीति का उद्देश्य विकास को हानि पहुंचाए बिना मुद्रास्फीति को क़ाबू करना है।

रिज़र्व बैंक और वित्तमंत्रालय को भविष्य में एक कठिन कार्य पूरा करना है। उन्हें मुद्रास्फीति और विकास में संतुलन लाना होगा क्योंकि ये दोनों ही एक जैसी महत्वपूर्ण हैं। अब अर्थव्यवस्था सशक्त हो रही है और भारत का सकल घरेलू उत्पाद विकास वर्ष 2009-10 में 7.4 प्रतिशत हो गया है। इसके विपरीत इससे पहले वाले साल यह विकास दर 6.7 प्रतिशत थी। अब विकास की दर तेज़ हो रही है और चालू वित्त वर्ष के दौरान इसके 8.5 प्रतिशत रहने की उम्मीद है। इसके बाद अगले वर्ष यह विकास दर और तेज़ होकर 9 प्रतिशत तक पहुंच सकती है। भारत में पूंजी प्रवाह तेज़ हो रहा है, विदेशी पूंजी निवेश इस वर्ष 35 अरब डॉलर तक पहुंच जाने की उम्मीद है। मूल सुविधाओं पर ख़र्च बढ़ रहा है और संभावना है कि 12वीं पंचवर्षीय योजना में यह बढ़कर एक सौ अरब डॉलर हो जाएगा। वर्ष 2011-12 में खत्म हो रही 11वीं योजना अवधि के अंत में यह 5 सौ अरब डॉलर के आसपास होगा। निर्यात बढ़ रहे हैं और इस वर्ष के अंत तक भारत से निर्यात दो सौ अरब डॉलर तक हो जाने की उम्मीद है। ये अर्थव्यवस्था के ज़ोर पकड़ने के संकेत हैं। चीन के बाद भारत की अर्थव्यवस्था को सबसे ज्यादा तेज़ी से बढ़ने वाली दूसरे नंबर की अर्थव्यवस्था माना जाता है। उम्मीद की जा रही है कि अगले दो-तीन वर्षों में विकास के मामले में भारत आगे निकल जाएगा। सरकार को तेज़ी से हो रहे इन घटनाक्रमों की जानकारी है और उसने राजकोषीय प्रोत्साहनों में कटौती करनी शुरू कर दी है। मुद्रास्फीति को क़ाबू करने के लिए राजकोषीय समेकन बहुत महत्वपूर्ण है। वर्ष 2009-10 में जहां राजकोषीय घाटा बढ़कर 6.6 प्रतिशत हो गया था, वहीं इसे कम करके वर्ष 2010-11 में सकल घरेलू उत्पाद के 5.5 प्रतिशत के बराबर लाना है। सरकार को मई और जून में थ्री-जी और ब्रॉडबैंड स्पेक्ट्रम के जरिये 1.06 लाख करोड़ रुपये की आमदनी हो चुकी है इसलिए इस वर्ष राजकोषीय घाटा नियंत्रित करने में कोई समस्या नहीं आनी चाहिए।

लेकिन जैसे-जैसे विकास दर बढ़ेगी, मुद्रास्फीति एक महत्वपूर्ण कारक बनेगी। विकास दर पर यूरोप के ऋण संकट का असर पड़ सकता है जिसके कारण इसकी रफ़्तार धीमी पड़ सकती है और निर्यात और पूंजीप्रवाह में कमी आ सकती है। अब जबकि मांग बढ़ रही है, मुद्रास्फीति का दबाव बढ़ेगा। कम आधार प्रभाव क्षीण होगा और इस वर्ष खेती की पैदावार अच्छी रहेगी जिससे मुद्रास्फीति पर क़ाबू पाने में मदद मिलेगी। रिज़र्व बैंक हमेशा की तरह सजग है और उसने विकास की रफ़्तार पर आंच आने दिए बगैर मुद्रास्फीति दर नियंत्रित करने के लिए सही समय पर उपाय किए हैं। ❑

(लेखक टिंकरन्यूज में आर्थिक मामलों के संपादक हैं।

ई-मेल : sudhaman23@yahoo.co.uk)

कनाडा-भारत में परमाणु सहयोग

परमाणु सहयोग के अलावा उच्च शिक्षा, भू-विज्ञान, खनन और सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने के लिए सहमति

भारत ने पिछले दिनों कनाडा के साथ परमाणु ऊर्जा के शांतिपूर्ण इस्तेमाल के लिए सहयोग का समझौता किया। इस समझौते से दोनों देशों के बीच नागरिक परमाणु कारोबार को बढ़ावा मिलेगा। कनाडा नौवां ऐसा देश है जिसने भारत के साथ शांतिपूर्ण इस्तेमाल के लिए परमाणु समझौता किया है। भारत ने 2008 में परमाणु आपूर्तिकर्ता समूह के साथ कई तरह की छूट हासिल करने के बाद ये समझौते किए हैं। जिन आठ दूसरे देशों के साथ भारत ने समझौता किया है, उनमें अमरीका, रूस, फ्रांस, ब्रिटेन, अर्जेंटीना, कजाकिस्तान और मंगोलिया शामिल हैं। इस समझौते से टोरंटो में इस वर्ष के जी20 सम्मेलन के आयोजक देश के साथ भारत द्विपक्षीय संबंधों को नयी ऊंचाई पर ले जाने में सफल रहा।

कनाडा भारत का सबसे पुराना परमाणु साझेदार रहा है, लेकिन 1974 में भारत द्वारा किए गए पोखरण परीक्षण के बाद यह रिश्ता ख़त्म हो गया था। भारत ने 1974 में पहली बार परमाणु परीक्षण किया था। परमाणु सहयोग के अलावा भारत और कनाडा ने उच्च शिक्षा, भू-विज्ञान, खनन और सांस्कृतिक सहयोग बढ़ाने के लिए सहमति पत्र पर हस्ताक्षर किए। व्यापक आर्थिक साझेदारी समझौते की व्यावहारिकता को लेकर संयुक्त अध्यक्ष दल द्वारा पहचाने गए आर्थिक पहलुओं का डॉ. मनमोहन सिंह और कनाडा के प्रधानमंत्री स्टीफन हार्पर ने स्वागत किया। संयुक्त प्रेस कॉन्फ्रेंस में मनमोहन सिंह ने दोनों देशों के बीच ऊर्जा सहयोग बढ़ाने पर ज़ोर दिया। उन्होंने इस सिलसिले में वैकल्पिक और अक्षय ऊर्जा का भी जिक्र किया। दोनों प्रधानमंत्रियों ने एयर इंडिया के विमान कनिष्क को आतंकियों द्वारा उड़ाए जाने की घटना को याद किया। 25 साल पहले 23 जून को आतंकियों ने इस विमान को बम से उड़ा दिया था। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने ज़ोर देकर कहा कि सभी देशों को आतंक को ख़त्म करने की दिशा में सहयोग करना चाहिए। उन्होंने कनाडा द्वारा खालिस्तान समर्थक कार्यकर्ताओं पर लगाम लगाने में की गई चूक की विनम्रता से याद दिलाई। प्रधानमंत्री ने कहा कि कनाडा में कुछ लोग ही खालिस्तान से जुड़े थे, ज्यादातर सिख भारत की बेहतरी के बारे में सोचते थे। उन्होंने कहा कि श्री हार्पर इस मुद्दे पर भारत की चिंताओं को पूरी तरह से समझते हैं। दोनों नेताओं की संयुक्त प्रेस कॉन्फ्रेंस में मनमोहन सिंह ने भारत के अन्य देशों के साथ हुए नागरिक परमाणु सहयोग समझौते के तहत हासिल होने वाली परमाणु तकनीक या सामग्री का इस्तेमाल गैर-नागरिक परमाणु कार्यक्रमों में करने से जुड़ी चिंताओं को दूर करने की कोशिश की। उन्होंने कहा कि भारत के पास इसके लिए सही तंत्र है। कनाडा के प्रधानमंत्री स्टीफन हार्पर ने वैश्विक तपन को लेकर भारतकी प्रतिबद्धता का तारीफ़ की। भारत ने ग्रीन हाउस गैसों में कमी करने का वादा किया है। ❑

मुद्रास्फीति : मिथक, वास्तविकता एवं नीतिगत एजेंडा

● वी. षण्णमुखम
देबज्योति डे

भारत में तेज़ी से बढ़ रही महंगाई, वैसे तो अप्रत्याशित नहीं कही जा सकती, परंतु कम-से-कम दो कारणों से असामान्य अवश्य कही जा सकती है। इनमें से एक है, सरकार की तमाम कोशिशों के बावजूद मुद्रास्फीति की दर दो वर्षों से भी अधिक समय से लगातार ऊंची बनी हुई है। दूसरे, मुद्रास्फीति की मौजूदा ऊंची दर ऐसे समय में बढ़ रही है जब विश्वभर में अब तक की सबसे बड़ी मंदी के बाद सुधार के आशाजनक संकेत दिखाई दे रहे हैं। दूसरे शब्दों में, जबकि अधिकतर देश आयस्फ़ीति को नियंत्रित करने के लिए जूझ रहे हैं। भारत ठीक उसके विपरित मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना चाहता है।

किससे मुद्रास्फीति नहीं होती?

तेज़ी से बढ़ रही मौजूदा महंगाई का कारण क्या है? कुछ कारण तो बिल्कुल स्पष्ट नज़र आ रहे हैं– सूखे के कारण खाद्यान्न आपूर्ति में कमी से लेकर मुद्रा की आपूर्ति में वृद्धि और अधिकांश वस्तुओं के मूल्यों में वैश्विक वृद्धि उपभोक्ता मूल्यों पर प्रभाव डाल रही है। स्पष्ट है कि इन सभी कारणों के मिले-जुले प्रभाव के कारण महंगाई में तेज़ी आई है। अगले दो खंडों में इनमें से कुछ कारणों पर हम विचार करेंगे। जो चीज़ साफ़तौर पर दिखाई नहीं देती, परंतु जो वास्तव में इसका प्रमुख कारक है वह है जिंस का वायदा बाज़ार। मुद्रास्फ़ीति की आग को हवा देने में इसकी भूमिका को नक़ारा नहीं जा सकता और अक्सर हड़बड़ी में जो क़दम उठाया जाता है वह वायदा क़ारोबार पर रोक लगाने का ही होता है। यद्यपि मुद्रास्फीति और जिंस के वायदा क़ारोबार के संभावित संबंधों का पता लगाने के लिए गठित विशेषज्ञ समिति को इसके बारे में कोई ठोस सबूत नहीं मिले हैं। इस खंड में हम जिंसों की ऊंची क़ीमतों और वायदा क़ारोबार के बीच संबंधों के मिथक को तोड़ने का प्रयास करेंगे। प्रचलित मिथक के विरुद्ध हम सात अकाट्य प्रमाण प्रस्तुत कर रहे हैं :

तालिका-1

चुनिंदा कृषि उत्पादों का थोक मूल्य सूचकांक में हिस्सा और भौतिक (वास्तविक) बाज़ार के आकार में वायदा कारोबार का अनुपात

वस्तुएं	डब्ल्यूपीआई में अंश	वायदा व्यापार का आकार बनाम हाज़िर मात्र	वस्तुएं	डब्ल्यूपीआई में अंश
वे वस्तुएं जिनका व्यापार वायदा बाज़ार में होता है			वे वस्तुएं जिनका व्यापार वायदा बाज़ार में नहीं होता	
गेहूं	1.38408	2.9%	लहसुन	0.05905
मक्का	0.18561	2.7%	मूंग	0.11225
जौ	0.02734	25.8%	उड़द	0.09619
चना	0.22365	639.7%	तुअर (अरहर)	0.13466
कॉफी	0.08188	198.9%	चीनी	3.61883
कच्चा कपास	1.35674	7.8%	बाजरा	0.11044
मूंगफली दाना	1.02883	0.0%	ज्वार	0.22189
सरसों/राई	0.58066	398.9%	चाय	0.15739
सोयाबीन तेल	0.17838	298.0%	प्याज	0.09372
			चावल	2.44907

स्रोत : *वाणिज्य और उद्योग मंत्रालय, एक्सचेंजों के वेबसाइट; आर्थिक और सांख्यिकी निदेशालय : कृषि एवं सहकारिता विभाग; एनएचआरडीएफ; सीएमआईई इंडिया। हार्वेस्ट मात्रात्मक आंकड़े दिसंबर 2009 के हैं।*

तथ्य संख्या 1

जैसाकि तालिका-1 में दर्शाया गया है, भारतीय थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) में वायदा क़ारोबार वाले खाद्य सामग्री का भार अपेक्षाकृत कम ही है। पांच प्रतिशत से भी कम इसका भार वायदा कारोबार में शामिल न होने वाली दो प्रमुख जिंसों चीनी और चावल के सम्मिलित हिस्से से भी कम है। अत: सामान्य खाद्य पदार्थों की मूल्य

वृद्धि में इसका प्रभाव नगण्य ही होगा।

तथ्य संख्या-2

जैसाकि तालिका-1 से स्पष्ट है कि वे वस्तुएं जिनका वायदा बाज़ार में क़ारोबार होता है और जो डब्ल्यूपीआई के लिए अत्यंत महत्वपूर्ण मानी जाती हैं (गेहूं, मक्का, कपास और मूंगफली तेल का डब्ल्यूपीआई में अंश कुल मिलाकर क़रीब 4 प्रतिशत है), वास्तविक व्यापार की तुलना में उनका वायदा व्यापार काफ़ी कम होता है। अत: इस बात की संभावना काफ़ी क्षीण है कि इतनी अल्प मात्रा के वायदा क़ारोबार का बाज़ार के भौतिक मूल्यों पर कोई अधिक प्रभाव पड़े।

तथ्य संख्या-3

वायदा बाजार से जुड़ी वस्तुओं के मूल्य में वृद्धि ग़ैर-वायदा क़ारोबार वाली वस्तुओं की तुलना में काफ़ी कम रही है। उदाहरण के लिए चने (जिसका सौदा वायदा क़ारोबार में भी होता है) के हाज़िर मूल्य में दिसंबर 08 से दिसंबर 09 के दौरान हुई वृद्धि 12 प्रतिशत से कम रही, जबकि उन दालों जिनका सौदा वायदा बाज़ार में नहीं होता यथा- अरहर, उड़द और मूंग के मूल्यों में उसी अवधि में क्रमश: 61,70 और 148 प्रतिशत तक वृद्धि दर्ज़ की गई।

तथ्य संख्या-4

तुअर (अरहर) के मूल्य व्यवहार के बारे में विचार करते हैं। वायदा बाज़ार में उसका सौदा करने पर प्रतिबंध लगा दिया गया था। वायदा बाज़ार में सूचीबद्ध होने तथा उस पर प्रतिबंध लगाए जाने की अवधि में हाज़िर मूल्यों में हुए परिवर्तन की तुलना करने पर पता चलता है कि इस आम धारणा के विपरीत कि वायदा कारोबार से मूल्य में वृद्धि होती है, वास्तविकता यह रही कि इस प्रकार के क़ारोबार से अरहर के मूल्य को नियंत्रण में रखने में मदद मिली है (देखें तालिका-2)।

तथ्य संख्या 3 और 4 से स्पष्ट हो जाता है कि सही ढंग से काम करने वाले वायदा बाज़ार का प्रभाव लाभकारी होता है। इससे जोख़िम उठाने में असमर्थ व्यक्तियों को न केवल अपना जोख़िम बाज़ार के अन्य भागीदारों की ओर आगे बढ़ाने में मदद मिलती है, बल्कि पारदर्शिता भी आती है। इस प्रकार सटोरियों और बेईमान कंपनियों के लिए वस्तुओं के मूल्यों में वृद्धि करना थोड़ा मुश्किल हो जाता है। इस पहलू के नीतिगत प्रभाव का विस्तृत ब्यौरा 5 और 6 तथ्य संख्या के तहत दिया गया है।

तथ्य संख्या-5

मूल्यों के संबंध में विनिमय बाज़ार से जो संकेत प्राप्त होते हैं वे थोक बाज़ार के मूल्यों के बारे में होते हैं जबकि उपभोक्ताओं को खुदरा मूल्य चुकाने होते हैं। दोनों के बीच जो अंतर होता है वह क़ारोबार की लागत के कारण होता है। इसमें अन्य बातों के अलावा, मूल्यों में उतार-चढ़ाव के कारण व्यापारियों का जोखिम भी जुड़ा होता है। जहां तक प्रश्न जिंस बाज़ारों द्वारा सौदे में बरती गई पारदर्शिता और मूल्यों में उतार-चढ़ाव की संभावना को सीमित करने का है, यह कहा जा सकता है कि बाज़ार में किए गए सौदे से उपभोक्ताओं और उत्पादकों, दोनों को लाभ होता है। उत्पादक को यथासंभव बेहतर और उपभोक्ता को यथासंभव कम मूल्य का लाभ होता है, क्योंकि समूची मूल्य शृंखला में प्रत्येक स्तर पर उपर्युक्त अंतर में कमी होती जाती है। यह सही है कि भारत में जिन वस्तुओं के मूल्यों में सबसे अधिक उतार-चढ़ाव होता है, उनका सौदा वायदा बाज़ार में नहीं होता। उदाहरण के लिए, तुअर, उड़द और चना के भाव में औसत दैनिक उतार-चढ़ाव की तुलना करें तो स्पष्ट होता है कि तुअर और उड़द के भाव में दैनिक उतार-चढ़ाव का औसत चने की तुलना में कहीं अधिक है, जबकि चने का सौदा वायदा बाज़ार में होता है (देखें तालिका-3)। पिछली खरीफ फ़सल के दौरान, जब मानसून ने साथ नहीं दिया था, यह उतार-चढ़ाव और भी ज्यादा हो रहा था। मानसून की अवधि में मध्य जून से मध्य अक्तूबर 2009 के दौरान मूल्यों में उतार-चढ़ाव से यह बात पूरी तरह से साफ़ हो जाती है।

इससे यह स्पष्ट हो जाता है कि वायदा कारोबार, 'जमाखोरी' के मुख्य कारण, 'मूल्य में उतार-चढ़ाव' को काबू में रख सकता है। जमाखोरी के ख़िलाफ़ कठोर प्रशासकीय उपायों से केवल 'जमाखोरी' को रोका जा सकता है, परंतु जमाखोरी के प्रमुख कारण अर्थात मूल्य में उतार-चढ़ाव को नहीं। वायदा बाज़ारों को विकसित और परिपक्व होने का अवसर मिलेगा तो मूल्यों में उतार-चढ़ाव में कमी के ज़रिये जमाखोरी की समस्या का समाधान किया जा सकता है। तथ्य संख्या 5 और 6 में इस बात को स्पष्ट करने का प्रयास किया गया है।

तथ्य संख्या-6

भारत में सोयाबीन तेल और कच्चे खजूर (पाम) तेल जैसी वस्तुओं का भारी आयात होता है और इनका मूल्य अंतरराष्ट्रीय मूल्यों पर निर्भर होता है। यदि भारतीय जिंस बाज़ारों के कारोबार में इनके मूल्यों में अचानक कोई तेज़ी आती है और जिसका प्रभाव उसके हाज़िर मूल्यों पर भी दिखाई देता है, तो वह अंतरराष्ट्रीय

तालिका-3

भारतीय जिंस विनिमय बाज़ारों में हाज़िर मूल्यों में दैनिक उतार-चढ़ाव का औसत- सौदे में शामिल जिंस बनाम सौदे से परे जिंस

	सीवाई 2009	जून 16 से अक्तूबर 16, 2009
जिंस वायदा बाज़ार में सौदे में शामिल जिंस		
चना	1.39%	1.54%
जिंस वायदा बाज़ार में सौदे से परे जिंस		
तुअर	7.00%	11.60%
उड़द	6.40%	10.90%

स्रोत : *सीएमआईई इंडिया हार्वेस्ट में दिल्ली बाज़ार के आंकड़े*

तालिका-2

तुअर- विभिन्न समयावधियों में मूल्यों में हुआ प्रतिशत परिवर्तन

अवधि	स्थिति	मूल्यों में % वृद्धि
अक्तूबर 2001 से मई 2004 (32 माह)	पूर्व-वायदा कारोबार	32.5%
जून 2004 से जनवरी 2007 (31 माह)	वायदा कारोबार के दौरान	6.5%
फरवरी 2007 से दिसंबर 2009 (35 माह)	प्रतिबंध के उपरांत	86.6%

स्रोत : *सीएमआईई इंडिया हार्वेस्ट में दिल्ली बाज़ार के आंकड़े*

बाज़ार में बढ़ी हुई क़ीमतों के कारण ही होता है (तालिका-4)। इसके अलावा, विदेशी मुद्रा में उतार-चढ़ाव के प्रतिकूल प्रभाव से भी आयात की लागत बढ़ जाती है। यदि भारत में मूल्य अधिक होता है तो कारोबारियों के लिए हाज़िर बाज़ारों में कम बिकने वाले जिंसों का सौदा करने का यह अच्छा अवसर होता है। इसे ही आगे जाकर जिंस बाज़ार में पहुंचाया जाता है।

तथ्य संख्या-7

वायदा मूल्यों में अचानक आने वाली तेज़ी को इस बात के संकेत के रूप में लिया जाना चाहिए कि अभाव की स्थिति आने वाली है और तदनुसार आपूर्ति बढ़ाने के लिए प्रशासकीय कदम उठाए जाने की आवश्यकता है। उदाहरण के लिए, जब (2009 में) अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में चीनी के दामों में 127 प्रतिशत तक की बढ़ोतरी हुई थी, घरेलू बाज़ार में केवल 79.6 प्रतिशत की मूल्य वृद्धि हुई थी। आपूर्ति बढ़ाने के लिए भारत सरकार द्वारा किए गए प्रयासों के कारण ही यह संभव हो पाया था।

मुद्रास्फ़ीति क्यों हुई?

यदि हाल की मुद्रास्फीति में वृद्धि वायदा बाज़ार के कारण नहीं हुई तो किसके कारण हुई? भारत में मूल्य वृद्धि के कारणों की समीक्षा, विशेषकर कृषि उत्पादों के मूल्य की समीक्षा, के किसी प्रयास से पूर्व हमें इन जिंसों की आपूर्ति से संबंधित आधारभूत तथ्यों को ध्यान में रखना होगा। इनमें से अधिकांश भारत में खास तौर पर लागू होती हैं। अधिकांश मुख्य खाद्य वस्तुओं की आपूर्ति, कृषि की पर्या-प्रणालियों में विविधता के कारण होने वाले भारी उतार-चढ़ाव से प्रभावित होती है। कृषि से जुड़ी तमाम समस्याओं का खाद्यान्न उत्पादन और मूल्यों के उतार-चढ़ाव पर सीधा असर पड़ता है। नीचे दो जिंसों- आलू और चीनी के उदाहरणों से इसे स्पष्ट किया गया है।

आलू के मूल्य 2007-08 के बाज़ारी मौसम में 3 करोड़ 10 लाख टन के रिकॉर्ड उत्पादन के कारण 2 रुपये प्रति किलोग्राम के निम्न स्तर तक आ गए थे। अगले मौसम में देश के प्रमुख उत्पादक क्षेत्रों में फ़सल में लगी बीमारी (अनमारी) के कारण आलू के उत्पादन पर प्रतिकूल प्रभाव पड़ा और बाज़ार में देरी से पहुंचा। इससे उसके मूल्य बढ़ गए। अन्य सब्ज़ियों के मूल्य में वृद्धि का प्रभाव भी आलू की क़ीमत पर पड़ा लोगों ने सब्ज़ियों के स्थान पर आलू को ही लेना पसंद किया, जिसका प्रभाव उसकी क़ीमत पर पड़ना ही था।

दूसरी ओर, चीनी की मूल्य वृद्धि का मुख्य कारण जिंस और मूल्य के परस्पर संबंधों का चक्रीय प्रभाव रहा। लगातार दो वर्षों के भरपूर फ़सल के कारण भंडार भरे थे और इसलिए क़ीमत भी कम रही। इन दो वर्षों के बाद 2008-09 के मौसम में चीनी के घरेलू बाज़ार में अभाव की स्थिति पैदा हो गई। पैदावार में 44 प्रतिशत की गिरावट का प्रभाव चीन की मूल्य वृद्धि में देखने को मिला। उत्पादन गिरने से हतोत्साहित किसानों ने गन्ने के स्थान पर अनाज की फ़सलों का रुख किया। क्योंकि उनकी बेहतर क़ीमत मिल रही थी। उनका न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) भी उत्साहवर्धक था। इस मौसम में और उसके अगले मौसम में, कम वर्षा के कारण भी कम पानी की ख़पत वाली फ़सलों के प्रति किसानों की रुझान बढ़ी और गन्ने की पैदावार प्रभावित हुई।

इन दृष्टांतों से स्पष्ट है कि आपूर्ति को प्रभावित करने वाले बाह्य कारण ही मौजूदा मुद्रास्फीति के लिए मुख्य रूप से जिम्मेदार हैं। परंतु, मुद्रास्फीति पर नियंत्रण के इरादे से जो नीतिगत उपाय अपनाए गए उनमें विभिन्न जिंसों के वायदा करोबार पर रोक लगाने का गलत निर्णय भी शामिल था। दरअसल, प्रतिबंध से इन वस्तुओं के मूल्यों में कोई कभी नहीं आई। इसके विपरीत, आलू और चीनी जैसे जिंसों के मूल्य से आपूर्ति में भारी अभाव के कारण, वृद्धि तेज़ी से जारी रही। सच्चाई यह है कि वायदा कारोबार से भावी क़ीमतों का अनुमान लगाया जाता है और इसलिए, इनसे भविष्य में जिंसों की उपलब्धता का संकेत मिलता है। इस प्रकार इससे आपूर्ति की भावी स्थिति को देखते हुए समय पर नीतिगत फैसले लेने में मदद ही मिलती है। अत: वास्तव में वायदा बाज़ार की संस्था को और सुदृढ़ बनाने की ज़रूरत है ताकि भविष्य में जिंसों की उपलब्धता के बारे में समय पर सही संकेत मिल सकें।

मुद्रास्फीति की मांग संबंधी व्याख्या

जैसाकि उपर्युक्त विश्लेषण से स्पष्ट है मुद्रास्फीति और वायदा बाज़ार में अनियंत्रित संबंधों का कोई प्रमाण नहीं है। परंतु इस बाज़ार में भी मूल्यों में साधारण वृद्धि होती रहती है, जिसकी झलक हाज़िर बाज़ार के मूल्य में साधारण वृद्धि के रूप में दिखाई देती है। स्वतंत्र पर्यवेक्षकों, अर्थशास्त्रियों और यहां तक कि भारत सरकार द्वारा गठित अभिजित सेन समिति ने भी अनियंत्रित संबंधों के न होने की पुष्टि की है। मुद्रास्फीति के अनेक कारण हैं। इनमें से मांग संबंधी मुद्दों पर तथ्य संख्या 3 में संक्षिप्त चर्चा की गई है। मुद्रास्फीति पर नियंत्रण के लिए जो नीतिगत क़दम फौरी तौर पर उठाए गए हैं, उनमें आपूर्ति से संबंधित उपाय बहुत कम हैं। ऐसा इसलिए नहीं कि ये मुद्दे आमतौर पर भारतीय अर्थव्यवस्था में निहित कतिपय संरचनात्मक अवरोधों से जुड़े हैं, बल्कि इसलिए भी कि हमारी जैसी वैश्विक अर्थव्यवस्था में बाह्य संकट बड़ी तेज़ी से राष्ट्रीय अर्थव्यवस्था में भी लगते हैं। अत: मांग प्रबंधन पर ज़ोर देना महत्वपूर्ण है, विशेषकर इसलिए कि इससे मुद्रास्फीति संबंधी दबावों पर इसका काफी असर पड़ता है और 'करने योग्य कार्यों' का माहौल बनता है। 2007-09 की वैश्विक मंदी की पृष्ठभूमि में विस्तारवादी राजकोषीय और मौद्रिक नीतियों ने संभवत: उच्च मुद्रास्फीति को बढ़ावा दिया है, परंतु मंदी के ठीक पूर्व के वर्षों में भी उल्लेखनीय उदार राजकोषीय और मौद्रिक स्थितियां बनी हुई थीं। इनसे ही मुद्रास्फीति के इस प्रथम सिद्धांत की रचना को बल मिला कि ''बहुत सारा पैसा, कुछ थोड़े से माल के पीछे पड़ा है।''

सच्चाई यह है कि 2003 से 2007 के बीच के समृद्धि काल में अधिकांश राष्ट्रों की विस्तारवादी नीतियों के साथ-साथ मौद्रिक नीति में भी ढिलाई बरती जा

तालिका-4

अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में वायदा मूल्यों में प्रतिशत परिवर्तन

जिंस	विनिमय बाज़ार (एक्सचेंज)	सीवाई 2009
सोयाबीन तेल (सीबीओटी)	सीबीओटी (सीएमई)	20.2%
चीनी (कच्ची)	एनवाईबीओटी (आईसीई)	127.4%
सीवीओ	बुसी मलेशिया	48.4%
कपास	एनवाईबीओटी (आईसीई)	54.6%

स्रोत : *ब्लूमबर्ग*

रही थी। उदाहरण के लिए, अमरीका में 2001 की मंदी के बाद ब्याज दर 1 प्रतिशत तक कम कर दी गई थी। इससे हुआ यह कि पहले से ही ख़र्चीले अमरीकियों ने कमाई से अधिक पैसा ख़र्च करना शुरू कर दिया, जिससे अमरीका में भारी व्यापार घाटा छा गया और भारत जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं में व्यापार अधिशेष (सरप्लस) की स्थिति पैदा हो गई। इसके साथ ही अमरीकी अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति को नियंत्रण में रखने के लिए भारत जैसे कम वेतन वाले देशों से आर्थिक कार्यकलापों को 'आउटसोर्स' कराया जाने लगा। इससे भारत में उच्च विकास की एक और स्थिति पैदा हुई, जहां आवास तथा शेयरों जैसी परिसंपत्तियों के मूल्य में अप्रत्याशित वृद्धि होने लगी। भारतीय रिज़र्व बैंक ने सार्वजनिक क्षेत्र की बैंकिंग प्रणाली के साथ मिलकर परिसंपत्ति निर्माण के बुलबुलों को शुरू में ही शांत करने के लिए आगे आकर क़दम उठाए। इसके बावजूद मुद्रा की आपूर्ति बढ़ती गई। इसका एक कारण यह भी रहा कि रिज़र्व बैंक समृद्धि काल में विदेशी मुद्रा के भारी अंतर्प्रवाह के साथ-साथ रुपये के मूल्य में वृद्धि को भी रोकना चाहता था।

जब मुद्रा-आपूर्ति अर्थव्यवस्था की सहन क्षमता से आगे निकल गई, कुल व्यय ने कुल उत्पादन को पीछे छोड़ दिया और इस प्रकार क़ीमतें बढ़ने लगी। वे यह संकेत देने का प्रयास कर रही थीं कि विकास दर पर लगाम लगाने की ज़रूरत है। परंतु, भारत में विकास दर की कमी लाने की नीतिगत कार्रवाई राजनीतिक रूप से एक कठिन निर्णय होता है, विशेषकर उस समय जब देश तेज़ी से टिकाऊ विकास के लिए संघर्षरत है। तथापि, भारत की सकल मुद्रा आपूर्ति का समग्र आकार अथवा एम-3 2004-05 में 12 प्रतिशत का था, जो 2006-07 में बढ़कर 21.7 प्रतिशत तक पहुंच गया था। वर्ष 2008-09 के दौरान इसमें मामूली गिरावट आई और यह 18.6 प्रतिशत पर आ गया। (आर्थिक समीक्षा)।

यह विडंबना ही है कि मंदी के बाद के दिनों में भी जिन देशों की ढीली-ढाली मौद्रिक नीति आंशिक रूप से मंदी की ओर ले जाने वाले आर्थिक संकट की जिम्मेदार थी, उन देशों ने मंदी को पूरे तौर पर रोकने के लिए उसी नीति पर चलना जारी रखा। इस प्रकार, अमरीका के संघीय रिज़र्व बैंकर (फेडरल रिज़र्व) ने समृद्धि काल की अधिकांश अवधि में 2 प्रतिशत से भी कम ब्याज दर को बनाए रखा और अब अपनी अर्थव्यवस्था को मंदी के शिकंजे से बाहर लाने के लिए लगभग शून्य स्तर की ब्याज दर बनाए रखने को विवश है। भारत में, उसी अवधि में, ढीली-ढाली मौद्रिक नीति के अलावा अनेक विस्तारवादी राजकोषीय नीतियों को लागू किया गया। इसमें प्रमुख थीं– छठे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों को लागू करना और राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी कार्यक्रम पर अमल करना और इनका कोई संबंध मंदी से नहीं था। इन देशों के मौद्रिक नीति-निर्धारकों ने जिस बात पर गौर नहीं किया, वह यह कि जब इससे पैदा होने वाली मुद्रास्फीति के साथ-साथ नीतिगत फैसले के कारण कम ब्याज दरें भी बनी रहती हैं, तो अत्यंत निम्न अथवा वस्तुतः ऋणात्मक ब्याज दर की उत्पत्ति होती है। इससे मुद्रा की वास्तविक आपूर्ति में इज़ाफ़ा होता है और मुद्रास्फीति की आग और भी भड़क उठती है। मेरिल लिंच के एक सर्वेक्षण से पता चलता है कि वास्तविक ब्याज दर में एक प्रतिशत की भी कमी से दस महीनों में वस्तुओं के मूल्यों में 17 प्रतिशत की वृद्धि हो जाती है। इस प्रकार, विस्तारवादी मौद्रिक नीति से मुद्रास्फीति पर दबाव बनता है। परंतु यह दबाव नकारात्मक ब्याज दरों के ज़रिये अप्रत्यक्ष रूप से ही होता है।

भारत सरकार इन दिनों मौद्रिक संकुचन के ज़रिये मुद्रास्फीति से लड़ रही है, भले ही इससे विकास की गति कुछ धीमी हो जाए। मौद्रिक संकुचन को इस समय पूर्व की अपेक्षा अधिक ज़रूरी समझा जा रहा है, क्योंकि मुद्रास्फीति का प्रभाव खाद्यान्न से गैर-खाद्यान्न वस्तुओं की ओर फैल गया है। उधर, उद्योगों में मौजूदा क्षमता से अधिक विकास के संकेत दिखाई दे रहे हैं।

कमोडिटी डेरिवेटिव्स : मुद्रास्फीति से प्रभावी बचाव (हेज)

ऊपर हाल के दिनों में मुद्रास्फीति का सामना कर रही अर्थव्यवस्था के मांग संबंधी दृष्टिकोण को सामान्य तौर पर समझाने का प्रयास किया गया है। विशेष रूप से देखा जाए तो इस दानव को वश में करने के लिए प्रभावी मांग प्रबंधन को लक्ष्य कर नीतियों को लागू किया गया है। परंतु मौद्रिक नीतियां बाज़ार के आपूर्ति पक्ष की समस्याओं का निराकरण नहीं कर सकतीं, क्योंकि इन दिनों जो महंगाई दिखाई दे रही है, उसका असली कारण भी यही (आपूर्ति) है। इसके अतिरिक्त, मौद्रिक नीतियां बाज़ार के सहभागियों की अपेक्षाओं को आधार प्रदान करने में नीतिगत संकेत के रूप में अधिक प्रभावी भूमिका निभाती हैं बजाय इसके कि वे माल और सेवाओं की उपलब्धता को वास्तविक रूप से सुनिश्चित अथवा नियंत्रित कर सकें। बाज़ार पर उनका प्रभाव कुछ देरी से पड़ता है। इसके साथ ही, जिंसों की मूल्यवृद्धि जब विदेशी बाज़ारों के प्रभाव के कारण होती है, या फिर मानसून की विफलता जैसे बाह्य कारणों से, उस स्थिति में घरेलू मौद्रिक नीति कुछ खास नहीं कर सकती। अतः मौद्रिक और राजकोषीय नीतियों की सम्मिलित सख़्ती से ही मुद्रास्फीति को नियंत्रण से बाहर जाने से रोका जा सकता है। इसी से इसको एक क्षेत्र से दूसरे क्षेत्र में फैलने से भी रोका जा सकता है।

बारीकी से ग़ौर किया जाए, तो व्यक्तियों और कारपोरेट इकाइयों द्वारा मुद्रास्फीति को नहीं रोका जा सकता, परंतु मुद्रास्फीति से बचाने वाली शक्तिशाली व्यवस्था (हेजिंग) को अपनाकर उन पर इसके प्रभाव को कम अवश्य किया जा सकता है। इस पक्ष की ओर अभी किसी हितधारक ने पर्याप्त ध्यान नहीं दिया है। जिंसों के वायदा बाज़ार की संस्था का भी ध्यान नहीं गया है। भारत और चीन जैसी उभरती अर्थव्यवस्थाओं में, इसे अच्छी लोकप्रियता मिली है, क्योंकि इन देशों में मुद्रास्फीति में संभावित वृद्धि से उपभोक्ताओं और उत्पादकों की रक्षा के लिए बाज़ार में जिंस का कारोबार प्रचलित है। जैसाकि तथ्य संख्या 2 में परीक्षण और सिद्ध किया गया है, वायदा बाज़ार में जिंसों के कारोबार से न केवल उन पर मुद्रास्फीति के प्रभाव में कमी आई है, बल्कि उनके मूल्यों में उतार-चढ़ाव भी अन्य जिंसों की तुलना में कम ही रहा है। दरअसल, जिंसों के वायदा कारोबार से बाज़ार के अनेक कारोबारियों के लिए जोख़िम की संभावना क्षीण हुई है। उनके लिए यह जोख़िम की संभावना को समाप्त करने वाला बेहतर साधन सिद्ध हुआ है।

इसके बावजूद, विकल्प और सूचकांक जैसे जोख़िम से बचाव वाले उत्पादों, जिनको विभिन्न कंपनियों की जोख़िम सहने की क्षमता के अनुसार उपयुक्त रूप से तैयार किया जा सकता है, को भारत में काम करने की अनुमति नहीं है। इसी प्रकार, वित्तीय संस्थाओं और विदेशी कंपनियों को भी हमारे बाज़ारों में कारोबार

(शेषांश पृष्ठ 48 पर)

मुद्रास्फीति
प्रवृत्तियां, कारण और नीतिगत विकल्प

● एन.आर.भानुमूर्ति

अर्थशास्त्र में किसी एक वर्ष की समयावधि में माल और सेवाओं की क़ीमतों के स्तर में वृद्धि को मुद्रास्फीति कहा जाता है। दूसरे शब्दों में इससे पता चलता है कि एक साल पहले की तुलना में आज सामान्य क़ीमतें कितने प्रतिशत बढ़ चुकी हैं। मुद्रास्फीति में इस वृद्धि (या गिरावट) का मतलब यह है कि पैसे की क्रय शक्ति में कमी (या वृद्धि) हुई है। यह माप रहन-सहन की लागत के रुझान को समझने और प्रवृत्तियों की तुलना के लिए बहुत उपयोगी होता है। नीतिगत दृष्टिकोण से, खासतौर से आर्थिक मामलों से जुड़े अधिकारियों के लिए मुद्रास्फीति पर नज़र रखना ज़रूरी विकास नीतियां बनाने में बहुत उपयोगी सिद्ध होता है।

हाल की अवधि में भारत में मुद्रास्फीति दर काफ़ी ऊंची रही है और यह नीतिगत चिंता का विषय बन गई है क्योंकि इसका देश के कल्याण और विकास पर बुरा असर पड़ता है। हाल के आंकड़े दर्शाते हैं कि मई 2010 में प्रमुख मुद्रास्फीति दर 10.16 प्रतिशत रही जबकि रिज़र्व बैंक ने अप्रैल 2010 में जारी ऋण नीति वक्तव्य में 5 प्रतिशत मुद्रास्फीति दर को ठीक-ठाक बताया था। इस संदर्भ में आइए हम मुद्रास्फीति (प्रमुख एवं उपघटकों के रूप में) पर नज़र डालें और उच्च दरों के चालकों का विश्लेषण करें। इस चर्चा के आख़िर में हम उन नीतिगत विकल्पों का भी ज़िक्र करेंगे जो मुद्रास्फीति दर को क़ाबू रखने में मदद करते हैं।

हाल की प्रवृत्तियां

इसके पहले कि हम मुद्रास्फीति दरों की हाल की प्रवृत्तियों पर नज़र डालें, हमें मुद्रास्फीति को मापने के मौजूदा मानकों को समझने की ज़रूरत है। किसी भी अर्थव्यवस्था की तरह, भारत में भी मोटे तौर पर अनुमान लगाने के दो आधार हैं। पहला है थोक बाज़ार की क़ीमतें (जिन्हें थोक मूल्य सूचकांक-डब्ल्यूपीआई कहा जाता है)। दूसरा है फुटकर बाज़ार सूचकांक (उपभोक्ता मूल्य सूचकांक-सीपीआई)। सीपीआई के अंतर्गत तीन प्रमुख सूचकांक हैं जो तीन समूहों से संबंधित हैं। ये समूह हैं औद्योगिक श्रमिक, शहरी गैर-शारीरिक श्रम करने वाले कर्मचारी और खेतिहर मज़दूर। लेकिन पूरी अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करने वाला कोई समेकित उपभोक्ता मूल्य सूचकांक नहीं है। जहां तक थोक मूल्य सूचकांक का सवाल है, यह सूचकांक सिर्फ़ वस्तुओं की क़ीमतों का सूचक है, सेवाओं का नहीं। इस प्रकार से इसके नीति-ज़रिये निर्धारकों और अनुसंधानकर्ताओं को अपने कार्य के लिए उपयुक्त मूल्य सूचकांक का चयन करना मुश्किल हो जाता है। लेकिन थोक मूल्य सूचकांक ऐसा सूचकांक है जिसके ज़रिये विश्लेषक और नीतिनिर्धारक मूल्यों पर नज़र रख सकते हैं क्योंकि उपभोक्ता मूल्य सूचकांक की तुलना में थोक मूल्य सूचकांक में सूचनाएं जल्दी प्राप्त होती हैं और इस काम में अधिक समय नहीं लगता। उपभोक्ता मूल्य सूचकांक में सूचनाएं प्राप्त होने में दो महीने तक का समय लग जाता है। आमतौर पर यह भी माना जाता है कि थोक बाज़ार की क़ीमतों में किसी प्रकार के परिवर्तन को फुटकर बाज़ार में प्रेषित कर दिया जाता है। इस प्रकार से थोक मूल्य सूचकांक सामान्य मूल्य स्तर पर नज़र रखने का बेहतर

सूचकांक हो सकता है। फिर भी, नीचे दिए गए ग्राफ़ पर एक नज़र डालने से स्पष्ट हो जाएगा कि थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक के बीच सम्मिलन काफी कमजोर होता है। यह तब और भी कमजोर हो सकता है जब मुद्रास्फीति दर ऊंची हो और इसमें अधिक समय लग रहा हो। इस प्रकार मूल्य सूचकांकों में विभिन्नता का परिणाम यह होता है कि नीति पर इसके अलग-अलग प्रकार के प्रभाव पड़ते हैं।

मुद्रास्फीति की दरों में हाल की प्रवृत्तियों से स्पष्ट होता है कि इस समय भारत में 2009 के अंत से ही मुद्रास्फीति दर काफी ऊंची है और वर्तमान काल से मई 2010 में यह दर 10.16 प्रतिशत के असुविधाजनक स्तर पर थी। उम्मीद की जा रही है कि यह दर और बढ़ेगी। अगर अलग-अलग करके देखें तो स्पष्ट होगा कि 2009 के मध्य से ही खाद्य और गैर-खाद्य तथा ईंधन समूहों के वर्गों में कीमतें तेज़ी से बढ़ रही थीं जबकि निर्माता क्षेत्र में लंबे समय से यह दर 6 प्रतिशत के दबे हुए स्तर पर थी। अर्थव्यवस्था में मुद्रास्फीति की न्यूनतम दर उत्पादक गतिविधियों के लिए महत्वपूर्ण प्रोत्साहक सिद्ध होती है, अत: उपभोक्ताओं पर इसका बुरा असर पड़ सकता है और ग़रीब वर्ग इससे खासतौर से प्रभावित होगा। भारत में आमतौर पर ग़रीब वर्गों को सूचकांक में शामिल नहीं किया जाता। अगर इसको आधार मानें, तो हमारे अपने अध्ययनों से ज़ाहिर होगा कि अतीत में भारत में अधिकांशत: मुद्रास्फीति का सहनीय स्तर 4 से 4.5 प्रतिशत रहा है। नीति-निर्माताओं और खासतौर से मुद्रास्फीति मामले से जुड़े अधिकारी मुद्रास्फीति दर को इसी स्तर पर रखने की कोशिश करते हैं। भारत में मुद्रास्फीति को लक्ष्य बनाने की व्यवस्था भले ही न अपनाई जाती हो, लेकिन आमतौर पर नीतिगत वक्तव्यों से यह स्पष्ट होता है और वार्षिक ऋण नीति से भी ठीक साबित होता है कि कोई सेंट्रल बैंक मुद्रास्फीति दर को नियंत्रण से बाहर जाते देख, नियंत्रित करने के तुरंत उपाय करता है। अनेक देशों में कानून बनाकर वह स्तर तय कर दिया जाता है जिस पर मुद्रास्फीति दर नियंत्रित की जानी चाहिए। उदाहरण के लिए ब्रिटेन ने यह दर 2 प्रतिशत निर्धारित की है।

उच्च मुद्रास्फीति दर के कारण

जैसीकि ऊपर चर्चा की गई है, इस समय अर्थात मई 2010 में थोक मूल्य सूचकांक के अनुसार मुद्रास्फीति दस प्रतिशत से ज्यादा है। शिकागो स्कूल के नोबल पुरस्कार विजेता मुद्राशास्त्री मिल्टन फीडमैन जैसे विद्वानों का मत है कि दीर्घ अवधि में मुद्रास्फीति दर हर जगह दिखाई देती है। इसका मतलब है कि मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि मुद्रास्फीति का प्रमुख कारण है और दीर्घ अवधि में मुद्रास्फीति दर सिर्फ़ कड़ी मुद्रा नीति के ज़रिये नियंत्रित की जा सकती है। लेकिन इसके विपरीत राय रखने वाले अन्य विद्वान भी हैं जैसे काइनेसियंस जिनका कहना है कि इस मामले में मुद्रा प्रवाह इतना महत्वपूर्ण नहीं होता बल्कि निजी और सरकारी ख़र्च मुद्रास्फीति दर तय करते हैं। इस प्रकार से काइनेसियंस की विचारधारा के समर्थकों का सुझाव है कि अकेली मुद्रा ही मुद्रास्फीति दर का निर्णायक नहीं है। मुद्रा की भूमिका तभी होती है जब उसकी विकास दर अर्थव्यवस्था की समाहित करने की क्षमता से ज्यादा होती है। एक अन्य राय मुद्रास्फीति की लागत बढ़ने पर आधारित है। इसका प्रमुख आधार आपूर्ति में आने वाली रुकावटें हैं जिसके परिणामस्वरूप कुल मिलाकर आपूर्ति में कमी आती है। समग्र रूप से देखें, तो ऐसे अनेक सिद्धांत हैं जो मुद्रास्फीति के अलग-अलग कारण बताते हैं और जिनका आधार अनेक अध्ययन हैं जो इसी विशेष विचारधारा पर आधारित हैं। लेकिन ऐसा करना उपयुक्त नहीं होगा। भारत में मुद्रास्फीति के कारण जानने के उद्देश्य से अनेक अध्ययन किए गए हैं और उनके निष्कर्ष अलग-अलग रहे हैं। मुद्रास्फीति का व्यवहार बहुत गतिशील होता है अत: इस व्यवहार के बारे में सिद्धांतों को स्पष्ट करना भी गतिशील होना चाहिए। यही कारण है कि इस बात को नियमित आधार पर जांचने की ज़रूरत है।

जहां तक भारत का सवाल है, इस बात पर ध्यान देने की ज़रूरत है कि थोक मूल्य सूचकांक के सिद्धांत में भी अनेक ऐसी जिंसें शामिल हैं जिनका प्रशासन अब भी सरकार द्वारा किया जाता है। उदाहरण के लिए चावल, गेहूं, दालें और खाद्य तेल जैसी अनेक मदें हैं जिनकी क़ीमतें अब भी सरकार द्वारा उस कृषि लागत एवं मूल्य आयोग के ज़रिये घोषित की जाती हैं। सरकार हर वर्ष फ़सल कटाई सीज़न से पहले न्यूनतम समर्थन मूल्य घोषित करती है। इसी तरह ईंधन समूह में भी अभी कुछ समय पहले तक क़ीमतें नियंत्रित की जाती थीं और डीजल और मिट्टी के तेल की क़ीमतें अभी भी विनियमित की जा रही हैं। इन अर्थों में थोक मूल्य सूचकांक में शामिल लगभग दो-तिहाई वस्तुएं ऐसी हैं जिनकी क़ीमतें बाज़ार की ताक़तों द्वारा निर्धारित होती हैं।

अगर तालिका पर एक नज़र डालें, तो स्पष्ट हो जाएगा कि इस समय अधिक मुद्रास्फीति के दर

मुद्रास्फ़ीति की हाल की प्रवृत्तियां
(अलग-अलग जिंस स्तर पर प्रतिशत में)

महीना	सभी वस्तुएं	प्रारंभिक वस्तुएं	खाद्य	गैर-खाद्य	ईंधन समूह	निर्माता
अप्रैल'08	8.04	8.85	5.54	10.99	7.02	8.07
जून'08	11.82	10.56	5.93	17.09	16.27	10.60
सितंबर'08	12.27	11.59	7.72	16.97	16.59	10.93
दिसंबर'08	6.15	11.15	9.95	9.35	-0.21	6.63
मार्च'09	1.20	5.21	7.54	-0.88	-6.00	2.29
जून'09	-1.01	6.52	10.89	0.12	-12.53	0.64
सितंबर'09	0.46	8.41	14.20	-3.56	-8.18	0.53
दिसंबर'09	8.10	16.09	20.04	9.84	5.92	5.42
जनवरी'10	9.44	15.45	18.41	10.87	8.12	7.30
फरवरी'10	10.06	15.99	18.11	12.95	10.22	7.52
मार्च'10	11.04	18.25	17.39	24.69	12.71	7.38
अप्रैल'10	9.59	13.88	16.87	10.53	12.55	6.70
मई'10	10.16	16.60	16.49	18.60	13.05	6.41

स्रोत : *रिज़र्व बैंक के पास उपलब्ध आंकड़ों के आधार पर अनुमानित। सभी आंकडे महीने के आखिर में उपलब्ध सूचना पर आधारित हैं*

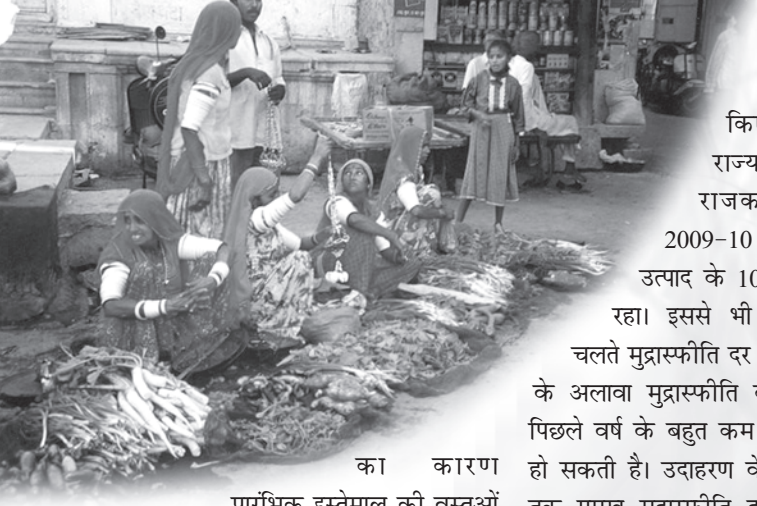

का कारण प्रारंभिक इस्तेमाल की वस्तुओं और ईंधन समूह में शामिल वस्तुओं की मूल्य वृद्धि है। इस बढ़ोत्तरी के अनेक कारण हैं। पहला तो यह कि जैसाकि हम जानते हैं, भारत में खेती अब भी बहुत हद तक मानसून पर निर्भर है। पिछले वर्ष कम वर्षा के चलते खेती की पैदावार प्रभावित हुई जिससे खाद्यानों की क़ीमतें बढ़ गई। दूसरे, सरकार ने कृषि गतिविधिओं के समर्थन में अनेक फसलों का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ा दिया। ये समर्थन मूल्य पिछले तीन वर्षों में बढ़कर कम-से-कम चार गुना हो चुके हैं। इसके कारण कुल मिलाकर खेती में पैदा होने वाली जिंसों की क़ीमतों में स्थायी रूप से बढ़ोत्तरी का रुझान पैदा हो गया। तीसरे, श्रम की क़ीमत बढ़ने के चलते कुल मिलाकर उत्पादन की लागत में भी बढ़ोत्तरी हुई। श्रम की क़ीमत बढ़ने का कारण महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गांरटी कार्यक्रम बताया गया है जिसके कारण कई राज्यों में श्रमिकों का रहन-सहन बेहतर हुआ है। चौथे, दुनियाभर में अनेक जिंसों और खासतौर से खाद्य पदार्थों तथा ईंधन वर्ग की वस्तुओं की क़ीमतों में आमतौर पर वृद्धि हुई है जिसका कारण वे अंतरराष्ट्रीय सामूहिक प्रोत्साहक रियायतें बताई गई हैं जिनकी अंतरराष्ट्रीय वित्तीय मंदी दूर करने के लिए ज़रूरत थी। अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में बढ़ोत्तरी के प्रभाव से घरेलू क़ीमतें भी बढ़ीं। पांचवें, हाल ही में सरकार ने ईंधन की क़ीमतों को नियंत्रणमुक्त करने का फ़ैसला किया और साथ ही सरकार ने ईंधन पर दी जाने वाली सब्सिडी ख़त्म करने का एलान किया जिसके चलते मुद्रास्फीति बढ़ाने वाली प्रवृत्तियां सक्रिय हुईं और अंततः लेहमैन के पतन के बाद भारत सरकार ने भी अन्य औद्योगिक देशों की तरह राजकोषीय और मुद्रा संबंधी प्रोत्साहक कार्यक्रम शुरू किए जिससे केंद्र और राज्य दोनों स्तरों पर राजकोषीय घाटा वर्ष 2009-10 के दौरान सकल घरेलू उत्पाद के 10.8 प्रतिशत के बराबर रहा। इससे भी मांग पक्ष बढ़ने के चलते मुद्रास्फीति दर बढ़ी। इन सभी कारकों के अलावा मुद्रास्फीति की वर्तमान ऊंची दर पिछले वर्ष के बहुत कम आधार के कारण भी हो सकती है। उदाहरण के लिए सितंबर 2009 तक प्रमुख मुद्रास्फीति दर शून्य के आसपास रही थी, केवल जून 2009 में दिखाई दिया मुद्रा संकुचन इसका अपवाद है।

कुल मिलाकर देखा जाए तो वर्ष 2010-11 में अंतरराष्ट्रीय स्तर पर भी उथल-पुथल बनी रहेगी और इसे मैक्रोइकोनॉमिक स्थिरता का वर्ष कहा जा सकता है।

नीतिगत विकल्प

उच्च मुद्रास्फीति दर वाली स्थिति ने नीति निर्धारकों के सामने असमंजस की हालत पैदा कर दी है। मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना मुख्यतः मुद्रा संबंधी मामलों से जुड़े अधिकारियों की जिम्मेदारी है। अनेक बार रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया से मुद्रा नीतियां कठोर बनाने के अनुरोध किए जा चुके हैं। रिज़र्व बैंक ने लेहमैन पतन के बाद प्रोत्साहक कार्यक्रमों के अंतर्गत इनका पालन करते हुए 400 बेसिस प्वाइंट के आधार पर ब्याज दर कटौती वाली नीति बनाई है। लेकिन अंतरराष्ट्रीय मंदी के बाद जब अर्थव्यवस्था धीरे-धीरे उबर रही थी, तो इस प्रकार की आंशकाएं भी ज़ाहिर की जा रही थीं कि अगर इस नाजुक मौके पर नीतियां कठोर बनाई गई तो इनका अर्थव्यवस्था पर बुरा असर पड़ेगा। भारत में मुद्रास्फीति बढ़ने की स्थिति बनी हुई है जिसे देखते हुए रिज़र्व बैंक ऑफ इंडिया ने जुलाई 2010 में ब्याज दरें 25 बेसिस प्वाइंट के आधार पर बढ़ाने का फ़ैसला किया है। ये उस फ़ैसले पर आधारित है कि मांग पक्ष मज़बूत हो रहा है और प्रमुख मुद्रास्फीति मुद्रा नीति कठोर बनाकर नियंत्रित की जा सकती है।

मुद्रास्फीति सिर्फ़ मांग पक्ष से संबंधित कारणों की वजह से पैदा नहीं हुई है और मूल (कोर) मुद्रास्फीति मज़बूत हो रही है और आखिरकार यह 6 से 7 प्रतिशत के आस-पास आ सकती है। इसे देखते हुए मुद्रा नीतियां कठोर बनाने के उपाय भी दो अंकों में चल रही मुद्रास्फीति दर को क़ाबू करने में काफ़ी नहीं होंगी। इस सिलसिले में राजकोषीय और क्षेत्रीय नीतियों की भी प्रमुख भूमिकाएं हैं। राजकोषीय घाटा कम करने को विकास के साथ स्थिर मुद्रास्फीति का लक्ष्य प्राप्त करने में प्रमुख नीतिगत उपाय माना गया है। इस दिशा में केंद्र सरकार ने पहले ही उन राजकोषीय रियायतों को खत्म करने का मार्ग प्रशस्त कर दिया है जिनके द्वारा मांग के कारण बढ़ी हुई मुद्रास्फीति क़ाबू की जा सकती है। इस वर्ष सरकार ने खुद ही दिखाया है कि वह राजकोषीय उपायों के ज़रिये विनिवेश जैसे अन्य उपाय करके राजकोषीय घाटा कम करने में कितनी ज्यादा गंभीर है। लेकिन इस दिशा में कुछ अन्य संरचनात्मक उपायों की भी ज़रूरत पड़ेगी। इनमें से एक महत्वपूर्ण उपाय हो सकता है वर्तमान सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को मज़बूत बनाना। अगर अनाज़ के भंडार भरे हों, तो यह एक महत्वपूर्ण माध्यम हो सकता है जिसके ज़रिये खाद्य वस्तुओं संबंधी मुद्रास्फीति नियंत्रित की जा सकती है।

सारांश के रूप में कहा जा सकता है कि अगर मुद्रा संबंधी और राजकोषीय प्रोत्साहक उपाय लागू किए जाएं, तो भारतीय अर्थव्यवस्था मंदी के चरण से आसानी से उबर सकती है। लेकिन उच्च मुद्रास्फीति दर के कारण नीति निर्धारक दुविधा में पड़े हुए हैं। उन्हें उच्च विकास दर और उच्च मुद्रास्फीति दर में से एक को चुनना है। कोई भी कह सकता है कि अगर भारत को विकास दर में कुछ कमी करके भी इसकी क़ीमत चुकानी पडे, तो उसके लिए मुद्रास्फीति की उच्च दर को क़ाबू में लाना वांछनीय होगा। ये बात भारत जैसे देश के लिए और महत्वपूर्ण हो जाती है क्योंकि वहां लोग बड़ी संख्या में असंगठित क्षेत्र में काम करते हैं और उनकी रहन-सहन की लागत की कोई सुरक्षा नहीं है। इसके अलावा, ग़रीब वर्ग की आमदनी बढने में देर लगती है लेकिन उस पर बढ़ी क़ीमतों का असर जल्दी पड़ता है जिसे देखते हुए मुद्रास्फीति को क़ाबू करना प्राथमिकता की बात बन जाती है। ❑

(लेखक राष्ट्रीय सार्वजनिक वित्त एवं नीति संस्थान, नयी दिल्ली में प्रोफेसर हैं।
ई-मेल : nrbmurthy@gmail.com)

मौद्रिक नीति और भावी चुनौतियां

● रहीस सिंह

मौद्रिक नीति वह प्रक्रिया है जिसके द्वारा केंद्रीय बैंक या देश की मौद्रिक नियंत्रक संस्था मुद्रा की आपूर्ति और ब्याज दरों को नियंत्रित करती है। सामान्य तौर पर मौद्रिक नीति अर्थव्यवस्था की संवृद्धि और स्थायित्व को प्राप्त करने के लिए प्रयुक्त की जाती है जिसमें मूल्य की स्थिरता और न्यून बेरोज़गारी भी निहित होती है। सरल शब्दों में कहें तो मौद्रिक नीति का कार्य इतना है कि वह बाज़ार में मुद्रा का प्रसार करे या फिर संकुचन। अगर उसे मुद्रा का प्रसार करना होता है तो मुद्रा की आपूर्ति तेज़ी से बढ़ा दी जाती है और यदि संकुचन करना होता है तो मुद्रा आपूर्ति को घटा दिया जाता है या फिर इसे बहुत धीमी गति से बाज़ार में उतारा जाता है। इस लिहाज़ से मौद्रिक नीति को सरकार, केंद्रीय बैंक या देश की मौद्रिक संस्था तीन तरीक़ों से नियंत्रित करती है। प्रथम– मुद्रा आपूर्ति द्वारा, द्वितीय– मुद्रा की उपलब्धता द्वारा और तृतीय- मुद्रा का मूल्य अथवा संवृद्धि और अर्थव्यवस्था की स्थिरता के उद्देश्य को प्राप्त करने के लिए निर्धारित ब्याज दर के द्वारा। लेकिन अगर गहराई में जाकर देखें तो आज मौद्रिक निर्णय जिन कारकों पर आधारित हैं वे कहीं अधिक विस्तृत हैं। इन कारकों में लघुकालिक ब्याज दरें, दीर्घकालिक ब्याज दरें, अर्थव्यवस्था के माध्यम से मुद्रा का चलन वेग, मुद्रा की विनिमय दरें, क्रेडिट क्वालिटी, बांड और इक्विटी (कॉरपोरेट स्वामित्व और ऋण), सरकार बनाम न्रिज़ी क्षेत्र के ख़र्च और बचतें, बड़े पैमाने पर अंतरराष्ट्रीय पूंजी का प्रवाह और वित्तीय डेरिवेटिव्स, जैसेकि वायदा, स्वैप आदि शामिल हैं।

तालिका-1

विभिन्न देशों में मौद्रिक नीति के प्रकार

देश	मौद्रिक नीति का आधार
ऑस्ट्रेलिया	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित
ब्राज़ील	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित
कनाडा	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित
चीन	मौद्रिक आधारित और करेंसी बास्केट आधारित
भारत	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित
सिंगापुर	विनिमय दर लक्ष्य आधारित
दक्षिण अफ्रीका	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित
ब्रिटेन	स्फ़ीतिक लक्ष्य आधारित और इसके साथ-साथ दूसरा लक्ष्य आउटपुट और रोज़गार भी है
अमरीका	मिश्रित नीति (1980 के बाद यह टेलर नियम के माध्यम से स्पष्ट की जा सकती है जिसमें फेड फंड दरें स्फ़ीति और आउटपुट में लगने वाले झटकों को निर्देशित करती हैं)

सिद्धांततः मौद्रिक नीति की प्रकृति विकसित और विकासशील देशों में एक जैसी नहीं होती (देखें तालिका-1)। इसके कारण अलग-अलग हो सकते हैं। लेकिन विकसित और विकासशील देशों में इसके कारण स्पष्ट हैं। विकसित देशों में मुद्रा स्टॉकों को ख़र्च करने की समस्या होती है। इसलिए वहां केंद्रीय बैंक की जिम्मेदारी यह होती है कि मुद्रा स्टॉकों को बाज़ार के लिए इस प्रकार खोला जाए कि अर्थव्यवस्था में स्फ़ीतिक समस्या न उत्पन्न हो। लेकिन विकासशील या ग़रीब देशों में पहली आवश्यकता तो मुद्रा स्टॉकों के निर्माण की ही होती है। इसलिए इन देशों में मौद्रिक नीति की आवश्यकता कम राजकोषीय नीति की अधिक होती है क्योंकि मौद्रिक प्रसार का तरीक़ा अक़सर यहां स्फ़ीतिकारी और अर्थव्यवस्था में अस्थिरता लाने वाला सिद्ध होता है। लेकिन जब दुनिया वैश्विक पूंजीवाद की छतरी के नीचे आई तब यह अंतर बलपूर्वक या कपटपूर्ण ढंग से पाट दिया गया।

दरअसल, मौद्रिक प्रभाव की शुरुआत 1970 के दशक से ही हो गई थी जब दूसरी बार ओपेक द्वारा पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमत बढ़ाने के कारण ग़ैर-पेट्रोलियम निर्यातक

तीसरी दुनिया के देशों की कमर टूट गई। वे विदेशी कर्ज़ के ज़ाल में और ज्यादा जकड़ गए। अब वे नये कर्ज़ लेकर पुराने कर्ज़ चुकाने की विवशतापूर्ण स्थिति में आ गए हैं। बरसों तक आयातित तेल पर आधारित उद्योगों और आधारभूत सेवाओं के प्रसार ने उन्हें ऊर्जा असुरक्षा की स्थिति में डाल दिया। इस स्थिति में अमरीका में 'वाशिंगटन आम राय' के नाम से विदेशी पूंजी, मुक्त बाज़ार, निज़ीकरण तथा सरकारी आर्थिक भूमिका में भारी कटौती आदि नीतियों का समावेश करने वाली एक नीतिगत पहल शुरू हुई। इसे ढांचागत समायोजन कार्यक्रम के नाम से जाना गया और नीति के रूप में भी प्रचारित किया गया। इसके तहत तीसरी दुनिया में बाज़ार और विदेशी पूंजी हितैषी नीतियों की शुरुआत की गई। इनका मुख्य मक़सद आर्थिक बढ़त को बल देना बताया गया। इसके तीन मुख्य अंग हैं : उदारीकरण, निज़ीकरण तथा भूमंडलीकरण। इन तीनों में बाज़ार की निर्देशक की भूमिका थी। ऐसी स्थिति में मौद्रिक नीति की भूमिका भी अहम होनी स्वाभाविक थी। वैश्विक आर्थिक संकट के बाद से इसकी भूमिका और भी अधिक प्रभावशाली हो गई। क्योंकि इस संकट ने विश्व बैंक के कुछ पंडितों के डि-कपलिंग के सिद्धांत को ख़ारिज कर दिया और थॉमस फीडमैन के इस सिद्धांत को पुष्ट कर दिया कि 'दुनिया समतल है।' इसलिए यह एक साथ डूबेगी भी और उतराएगी भी। यह देखने को भी खूब मिला क्योंकि जब अमरीकी प्रशासन और कुछ यूरोपीय सरकारों द्वारा बेलआउट बांटे गए तो भारत जैसे देश भी पूरी तरह से इसका अनुसरण करते दिखे। इससे तात्कालिक समस्या तो हल हो गई लेकिन बाद में कुछ परिस्थितिजन्य समस्याएं आईं जो भारतीय रिज़र्व बैंक के लिए चुनौतियां बनी हुई हैं।

भारतीय रिज़र्व बैंक के गवर्नर ने इस विषय में चिंता व्यक्त की है। इस्ताम्बूल बैठक में गवर्नर डी. सुब्बाराव ने जिन पांच चिंताओं पर प्रकाश डाला था उसमें मौद्रिक पक्ष ही केंद्र में था। उनके अनुसार पांच चिंताओं के क्षेत्र हैं– पहली : खाद्य क़ीमतजन्य बढ़ती मुद्रास्फीति, लेकिन अभी भी दुर्बल वृद्धि के संदर्भ में समर्थनकारी मौद्रिक नीति से निकास का समय निर्धारण; दूसरी : पूंजी प्रवाह में दूसरे उछाल की संभावना, विशेष रूप से यदि हम मौद्रिक समर्थनों को औरों के साथ वापस नहीं लेते हैं; तीसरी : मौद्रिक संचरण तंत्र, क्योंकि यह संकट अवधि से विकसित हो रहा है; चौथी : राजकोषीय समेकन की ओर लौटना और राजकोषीय समायोजन की गुणवत्ता और अंत में पांचवी : वित्तीय समावेशन और वृद्धि के संबंध में स्थिरता के लिए किए गए प्रयासों के निहितार्थ।

भारतीय अर्थव्यवस्था में अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं से कुछ भिन्न लक्षण हैं जो उसे अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं (ईएमई) से अलग करते हैं। इसे भारत के संदर्भ में अन्य उभरती हुई अर्थव्यवस्थाओं से अलग हटकर देखना होगा। ये विषेशताएं हैं :

पहली यह कि हमारी वृद्धि घरेलू मांग-उपभोग और निवेश प्रेरित है। भारत में उपभोग और बचत भलीभांति संतुलित है। भारत में सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) में निज़ी अंतिम उपभोग व्यय का हिस्सा लगभग 55 प्रतिशत है। हमारी बचत दर 37.7 प्रतिशत और निवेश दर 39.1 प्रतिशत है।

हमारे जुड़वां घाटे हैं : राजकोषीय और चालू ख़ाता घाटा। हम संकट के पूर्व राजकोषीय समेकन के पथ पर थे, लेकिन उससे हट गए क्योंकि संकट के कारण प्रतिचक्रीय व्यय करना आवश्यक हो गया। प्रमुख ईएमई के विपरीत, जिनके चालू खाते अधिशेष में हैं, हमारा चालू ख़ाता घाटे में है। यह घाटा सकल घरेलू उत्पाद का 4 प्रतिशत है जो काफ़ी ऊंचा है, जबकि हमारे पड़ोसी चीन का चालू ख़ाता आधिक्य की स्थिति में है। अगर चालू ख़ाता घाटा बना रहा तो इसकी आपूर्ति विदेशी पूंजी के आयात से करनी होगी जिससे रुपये का अतिमूल्यन हो जाएगा। यह निर्यातों पर विपरीत प्रभाव डालेगा और मुद्रास्फीति को भी बढ़ाएगा।

तीसरा पक्ष सरकारी क़र्ज का है। तेरहवें वित्त आयोग की रिपोर्ट के मुताबिक़ वर्तमान में भारत में केंद्र व राज्यों का कुल क़र्ज सकल घरेलू उत्पाद का 82 प्रतिशत हो गया है। इस स्थिति को भी साधारण स्थिति नहीं मानना चाहिए। इस तरह से देखा जाए तो भारत वर्तमान में उच्च राजकोषीय घाटे, क़र्ज की उच्च राशि और चालू ख़ाते में घाटे की प्रतिकूल स्थिति से गुज़र रहा है। एक ओर घरेलू उपभोग और बचत के बीच सही संतुलन और दूसरी ओर प्रमुख क्षेत्रों में आधारभूत संरचना संबंधी बाधाओं को देखते हुए भारत एक आपूर्ति बाध्यता वाली अर्थव्यवस्था है। संकट के ठीक पहले आपूर्ति से संबंधित इस प्रकार की चिंताओं के कारण यह विचार प्रकट किया गया कि अर्थव्यवस्था में ओवरहीटिंग हो सकती है। सामान्यत: दुर्बल मांग के कारण कुछ बाध्य रूप से प्रेरित चक्रीय मंदी की स्थिति बनी है। ऐसी स्थिति में जैसे-जैसे वैश्विक अर्थव्यवस्था में बहाली होगी, आपूर्ति बाध्यता के पुन: बंधनकारी होने की संभावना बढ़ेगी।

अब सवाल यह उठता है कि भारत सरकार और भारतीय रिज़र्व बैंक ने देश की अर्थव्यवस्था को मंदी से उबारने के जो क़दम उठाए थे उन पर अब किस तरह के क़दम उठाए जाएं। भारत में इसके लिए दोनों पक्ष मौजूद हैं। खाद्यान्न की महंगाई और विकास में बढ़ोतरी के

मौद्रिक मानक (24 अप्रैल, 2010 से प्रभावित)

बैंक दर

6.0 प्रतिशत

रेपो दर

लिक्विडिटी एडजस्टमेंट फैसिलिटी (एलएएफ) के तहत रेपो दर में 25 आधार बिंदु की वृद्धि कर इसे 5.0 से 5.25 किया गया है।

रिवर्स रेपो दर

लिक्विडिटी एडजस्टमेंट फैसिलिटी (एलएएफ) के तहत रिवर्स रेपो दर में 25 आधार बिंदु की वृद्धि कर इसे 3.5 से 3.75 किया गया है।

नकद आरक्षित अनुपात (सीआरआर)

नकद आरक्षित अनुपात को निवल मांग और समय देयता (नेट डिमांड एंड टाइम लाएबिलिटीज अथवा एनडीटीएल) के 6.0 प्रतिशत किया गया है। इसमें 25 आधार बिंदु की वृद्धि की गई है, जो पहले 5.75 था। इसके फलस्वरूप लगभग 12,000 करोड़ रुपये के तरलता आधिक्य को सोख लिया जाएगा।

संकेत से अर्थशास्त्रियों व नीति बनाने वाले समुदाय की तरफ से मौद्रिक सख़्ती की मांग बढ़ रही है। लेकिन संयम बरतने की उतनी ही मज़बूत मांग भी दिख रही है। रिज़र्व बैंक ने अपने बयानों के जरिये खाद्यान्न की महंगाई के आंकड़ों का प्रत्युत्तर न देने के फ़ैसले से संकेत दिया है कि खाद्यान्न की बढ़ती क़ीमतों को वह आपूर्ति के संकट के तौर पर देखता है। मांग पर नियंत्रण के जरिये काम करने वाले मौद्रिक क़दम शायद ही इसमें मदद कर पाएं। इस स्थिति में केंद्रीय बैंक मध्य मार्ग पर चलने की कोशिश में है। लीमन ब्रदर्स के धराशायी होने और इस तरह की कुछ और घटनाओं के बाद भारतीय रिज़र्व बैंक और विभिन्न केंद्रीय बैंकों ने नक़दी बढ़ाकर समस्या को कम करने की कोशिश की थी। सितंबर 2008 से लेकर जनवरी 2009 के बीच आरबीआई ने सीआरआर में कटौती व अन्य तरीक़े से 6 लाख करोड़ रुपये व्यवस्था में प्रवाहित किए। इसने रेपो व रिवर्स रेपो दरों में क्रमशः चार और आधे फ़ीसदी की कटौती की ताकि बैंक कम दर पर क़र्ज दे सकें। इसने बैंकों से बांड भी ख़रीदे। साल 2009-10 की पहली छमाही में इसने 57 हज़ार करोड़ रुपये के बांड ख़रीदे और इस तरह से व्यवस्था में नक़दी प्रवाहित हुई। भारतीय रिज़र्व बैंक ने पहला क़दम वर्ष 2009 की आख़िरी तिमाही में नीतिगत बदलाव के रूप में उठाया। अक्तूबर में इसने सांविधिक तरलता रिज़र्व अनुपात में इज़ाफ़ा किया और कई अन्य क़दम उठाए।

अभी भी एक प्रश्न अहम बना हुआ है कि क्या भारतीय रिज़र्व बैंक को ब्याज़ दरें बढ़ानी चाहिए, यदि हां तो कितनी? बड़े अंतरराष्ट्रीय बैंकों द्वारा उठाए गए क़दमों का पीछा करें तो फिर ब्याज़ दरों में कम-से-कम 1.5 प्रतिशत का इज़ाफ़ा होना चाहिए। लेकिन गोल्डमैन सैक्स का अनुमान है कि मौद्रिक दरें 3 प्रतिशत तक बढ़ाई जा सकती हैं। लेकिन यह तो अनुमानों की बात है अभी सच सामने आना है। गोल्डमैन सैक्स यह कहना चाहते हैं कि केंद्रीय बैंक नक़दी को उस स्तर तक कम करेगा जितने पर बैंकों को भारतीय रिज़र्व बैंक से रेपो दरों के हिसाब से उधार लेने के लिए बाध्य होना पड़ेगा। संभावना यह है कि कम-से-कम अक्तूबर तक मुद्रास्फीति की दरें ऊपर बनी रहेंगी और इनके ऊपर-नीचे रहने में महज़ आपूर्ति की एक वजह नहीं रहेगी। भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा बाज़ार को यह संकेत भी देते रहना होगा कि वह महंगाई को लेकर सख़्त है लेकिन साथ ही उसे पहली छमाही में सरकार के 2,87,000 करोड़ रुपये के ऋण का प्रबंधन भी करना है। कुल मिलाकर स्थितियां उतनी सरल नहीं हैं, जितनी कि अक़सर सरकार की तरफ से आने वाले बयानों में लगती हैं। इसके साथ ही कुछ ख़तरे और चुनौतियां और भी हैं।

पहला खतरा बाह्य वाणिज्यिक उधारी का है। भारतीय रिज़र्व बैंक अपने भंडार में बक़ाया बाह्य वाणिज्यिक उधारी (ईसीबी) की हिस्सेदारी को लेकर चिंतित है। भारतीय रिज़र्व बैंक के मुताबिक़ भारतीय कॉरपोरेट घरानों की बाह्य वाणिज्यिक उधारी पर निर्भरता लगातार बढ़ रही है। केंद्रीय बैंक की चिंता तब और अधिक हो जाती है जब ब्याज दरों में कमी के बावजूद भारतीय कंपनियां वैश्विक बाज़ारों में कर्ज़ की ख़रीदारी के लिए ज़ोरदार ढंग से निकल पड़ें। इस स्थिति पर नियंत्रण पाने के लिए रिज़र्व बैंक ने उधार लेने के लिए अधिकतम सीमा तय करने का निर्णय लिया है। बाह्य वाणिज्यिक उधारी के साथ दो मामले अनिवार्य रूप से जुड़े हैं। पहला यह है कि इससे देश का बाह्य ऋण तेज़ी से बढ़ता है और दूसरा यह कि इस तरह के ऋणों के साथ मुद्रा जोख़िम भी शामिल होता है। बाह्य ऋणों को पुनर्भुगतान के लिए विदेशी मुद्रा भंडार बढ़ाना होता है। इन स्थितियों से निपटने के लिए भी भारतीय रिज़र्व बैंक को कड़े क़दम उठाने होंगे लेकिन सोच-समझकर।

रिज़र्व बैंक के सामने समस्या यह है कि ऐसे वक़्त में जबकि अर्थव्यवस्था तेज़ी से विकास कर रही है और वैश्विक स्तर पर लगातार अधिक एकीकृत होती जा रही है, ऐसे में वित्त पोषण के लिए हमें लगातार काफ़ी अधिक धन की ज़रूरत होगी। हालांकि भारत में दीर्घावधि वित्त पोषण के लिए आज प्रमुख स्रोत बैंक, घरेलू पूंजी बाज़ार और सिडबी, एलआईसी, जीआईसी जैसे वित्तीय संस्थान हैं, लेकिन सार्वभौमिक बैंकिंग की अवधारणा मज़बूत होने के साथ ही इन साधनों का महत्व घटने लगा है। आज बैंकों ने इस नयी भूमिका को अपना लिया है लेकिन परिसंपत्ति उत्तरदायित्व की दशाओं के कारण दीर्घावधि ऋण देने के लिए उनकी भी सीमाएं हैं, क्योंकि उन्हें वे जमाएं तीन साल तक के लिए मिलती हैं जबकि ऋण 10 साल से अधिक अवधि के लिए मुहैया कराना पड़ता है। घरेलू बाज़ार से कर्ज़ के मुक़ाबले ईसीबी बाज़ार में जाने के कुछ ख़ास फायदे हैं। इस समय एकवर्षीय लंदन इंटरबैंक ऑफर रेट(लाइबर) एक प्रतिशत से कुछ ही अधिक है। ऐसे में किसी देश की ज़ोख़िम रेटिंग के साथ ही एक 'एएए' रेटिंग वाली कंपनी क़रीब 5 से 7 प्रतिशत की दर से कर्ज़ हासिल कर सकती है। मुद्रा ज़ोखिमों पर विचार करने के बावजूद यह कर्ज़ घरेलू कर्ज़ के मुक़ाबले सस्ता है। इस स्थिति में इस पर नियंत्रण घरेलू विकास को प्रभावित कर सकता है।

दूसरी चुनौती नक़दी के संकट की है। वर्तमान में इस बात पर बहस चल रही है कि बढ़ती महंगाई को देखते हुए भारतीय रिज़र्व बैंक को ब्याज दरों में तत्काल किस प्रकार का परिवर्तन करना चाहिए, करना भी चाहिए या नहीं। सूचनाएं बताती हैं कि बैंकों के लिए अल्पकालिक बेंचमार्क दरें पिछले कुछ हफ़्तों में प्रभावी रूप से 1.5 प्रतिशत बढ़ गई हैं। मई के आखिर से बैंकिंग प्रणाली में कम होती जा रही नक़दी का मतलब यह है कि बैंक रिवर्स रेपो पर अपनी अतिरिक्त नक़दी भारतीय रिज़र्व बैंक के पास जमा नहीं कर रहे हैं जोकि उस पर 3.75 प्रतिशत ब्याज देता है बल्कि इसके बजाय वे रेपो दर (5.25 प्रतिशत) पर उससे बड़ी रक़म उधार ले रहे हैं। इन दोनों नीतिगत दरों- रिवर्स रेपो और रेपो दरों में कौन-सी प्रभावी रूप से अल्पकालिक मानक है, यह इस बात पर निर्भर करता है कि बैंक के पास औसत नक़दी का आधिक्य है या कमी। बैंकिंग व्यवस्था के लिए आधिक्य से कमी की तरफ जाने का मतलब यह हुआ कि रेपो रेट प्रभावी नीतिगत दर के तौर पर रिवर्स रेपो रेट की जगह ले रही है। ये बहुत अच्छे संकेत नहीं हैं।

बहरहाल, भारतीय रिज़र्व बैंक के सामने कई चुनौतियां हैं। उसकी चुनौतियां केवल मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने तक ही नहीं हैं बल्कि ऋण प्रवाह में आ रही तेज़ी और नक़दी का बढ़ता संकट भी एक बड़ी चुनौती है। ❑

(लेखक आर्थिक मामलों के जानकार हैं।

ई-मेल : raheessingh@gmail.com)

मुद्रास्फीति : कुछ पहलू

● गिरीश मिश्र

मुद्रास्फीति से हमारा तात्पर्य वस्तुओं एवं सेवाओं की क़ीमतों के स्तर में वृद्धि और लोगों की क्रयशक्ति में गिरावट के परस्पर संबंध से है। यदि क़ीमतों और क्रयशक्ति के स्तर में वृद्धि की दर समान हो तो मुद्रास्फीति चिंता का कारण नहीं बनेगी। अगर ऐसा न हो तो लोग चिंतित होंगे क्योंकि वे अपनी आय से वस्तुओं और सेवाओं की जितनी मात्रा पहले खरीदते थे उससे कम खरीद पाएंगे। यदि क़ीमतों में आय के मुक़ाबले तेज़ वृद्धि हो और आगे भी उसके ज़ारी रहने का अंदेशा बना रहे तो भय और चिंता का वातावरण बनेगा और इसका समाज पर व्यापक असर पड़ सकता है। ऐसी स्थिति को आमतौर से अतितीव्र मुद्रास्फीति कहते हैं। आमतौर से क़ीमतों में वृद्धि का अर्थ होता है कि पूर्ति की अपेक्षा मांग की मात्रा में अधिक बढ़ोतरी हो रही है और इसको देखते हुए उत्पादक वस्तुओं और सेवाओं की पैदावार बढ़ाते हैं जिससे देर-सबेर मांग और पूर्ति के बीच संतुलन क़ायम हो जाता है और मुद्रास्फीति या तेज़ क़ीमत वृद्धि की स्थिति पर विराम लग जाता है। यदि ऐसा नहीं होता तो एक विचित्र स्थिति पैदा हो जाएगी जिसे अर्थशास्त्र की भाषा में 'स्टैगफ्लेशन' कहते हैं। वहां क़ीमतों का बढ़ना तो जारी रहता है मगर वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन नहीं बढ़ता। अगर वस्तुओं और सेवाओं की पूर्ति के मुक़ाबले उनकी मांग में अधिक वृद्धि के कारण क़ीमतें बढ़ती हैं तो इसे हम मांगजनित मुद्रास्फीति कहते हैं। इसके विपरीत अगर पूर्ति के कारण क़ीमतों में तेज़ी से वृद्धि आती है तो इसे हम लागत-आधारित मुद्रास्फीति कहेंगे। यह स्थिति तब आती है जब वस्तुओं की उत्पादन लागत में बढ़ोतरी से क़ीमत में काफ़ी वृद्धि हो।

मुद्रास्फीति के अच्छे-बुरे दोनों प्रभाव होते हैं। जैसाकि हम ऊपर कह चुके हैं, मुद्रास्फीति से उत्पादकों को वस्तुओं और सेवाओं का उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रोत्साहन मिलता है क्योंकि मांग का पूर्ति से अधिक होने के कारण मुनाफ़े में वृद्धि होती है। उत्पादक उत्पादन बढ़ाने में तब कोई दिक्क़त महसूस नहीं करते जब उत्पादन के कारकों को समुचित मात्रा में जुटाने में कठिनाई न हो और इस प्रक्रिया में अगर बहुत समय न लगे तो बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं की आपूर्ति बढ़ाकर मुद्रास्फीति को नियंत्रित किया जा सकता है। जहां तक मुद्रास्फीति उत्पादन बढ़ाने के लिए प्रेरित करती है वहां तक रोज़गार के अवसर और श्रमिकों तथा उत्पादन के कारकों की आपूर्ति करने वालों की आय में इज़ाफ़ा होता है। तत्काल जो भी कठिनाइयां और परेशानियां हैं दीर्घकाल में अर्थव्यवस्था और जनता का भला होता है।

यदि ऐसी स्थिति पैदा होती है कि आपूर्ति नहीं बढ़ती तो क़ीमतें लगातार तेज़ी से बढ़ेंगी और अधिकांश जनसंख्या की स्थिति ख़राब होगी। जीवनस्तर गिरेगा और भुख़मरी तथा तंगहाली की स्थिति आ जाएगी। इससे सामाजिक असंतोष बढ़ेगा जो अपराधों में प्रतिबिंबित होगा। लूटपाट और चोरी-डकैती की घटनाएं काफ़ी अधिक होंगी। कानून और व्यवस्था की हालत बिगड़ेगी और जनजीवन अनिश्चितता से भर जाएगा। इतिहास बतलाता है कि रोमन साम्राज्य से लेकर अब तक अति तीव्र मुद्रास्फीति राजनीतिक संकटों और सत्ता परिवर्तनों का कारण बनी है। अठाहरवीं सदी में फ्रांस की राज्य क्रांति क़ीमतों में तेज़ वृद्धि और शासक वर्ग की संवेदनहीनता का परिणाम थी। पिछली सदी में ज़र्मनी में हिटलर का उदय अति तीव्र मुद्रास्फीति का फल था। प्रथम महायुद्ध के बाद विजयी महाशक्तियों ने ज़र्मनी पर हरज़ाने के रूप में भारी बोझ लादा और इससे ही कालक्रम में क़ीमतों में तेज़ वृद्धि हुई, ज़र्मन मुद्रा की क्रयशक्ति लगातार तेज़ी से घटी। भविष्य के प्रति अनिश्चितता बढ़ी। लोग हताशा का शिकार हुए। बचत और निवेश के प्रति लोगों में कोई उत्साह नहीं रह गया। हमारे अपने देश में भी जब भी मुद्रास्फीति की दर 20 प्रतिशत या उससे ऊपर ही ओर गई है, जन असंतोष बढ़ा है।

मुद्रास्फीति के कारण सब लोगों को एक समान कष्ट नहीं झेलना पड़ता। अपरिवर्तनशील आय वालों, बेरोज़गार और अर्धबेरोज़गार लोगों तथा उन सेवानिवृत्त कर्मचारियों को अधिक कष्ट उठाना पड़ता है जिनको महंगाई भत्ता नहीं मिलता। जिन लोगों ने अपने पास या बैंकों में अपनी बचत ज़मा कर रखी है उनको हानि उठानी पड़ती है। यदि मुद्रास्फीति की दर बैंक से प्राप्त होने वाली ब्याज की दर से अधिक है तो बचत की वास्तविक राशि घटेगी। मान लें कि यदि पहले एक किलो अरहर की दाल 25 रुपये में मिलती थी और वही 75 रुपये में मिल रही है तो बचत की वास्तविक राशि एक-तिहाई हो जाएगी। जिन वस्तुओं और सेवाओं की

क़ीमतें बढ़ती हैं उनके उत्पादकों और विक्रेताओं की आय बढ़ेगी। आमतौर से ज़मीन-ज़ायदाद और सोने-चांदी की क़ीमतों में भारी इज़ाफ़ा होता है। क्योंकि लोग अपनी बचत उनमें लगाने की कोशिश करते हैं जिससे उनकी मांग बढ़ जाती है। कहना न होगा कि राष्ट्रीय आय का पुनर्वितरण होता है। कुछ लोग अपेक्षाकृत अधिक धनवान हो जाते हैं तो अन्य ग़रीब हो जाते हैं।

मुद्रास्फीति के दौर के लंबा खिंचने की आशंका होने पर कालाबाज़ारी और ज़खीरेबाज़ी की प्रवृत्ति पनपती है। इस आशंका से कि आने वाले समय में क़ीमतें बढ़ेंगी, कई लोग तत्काल ज़रूरत हो या न हो खरीदारी करेंगे। जबकि वे लोग जिनके पास वस्तुएं हैं उन्हें दबाकर रखने की कोशिश करेंगे। इससे क़ीमतों की वृद्धि को प्रोत्साहन मिलेगा। ऐसा ही नज़ारा 1943 में बंगाल में दिखा था जिससे अक़ाल पड़ा और भारी संख्या में लोग मरे। तत्कालीन ब्रिटिश सरकार ने ज़खीरेबाज़ी और कालाबाज़ारी को रोकने के लिए कुछ नहीं किया। बाहर से आने वाले अन्न से भरे जहाजों को मुनाफ़ाखोरों ने अन्यत्र भेज दिया।

इसके विपरीत 1960 के दशक के उत्तरार्ध में सरकार ने भारत के कई राज्यों में सख़्त क़दम उठाए जिससे भारी अक़ाल से बचा जा सका और ग़रीबों की ज़ान बची। राहत कार्य चलाए गए। अत्यंत ग़रीब लोगों को मुफ़्त अनाज़ उपलब्ध कराने के लिए अनाज का आयात किया गया। कहना न होगा कि यह सब इस कारण हुआ कि केंद्र और राज्य की सरकारें संवेदनशील थीं तथा जनता और मीडिया जागरूक हो गई थी। प्रो. अमर्त्य सेन के अनुसार इसी अवधि के आसपास चीन में अक़ाल पड़ा जिसमें भारी संख्या में लोग मरे लेकिन वहां जनतंत्र न होने से सरकार पर जनता और मीडिया का कोई दवाब न बन सका और न ही विश्व जनमत जानकारी के अभाव में कोई सक्रिय और कारग़र भूमिका अदा कर सका।

मुद्रास्फीति के स्वरूप में कालक्रम में भारी परिवर्तन हुआ है। काग़जी मुद्रा के चलन के पूर्व मुद्रास्फीति की मामूली दर भी भारी संकट खड़ा करने में सक्षम थी। वर्ष 1500 से लेकर 1799 तक 0.5 प्रतिशत और 1800-1913 के दौरान 0.71 प्रतिशत की वार्षिक मुद्रास्फीति से अनेक भयंकर संकट पैदा हुए। इसके विपरीत वर्ष 1914-2006 के दौरान मुद्रास्फीति की वार्षिक दर 5 प्रतिशत या अधिक होने को ही चिंताजनक समझा गया। यह भी याद रहना चाहिए कि मुद्रास्फीति की दर कम होने के बावजूद अगर आम धारणा यह पनपे की आने वाले दिनों और महीनों के दौरान क़ीमतें घटने के बदले लगातार बढ़ती जाएंगी तो मुद्रास्फीति को बल मिलेगा और जनमानस आतंकित रहेगा। लोग आवश्यक वस्तुएं खरीदकर ज़मा करेंगे। निवेश न कर बचत करेंगे तथा ज़ायदाद और सोने में पैसे लगाएंगे।

वर्तमान मुद्रास्फीति के युग की शुरुआत के पहले क़ीमतों में वृद्धि का एक बड़ा कारण तत्कालीन धातु मुद्रा के मूल्य में कमी लाना था। ऐसा आमतौर से तब कोई राजा या सुल्तान करता था जब उसका किसी प्रतिद्वंदी से युद्ध चल रहा होता था। लड़ाई के लिए उसे संसाधनों की जरूरत होती थी जिनको जुटाने के लिए यह आसान और झंझटरहित तरीक़ा माना जाता था। धातु के सिक्क़ों में सोने या चांदी के अनुपात को घटाकर समान वज़न की कोई घटिया धातु मिला दी जाती थी।

इस तरीक़े का इस्तेमाल राजे-महाराजों और बादशाहों ने राज्य के ऊपर चढ़े कर्ज़ को उतारने के लिए बार-बार किया जिसके विवरणों से इतिहास भरा पड़ा है। ईसा पूर्व चौथी शताब्दी का एक वृतांत काफ़ी मज़ेदार है। यूनान के सिराकस के डायोनिसियस ने फ़रमान जारी कर अपनी प्रजा को कहा कि वह अपने सारे सिक्क़े सरकार के पास ज़मा करा दे। सिक्क़ों को एकत्र करने के बाद उसने हर सिक्क़े पर जो मूल्य अंकित था उसका दुगुना मूल्य लिखवाकर अपने ऋण का भुगतान किया। जिनको अपने सिक्क़े वापस मिले उनको वास्तविक रूप में 50 प्रतिशत कम मूल्य मिले। कहना न होगा कि शासक की इस क़रतूत से क़ीमतों में एक सौ प्रतिशत का इज़ाफ़ा हुआ होगा। वस्तुओं का भंडार तो बढ़ा नहीं मगर मुद्राराशि दुगुनी हो गई। इसी से क़्लासिकी मौद्रिक सिद्धांत निकला जिसके अनुसार उत्पादन की मात्रा समेत अन्य सब स्थितियों के अपरिवर्तित रहने की स्थिति में अगर मुद्रा भंडार दुगुना हो जाता है तो मुद्रास्फीति सौ प्रतिशत होगी यानी क़ीमतों का स्तर दुगुना हो जाएगा। अगर हमारी मान्यता कि अन्य सब स्थितियां अपरिवर्तित रहती हैं लागू नहीं होती तो क़ीमतों में कहीं अधिक वृद्धि हो सकती है।

डायोनिसियस के ज़माने से ही मुद्रास्फीति राज्य के हाथ में ऐसा तरीक़ा रही है जिससे घरेलू और अंतरराष्ट्रीय ऋण को कम करने या उतारने की कोशिश की गई है। मुद्रा के धातु अंश को मिलावट द्वारा कम कर कुल मुद्रा भंडार को बढ़ाने की कोशिश की जाती रही है। इससे उन लोगों को काफ़ी हानि हुई जिन्होंने बड़ी मेहतन-मशक्क़त से धन इकट्ठा कर रखा था।

इंग्लैंड का राजा हेनरी अष्टम इस काम में बड़ा माहिर था। उसे अपने पिता से काफ़ी संपदा मिली थी फिर भी उसने चर्च की परिसंपत्तियां हड़प ली। इसके बावजूद जब उसे पैसों के लाले पड़े तो उसने धातु मुद्रा के मूल्य में कमी लाने के लिए ख़ोट मिलाना शुरू किया। यह धंधा सन् 1542 से शुरू हुआ और सन् 1547 तक यानी उसका शासनकाल समाप्त होने तक चलता रहा। कुल मिलाकर पौंड में चांदी का भाग 83 प्रतिशत घट गया।

मुद्रास्फीति का यह तरीक़ा दुनिया के लगभग सब देशों में अपनाया गया। चौदहवीं शताब्दी से लेकर अब तक के आंकड़े एल्लेन और डंगर की पुस्तक *यूरोपियन कमोडिटी प्राइसेज़, 1260-1914* में मिलते हैं। इसका प्रकाशन वर्ष 2004 में ऑक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस ने किया।

जब से काग़जी मुद्रा का चलन शुरू हुआ तब से मुद्रास्फीति का रूप बदला मगर उसके सारतत्व में कोई विशेष परिवर्तन नहीं आया। धातु मुद्रा की तरह काग़जी मुद्रा का अपना कोई अंतर्निहित मूल्य नहीं होता। उसकी स्वीकार्यता इसलिए होती है कि उसके पीछे राज्य की ताकत और समर्थन होता है। राज्य स्पष्ट कर देता है कि कोई अन्य काग़जी मुद्रा स्वीकार्य नहीं होगी।

राज्य कई बार ज़रूरत पड़ने पर काग़जी मुद्रा का घरेलू बाज़ार में भंडार बढ़ा देता है। जब उसे मंदी से निबटने के लिए मांग की मात्रा बढ़ाने की ज़रूरत पड़ती है वह रोज़गार के अवसर बढ़ाने के लिए तरह-तरह के कार्य शुरू करता है जिससे बेरोज़गारों को रोज़गार और आय मिले जिससे वे बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं की खरीदारी करें। बाज़ार में वस्तुओं और सेवाओं की मांग और बिक्री बढ़ने से

उत्पादकों को उत्पादन बढ़ाने तथा कच्चे माल, साज़ोसामान और श्रमिकों की मांग में वृद्धि करने के लिए प्रोत्साहन मिलेगा। उत्पादन बढ़ने से क़ीमतों की वृद्धि नहीं होगी। इस प्रकार मुद्रास्फीति का कोई दुष्प्रभाव नहीं होगा।

कई बार विदेशी विनिमय के संकट से निबटने के लिए अवमूल्यन का सहारा लिया जाता है जिससे घरेलू मुद्रा विदेशी मुद्रा की तुलना में घट जाता है। इससे आयात में कमी और निर्यात में वृद्धि होने की संभावना पैदा होती है। घरेलू उत्पादन बढ़ता है।

आमतौर से राज्य केंद्रीय बैंक से अपने बांड देकर ऋण लेता है और इस प्रकार अर्थव्यवस्था में मुद्रा प्रसार होता है। अगर केंद्रीय बैंक द्वारा छापे गए अतिरिक्त काग़जी मुद्रा भंडार का उपयोग उत्पादन की सुविधाओं तथा मांग को बढ़ाने के लिए न कर केवल उपभोग या निरर्थक कार्यों के लिए किया जाता है तो मुद्रास्फीति का ख़तरा पैदा होगा। जैसाकि हम कह चुके हैं इसमें लोगों की भविष्य के प्रति दृष्टि की भी अहम भूमिका होती है।

हमारे अपने देश में विभाजन और युद्ध एवं सूखे के कारण ज़रूरी वस्तुओं की क़िल्लत होने से क़ीमतें कई बार बढ़ी हैं मगर एक काल अंतराल के बाद सब कुछ सामान्य हो गया। सरकार ने बाहर से ज़रूरी सामान मंगाए। देश में उपलब्ध भंडार को नियंत्रित कर वितरण की व्यवस्था की जिससे जख़ीरेबाज़ी, मुनाफ़ाखोरी और कालाबाज़ारी न हो सके। आवश्यक वस्तुएं लोगों को उचित क़ीमत पर उपलब्ध हो जिससे जन असंतोष न बढ़े। ऐसा सन् 1947 में आज़ादी मिलने के बाद हुआ। द्वितीय विश्व युद्ध और विभाजन क़ीमतों में वृद्धि के लिए विशेष रूप से जिम्मेदार थे। 1960 के दशक में भी मुद्रास्फीति की समस्या से सरकार को जूझना पड़ा। हमारे यहां कृषि अब भी बहुत कुछ मानसून पर निर्भर है। जब भी कम मात्रा में और समय पर वर्षा नहीं होती है तब खाद्यान्न उत्पादन घट जाता है। पिछले कुछ वर्षों से यह बात दिखी है। अनाज़, विशेषकर दालों और चीनी की क़ीमतें इसी कारण बढ़ी हैं। वर्ष 1997 में मुद्रास्फीति की दर 7 प्रतिशत हो गई थी जो वर्ष 1998 में बढ़कर 13 प्रतिशत हो गई। वर्ष 2009-10 में वह 11.4 प्रतिशत पर पहुंच गई। मुद्रास्फीति के बढ़ने के लक्षण वर्ष 2009-10 के उत्तरार्ध में स्पष्ट रूप से दिखने लगे थे। इसके पीछे मानसून ठीक न होने के कारण खाद्य पदार्थों का कुल भार 25.4 प्रतिशत है इससे मुद्रास्फीति के अग्रसर होने की आशंका व्यक्त की जाने लगी। कहना न होगा कि इससे जनता के बीच घबराहट बढ़ी। इधर पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमतों में वृद्धि से अन्य क़ीमतों का प्रभावित होना स्वाभाविक है। फिर भी उम्मीद की जा रही है कि मानसून के सामान्य रहने पर मुद्रास्फीति पर क़ाबू पाया जा सकेगा। ❑

(लेखक दिल्ली विश्वविद्यालय के किरोड़ीमल कॉलेज में अर्थशास्त्र के रीडर रह चुके हैं)

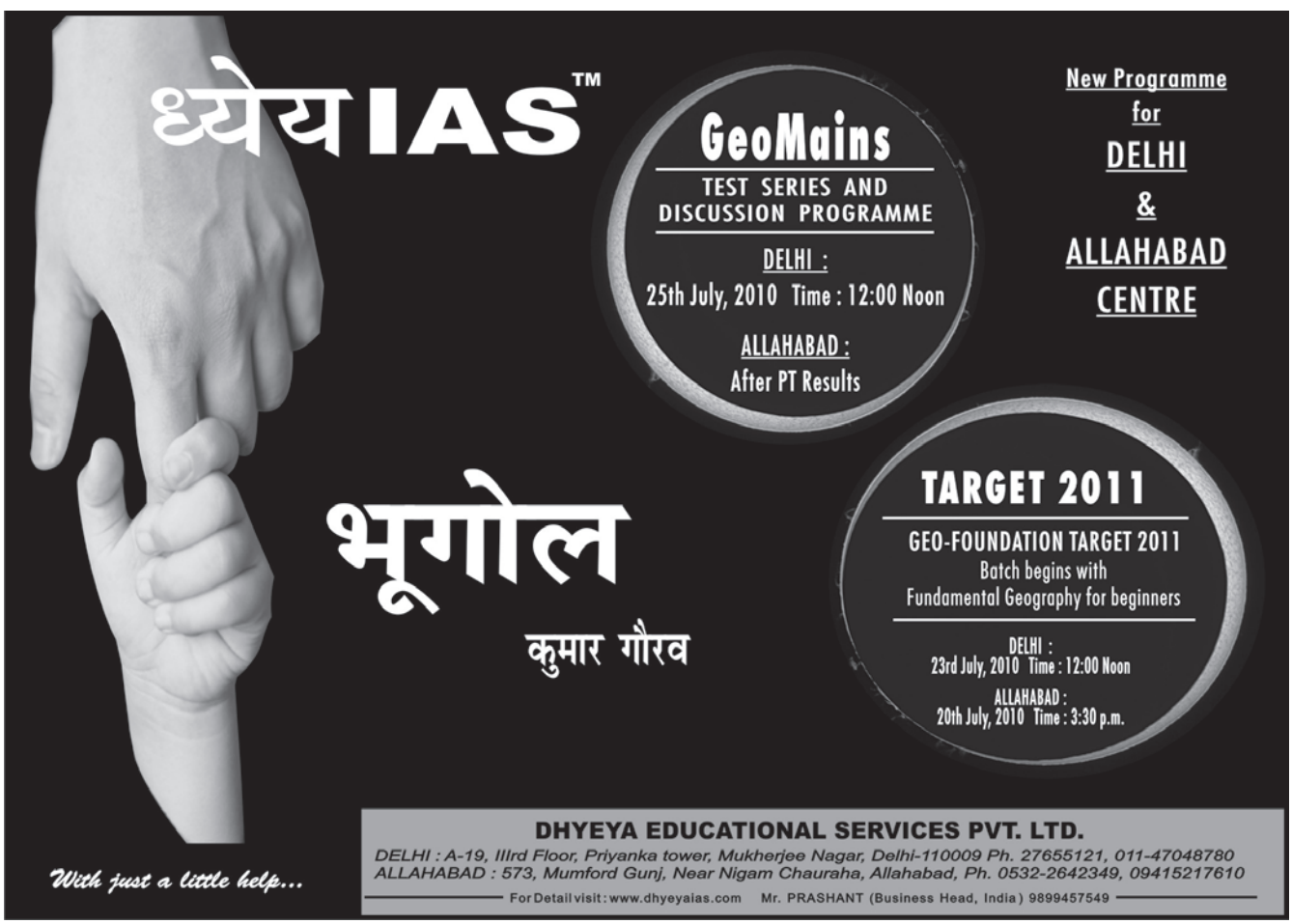

YH-8/10/3

कीमतें और मौद्रिक प्रबंधन

मुद्रास्फीति की दर में होने वाली घट-बढ़ अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति की स्थितियों में हुए परिवर्तनों को प्रतिबिंबित करती है। इसलिए, मुद्रास्फीति प्रबंधन की प्रक्रिया में विभिन्न मौद्रिक उपायों के जरिये मांग की स्थिति को नियंत्रित करने के साथ-साथ स्फीतिकारी संभावनाओं पर अंकुश लगाना शामिल है। आपूर्ति के मोर्चे पर, इसमें विभिन्न प्रशासनिक और राजकोषीय उपाय सम्मिलित रहेंगे। वित्त वर्ष 2008-09 का पूर्वार्ध थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) आधारित उच्च मुद्रास्फीति का रहा जो मुख्यत: वस्तुओं और ईंधन की वैश्विक क़ीमतों में हुई बढ़ोतरी के कारण थी। इसके बाद, सितंबर 2008 में शुरू हुई वैश्विक आर्थिक मंदी ने यह रुख पलट दिया और डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति जून से अगस्त 2009 के दौरान गिरकर ऋणात्मक परिधि में आ गई। इसका कारण वैश्विक वस्तु-मूल्यों में हुई गिरावट और आधार प्रभाव था। जहां तक खाद्य मुद्रास्फीति का संबंध है, वर्ष 2008-09 की पहली तिमाही में देखा गया उछाल वर्ष 2009-10 में भी जारी रहा और इसकी वजह प्रतिकूल दक्षिणी- पश्चिमी मानसून था, जो वर्ष 1972 के बाद का सबसे खराब मानसून रहा। हालांकि खाद्य वस्तुओं में दो अंकीय मुद्रास्फीति की वर्तमान स्थिति आपूर्ति पक्ष की अड़चनों की वजह से हुई कही जा सकती है, यह सुनिश्चित करना आवश्यक है कि मौद्रिक नीति संबंधी दृष्टिकोण का क़ीमतों पर दबाव न पड़े। इसलिए, भारतीय रिज़र्व बैंक ने दूसरी और तीसरी तिमाही की समीक्षाओं के माध्यम से क्रमश: सांवधिक नकदी अनुपात (एसएलआर) और आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) में वृद्धि करने की घोषणा करके अर्थतंत्र में मौजूद नकदी अतिरेक को समाप्त करने के लिए दरों में चरणबद्ध परिवर्तन किए हैं। खाद्य मूल्य मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने और इसे आम मुद्रास्फीति के रूप में फैलने से रोकने के लिए सरकार द्वारा समुचित राजकोषीय और प्रशासनिक उपाय भी किए जा रहे हैं।

कीमतें

थोक मूल्य सूचकांक (डब्ल्यूपीआई) के संदर्भ में वर्षानुवर्ष आधार पर मापित हेडलाइन मुद्रास्फीति में हुए मासिक परिवर्तनों में वित्त वर्ष 2008-09 के दौरान जबर्दस्त अस्थिरता देखी गई और यह अगस्त 2008 के 12.82 प्रतिशत से मार्च 2009 के 1.20 प्रतिशत के बीच घटती-बढती रही। यह अस्थिरता वित्त वर्ष 2009-10 में भी जारी रही। लेकिन पिछले दोनों वर्षों की अस्थिरता के कारणों में बुनियादी अंतर है। वर्ष 2008-09 के पूर्वार्ध में देखी गई अस्थिरता ईंधन और वस्तुओं की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में वृद्धि के कारण थी जिसमें डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति को 12.8 प्रतिशत की ऊंचाई तक पहुंचा दिया। वर्ष 2008-09 के उत्तरार्ध में डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति में हुई अनुवर्ती गिरावट ईंधन और वस्तुओं की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के गिरने के कारण हुई थी। वर्ष 2009-10 के पूर्वार्ध में ईंधन और वस्तुओं की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतें स्थिर तो हो गईं लेकिन वर्ष 2008-09 की तदनुरूप अवधि के मुक़ाबले अपेक्षाकृत कम स्तर पर। तथापि, डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति वर्ष 2009-10 के पूर्वार्ध में गिरती रही जो पिछले वर्ष इस अवधि में हासिल ऊंचे आधार के कारण थी और जुलाई से अगस्त 2009 तक यह ऋणात्मक परिधि में चल गई। सितंबर

तालिका-1
डब्ल्यूपीआई आधारित वार्षिक औसत मुद्रास्फीति दर (प्रतिशत)

वर्ष	प्राथमिक वस्तुएं	ईंधन, विद्युत प्रकाश और स्नेहक	विनिर्मित उत्पाद	सभी वस्तुएं
भारांश (प्रतिशत)	**22.02**	**14.23**	**63.75**	**100.00**
2001-01	2.8	28.5	3.3	7.2
2001-02	3.6	8.9	1.8	3.6
2002-03	3.3	5.5	2.6	3.4
2003-04	4.3	6.4	5.7	5.5
2004-05	3.7	10.1	6.3	6.5
2005-06	2.9	9.5	3.1	4.4
2006-07	7.9	5.6	4.4	5.4
2007-08	7.6	0.9	5.0	4.7
2008-09	10.1	7.5	8.1	8.4
2008-09 (अप्रैल-दिस.)	10.93	11.32	9.47	10.20
2009-10 (अप्रैल-दिस.)*	8.78	-6.35	1.77	1.63

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग

* : अंतिम

तालिका-2
2008-09 और 2009-10 के दौरान डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

	अप्रैल	मई	जून	जुलाई	अगस्त	सित.	अक्तू.	नव.	दिस.	जन.	फर.	मार्च
2008-09	8.0	8.9	11.8	12.4	12.8	12.3	11.1	8.5	6.2	4.9	3.5	1.2
2009-10	1.3	1.4	-1.0	-0.5	-0.2	-0.5	1.5	4.8	7.3			

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग

टिप्पणी : नवंबर और दिसंबर 2009 के लिए डब्ल्यूपीआई अंतिम है।

2009 से डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति में बहुत तेज़ी से वृद्धि दर्ज़ की गई जो मुख्यत: प्राथमिक और विनिर्मित दोनों प्रकार की खाद्य मदों तथा खाद्य-भिन्न कृषि मदों की क़ीमतों में बढ़ोतरी के कारण हुई। दक्षिण-पश्चिम मानसून के कम रहने के कारण बीते वर्ष कृषि उत्पादन में कमी की आशंकाएं मुद्रास्फीति बढ़ने की मुख्य वजह है। औसत खाद्य मुद्रास्फीति जो वित्त वर्ष 2008-09 के दौरान 7.56 प्रतिशत थी, बढ़कर अप्रैल से दिसंबर 2009 की अवधि में 13.54 प्रतिशत हो गई। दिसंबर 2009 में समग्र खाद्य मुद्रास्फीति 19.77 प्रतिशत थी। तथापि, यह दिसंबर 2009 में अपने शीर्ष पर पहुंच गई प्रतीत होती है और यहीं से इसके कम होने की उम्मीद है तथा खाद्य मुद्रास्फीति को क़ाबू में लाने के लिए सरकार द्वारा किए गए अनेक उपायों के संभावित प्रभाव के चलते समग्र डब्ल्यूपीआई के स्थिर हो जाने की भी उम्मीद है।

डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति में औसत वार्षिक प्रवृत्तियां

इस दशक में 5.5 प्रतिशत से अधिक की अपेक्षाकृत उच्च औसत वार्षिक मुद्रास्फीति के वर्ष 2000-01, 2004-05 और 2008-09 थे। ये तीनों ही वर्ष ईंधन की ऊंची क़ीमतों के वर्ष थे। लेकिन वर्ष 2004-05 में भी विनिर्मित उत्पादों में उच्च मुद्रास्फीति देखी गई जो इस क्षेत्र में सकल घरेलू उत्पाद की उच्च वृद्धि के कारण थी जिसके परिणामस्वरूप कच्चे माल, जैसे बुनियादी मिश्र धातुएं और धात्विक उत्पाद, अधात्विक खनिज उत्पाद एवं मशीनरी तथा मशीनी औज़ार की मांग और क़ीमतों में बढ़ोतरी हुई। वर्ष 2008-09 पूर्ववर्ती दो वर्षों से भिन्न था क्योंकि तीनों क्षेत्रों में उच्च मुद्रास्फीति देखी गई जो ईंधन एवं खाद्य मदों सहित अन्य वस्तुओं की अधिक अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के कारण थी और यह भारतीय अर्थव्यवस्था के विश्व के साथ जुड़ते संबंध को प्रतिबिंबित करता है। (तालिका-1)। वर्ष 2009-10 पूर्ववर्ती वर्षों में देखे गए रुख से बिलकुल मेल नहीं खाता जब समग्र औसत मुद्रास्फीति (अप्रैल से दिसंबर) 1.63 प्रतिशत के निम्न स्तर पर थी और प्राथमिक एवं ईंधन समूह में औसत मुद्रास्फीति क्रमश: 8.78 प्रतिशत तथा -6.35 प्रतिशत थी।

डब्लयूपीआई मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियां

ईंधन और वस्तुओं की बढ़ती अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों तथा उच्च घरेलू मांग के आधार पर ईंधन एवं विनिर्मित समूह की मुद्रास्फीति नवंबर 2007 से बढ़नी शुरू हो गई। वर्ष 2008-09 की शुरुआत 12.8 प्रतिशत के शीर्ष पर जा पहुंची तथा इसके बाद वस्तुओं की गिरती अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के कारण कम हो गई। वर्ष 2009-10 की शुरुआत अप्रैल 2009 में 1.3 प्रतिशत की कम हेडलाइन डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति से हुई, जून से अगस्त 2009 के दौरान यह ऋणात्मक परिधि में चली गई तथा दिसंबर 2009 में इसके 7.31 प्रतिशत होने की सूचना है (तालिका-2)। सितंबर 2009 से समग्र मुद्रास्फीति में हुई बढ़ोतरी खराब मानसून और कमी की आशंकाओं के कारण मुख्यत: प्राथमिक वस्तुओं, विशेषकर खाद्य मंदी की क़ीमतों में वृद्धि के कारण हुई है। कुछ समय से वैश्विक बाज़ार की क़ीमतों में वृद्धि का रुख भी देखा जा रहा है।

डब्ल्यूपीआई औसत मुद्रास्फीति का ब्यौरेवार विश्लेषण

डब्लूपीआई के वस्तु समूह में प्रत्येक प्रमुख समूह का प्रयोग के आधार पर अलग-अलग भी किया गया है। इस स्तर पर किया जाने वाला विश्लेषण इस तथ्य के चलते महत्वपूर्ण हो गया है कि अपेक्षाकृत उच्च मुद्रास्फीति का वर्तमान दौर खाद्य मदों में ही संकेंद्रित है जो प्राथमिक समूह का उप-समूह है। तालिका-3 में उप-क्षेत्र के स्तर पर प्रयोग पर आधारित वियोजित वार्षिक मुद्रास्फीति की प्रवृत्तियां दर्शाई गई हैं। बीते वित्त वर्ष में प्राथमिक समूह और विनिर्मित समूह दोनों में ही उच्च खाद्य मुद्रास्फीति बहुत साफ-स्पष्ट रही है। एक और स्पष्ट उभरता तथ्य पिछले पांच वर्षों में खनिज समूह में देखी गई अपेक्षाकृत उच्च मुद्रास्फीति है। इससे विकास दरों के परिणामस्वरूप खनन क्षेत्र में मांग-आपूर्ति के बीच व्याप्त असंतुलन का पता चलता है। चालू वित्त वर्ष के दौरान इस क्षेत्र में क़ीमतों में आई गिरावट घरेलू और अंतरराष्ट्रीय मांग में कमी की वजह से हुई है।

खाद्य मुद्रास्फीति

खाद्य सूचकांक का परिकलन करने के प्रयोजन से खाद्य मदों के घटक को प्राथमिक मदों के समूह में और विनिर्मित उत्पादों के समूह के साथ जोड़ दिया जाता है। डब्ल्यूपीआई में संयुक्त खाद्य सूचकांक का समग्र भारांश 25.43 प्रतिशत है जिसमें 15.40 प्रतिशत के भारांश वाली प्राथमिक खाद्य वस्तुएं और 10.03 प्रतिशत भारांश वाले विनिर्मित खाद्य उत्पादन हैं (तेल खली-भारांश = 1.42 प्रतिशत और पशु चारा-भारांश = 0.01 प्रतिशत को समायोजित करने के बाद)। पिछले 15 वर्षों के दौरान डब्ल्यूपीआई की वर्तमान शृंखला (आधार वर्ष 1993-94 = 100) की खाद्य मुद्रास्फीति के वर्तमान दौर से पहले 1996-97 की चौथी तिमाही (13.6 प्रतिशत) में और 1998-99 की तीसरी तिमाही (17.1 प्रतिशत) में ऐसे दो प्रकरण पहले भी हुए थे। 1996-97 में उच्च मुद्रास्फीति चावल, गेहूं, चना और फल एवं सब्जियों की क़ीमतों के बढ़ने के कारण हुई थी। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में ईंधन की ऊंची क़ीमतों ने भी परिवहन लागत में वृद्धि करके खाद्य क़ीमतों की बढ़ोतरी में योगदान किया। वर्ष 1998-99 में खाद्य क़ीमतों में हुई वृद्धि चौथे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के कार्यान्वयन के बाद हुई थी जिससे मांग-आपूर्ति

में अंतर हो गया था। वर्ष के दौरान सब्जियों में प्याज और आलू, दालों, चावल और गेहूं के मामले में उच्च मुद्रास्फीति होने की सूचना थी। विनिर्मित उत्पादों की श्रेणी में खाद्य तेलों के मामले में ऊंची क़ीमतें होने की सूचना थी लेकिन चीनी की क़ीमतें स्थिर रही थीं। उच्च मुद्रास्फीति का मौजूदा दौर खाद्य तेलों को छोड़कर सभी खाद्य मदों में व्याप्त है।

विभिन्न मूल्य सूचकांकों के अनुसार वार्षिक मुद्रास्फीति

उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों (सीपीआई) के संदर्भ में मापित मुद्रास्फीति पिछले 14 महीनों (नवंबर '08 से दिसंबर '09) में डब्ल्यूपीआई से अधिक बनी रही है। (तालिका-4)। डब्ल्यूपीआई और औद्योगिक कामगारों के उपभोक्ता मूल्य सूचकांक (सीपीआईआईडब्ल्यू) में अंतर अभी भी है लेकिन यह जुलाई 2009 में अपने शीर्ष पर पहुंचने के बाद कम हो रहा है।

उपभोक्ता मूल्य सूचकांकों और डब्ल्यूपीआई में खाद्य मुद्रास्फीति

डब्ल्यूपीआई और सीपीआई पर आधारित

तालिका-3
डब्ल्यूपीआई के प्रमुख शीर्षों के अनुसार वार्षिक औसत मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

वस्तुएं	भारांश (प्रतिशत)	2004-05	2005-06	2006-07	2007-08	2008-09	2008-09 (अप्रै. दिस.)	2009-10 (अप्रै.दिस.)[अ]
सभी वस्तुएं	**100.00**	**6.48**	**4.43**	**5.42**	**4.66**	**8.39**	**10.20**	**1.63**
I. प्राथमिक वस्तुएं	**22.03**	**3.69**	**2.87**	**7.85**	**7.61**	**10.06**	**10.93**	**8.78**
क. खाद्य वस्तुएं	15.40	2.70	4.83	7.78	5.46	8.02	7.57	13.31
ख. खाद्य-भिन्न वस्तएं	6.14	0.70	-4.48	5.14	12.64	11.17	14.24	0.43
ग. खनिज	0.48	110.31	26.54	28.13	13.20	34.90	45.53	-5.51
II. ईंधन, विद्युत, प्रकाश स्नेहक	**14.23**	**10.14**	**9.49**	**5.61**	**0.93**	**7.46**	**11.32**	**-6.35**
क. कोयला	1.75	15.34	3.72	0.00	2.68	6.60	9.08	-0.91
ख. खनिज तेल	6.99	15.17	13.93	7.87	0.95	11.08	17.17	-10.12
ग. बिज़ली	5.48	1.73	4.07	3.15	0.48	1.06	1.40	-0.08
III. विनिर्मित उत्पाद	**63.75**	**6.26**	**3.07**	**4.43**	**4.97**	**8.09**	**9.47**	**1.77**
क. खाद्य उत्पादन	11.54	4.98	1.09	3.22	4.27	10.04	10.59	15.49
ख. पेय पदार्थ, तंबाकू और इसके उत्पाद	1.34	5.26	4.85	7.36	10.27	9.50	9.53	5.25
ग. वस्त्र	9.80	3.04	-4.50	2.16	-0.98	5.95	4.96	4.18
घ. लकड़ी और लकड़ी के उत्पाद	0.17	0.06	8.41	6.01	4.65	8.34	8.30	1.62
ङ. क़ागज और क़ागज के उत्पाद	2.04	0.75	2.23	6.83	1.84	4.38	4.23	1.04
च. चमड़ा और चमड़े के उत्पाद	1.02	5.99	7.13	-4.38	4.14	1.08	0.83	-0.99
छ. रबड़ और प्लास्टिक उत्पाद	2.39	-0.37	3.42	6.61	7.15	4.66	5.47	1.79
ज. रसायन और उनके उत्पाद	11.93	2.54	3.58	3.03	5.57	7.23	8.85	3.20
झ. अधात्विक खनिज उत्पाद	2.52	6.34	7.80	12.82	8.86	3.74	4.32	3.27
ञ. बुनियादी धातुएं, मिश्र धातुएं और उत्पाद	8.34	21.16	7.43	6.82	6.86	14.44	19.65	-12.67
ट. मशीनरी और मशीनी औज़ार	8.36	5.65	5.14	5.56	7.07	4.74	5.44	-1.34
ठ. परिवहन उपस्कर एवं पुर्जे	4.29	4.68	3.63	1.56	2.71	5.22	6.09	0.05

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग **अः अंतिम**

तालिका-4
विभिन्न मूल्य सूचकांकों के अनुसार वार्षिक मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

माह	डब्ल्यूपीआई		सीपीआई-आईडब्ल्यू		सीपीआई-यूएनएमई		सीपीआई-एएल		सीपीआई-आरएल	
	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10	2008-09	2009-10
अप्रैल	8.0	1.3	7.8	8.7	7.0	8.8	8.9	9.1	8.6	9.1
मई	8.9	1.4	7.8	8.6	6.8	9.7	9.1	10.2	8.8	10.2
जून	11.8	-1.0	7.7	9.3	7.3	9.6	8.8	11.5	8.7	11.3
जुलाई	12.4	-0.5	8.3	11.9	7.4	13.0	9.4	12.9	9.4	12.7
अगस्त	12.8	-0.2	9.0	11.7	8.5	12.9	10.3	12.9	10.3	12.7
सितंबर	12.3	0.5	9.8	11.6	9.5	12.4	11.0	13.2	11.0	13.0
अक्तूबर	11.1	1.5	10.4	11.5	10.4	12.0	11.1	13.7	11.1	13.5
नवंबर	8.5	4.8 अ	10.4	13.5	10.8	13.9	11.1	15.7	11.1	15.7
दिसंबर	6.1	7.3 अ	9.7	15.0	9.8	-	11.1	17.2	11.1	17.0
जनवरी	5.0		10.4		10.4		11.6		11.4	
फरवरी	3.5		9.6		9.9		10.8		10.8	
मार्च	1.2		8.0		9.3		9.5		9.7	
औसत	**8.4**		**9.1**		**8.9**		**10.2**		**10.2**	

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग, श्रम ब्यूरो और केंद्रीय सांख्यिकीय संगठन
अ : अनन्तिम
आईडब्ल्यू : औद्योगिक कामगार; यूएनएमई- शहरी श्रमिकेतर कर्मचारी; एएल : कृषि श्रमिक; आरएल : ग्रामीण श्रमिक

खाद्य मुद्रास्फीति अप्रैल 2009 से बढ़ रही है (तालिका-5) और किसी उल्लेखनीय परिवर्तन को प्रतिबिंबित नहीं करती।

मुद्रास्फीति के मुख्य प्रचालक

मुद्रास्फीति के वस्तु वार आंकड़ों के अलावा, कुल मुद्रास्फीति में विभिन्न वस्तुओं का भरोसा योगदान भी मुद्रास्फीति के मुख्य प्रचालकों की ओर संकेत करता है। दिसंबर 2009 में, 17.63 प्रतिशत के भारांश और 21.89 प्रतिशत की

तालिका-5
डब्ल्यूपीआई, सीपीआई-आईडब्ल्यू और सीपीआई-एएल/आरएल पर आधारित खाद्य मुद्रास्फीति (प्रतिशत)

	भारांश (प्रतिशत)	अप्रैल 2009	मई 2009	जून 2009	जुलाई 2009	अगस्त 2009	सित. 2009	अक्तु 2009	नव. 2009	दिस. 2009
खाद्य (सीपीआई-एएल)	46.20	10.42	11.72	12.24	14.67	13.73	13.55	13.84	17.61	21.29
खाद्य (सीपीआई-एएल)	69.15	9.09	11.16	12.44	13.96	14.13	14.63	15.33	18.14	20.22
खाद्य (सीपीआई-एएल)	66.77	9.09	11.16	12.44	14.22	14.13	14.63	15.33	18.14	20.43
खाद्य (सीपीआई-एएल)	25.43	9.04	9.56	10.80	12.67	13.32	14.67	14.24	17.78अ	19.77अ

स्रोत : औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग, श्रम ब्यूरो
अ : अंतिम

वार्षिक मुद्रास्फीति वाली तीस आवश्यक वस्तुओं ने समग्र मुद्रास्फीति में 51.88 प्रतिशत का योगदान किया। 25.43 प्रतिशत के भारांश और 19.77 प्रतिशत की वार्षिक मुद्रास्फीति वाली संयुक्त खाद्य मदों (जिनमें प्राथमिक और विनिर्मित खाद्य उत्पाद शामिल हैं) ने समग्र मुद्रास्फीति में 66.56 प्रतिशत का योगदान किया। दिसंबर 2009 में समग्र मुद्रास्फीति में उल्लेखनीय योगदान किया है। ये हैं– प्राथमिक मदों में चावल, गेहूं, दालें, सब्जियां एवं फल, दूध, मछली और मांस तथा चाय; ईंधन समूह में अप्रशासित खनिज तेल; विनिर्मित उत्पादों में चीनी-गुड़ और तेल-खली। ❑

(आर्थिक समीक्षा 2009-10 के संबद्ध अध्याय के संपादित अंश)

खाद्य मुद्रास्फीति : कारण और निवारण

● रमेश चंद्र
पी. शिनोज

कुछ वर्षों से गंभीर सूखे और अनाज़ उत्पादन में कमी के बावजूद भारत में पिछले कुछ समय से खाद्य मुद्रास्फीति की दर दो अंकों वाली नहीं रही। वर्ष 2008 के बाद खाद्य मुद्रास्फीति का परिदृश्य एकदम बदल गया। इससे काफ़ी परेशानी हो रही है क्योंकि खाने-पीने की चीज़ों पर ग्रामीण इलाक़ों में हर घर में आमदनी का क़रीब-क़रीब 50 प्रतिशत ख़र्च हो रहा है और शहरी इलाक़ों में यह 43 प्रतिशत है। कम आय वर्ग वाले घरों में यह व्यय बजट के प्रतिशत के अर्थों में उच्च आय वर्गों की तुलना में काफ़ी ज्यादा बैठता है। इससे ज़ाहिर होता है कि खाद्य मुद्रास्फीति अन्य ख़र्चों के मुक़ाबले कम आय वाले उपभोक्ताओं को ज्यादा ख़लती है जबकि उच्च आय वर्ग के उपभोक्ता ज्यादा प्रभावित नहीं होते।

खाद्य मुद्रास्फीति के कारणों को दो वर्गों में बांटा जा सकता है। पहला वर्ग वह है जो अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में परिवर्तनों के कारण होता है और दूसरा वह जो घरेलू अर्थव्यवस्था से संबंधित है। वर्ष 1990 से शुरू दशक से प्रारंभ व्यापार में उदारीकरण में वृद्धि के चलते घरेलू क़ीमतें अंतरराष्ट्रीय मूल्यों से बहुत ज्यादा प्रभावित होने लगी हैं। लेकिन वर्ष 2006 के बाद भारत में खाने-पीने की चीज़ों की क़ीमतें उस तरह प्रभावित नहीं हुईं जैसी अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में हुई थी। वर्ष 2007 में अंतरराष्ट्रीय खाद्य मूल्य 26 प्रतिशत बढ़ गए और वर्ष 2008 के मध्य तक ये ऐतिहासिक बुलंदियों पर पहुंच गए। इसके विपरीत भारत में खाद्य पदार्थों की क़ीमतें (कृपया वर्ष 1993-94 को आधार मानकर थोक मूल्य सूचकांक का संदर्भ लें और इसमें खाने-पीने की चीजें एवं खाद्य उत्पाद शामिल कर लें) वर्ष 2007 और 2008 के दौरान 8 प्रतिशत से कम बढ़ीं। इसके अलावा जनवरी से जून 2008 के बीच अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में खाने-पीने की चीज़ों की क़ीमतों में 20 प्रतिशत का उछाल आया जबकि भारत में यह वृद्धिदर सिर्फ़ 12 प्रतिशत रही। घरेलू और अंतरराष्ट्रीय खाद्य मूल्यों में इस अंतर के चलते गंभीर चिंता महसूस की गई और कई सवाल भी उठ खड़े हुए। भारत में अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों की अपेक्षा खाद्य पदार्थों के मूल्य क्यों ज्यादा हैं? क्या भारत में क़ीमतें अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों से कम हैं और क्या दोनों के बीच का अंतर कम करने के लिए भारत में ज्यादा मुद्रास्फीति की ज़रूरत है? क्या भारत जैसे देश में खाद्य मूल्यों की मुद्रास्फीति दर क़ाबू में रखने के लिए व्यापार एक प्रमुख साधन नहीं रहा?

भारत जैसा देश जो कुल मिलाकर खाने-पीने

रेखाचित्र-1

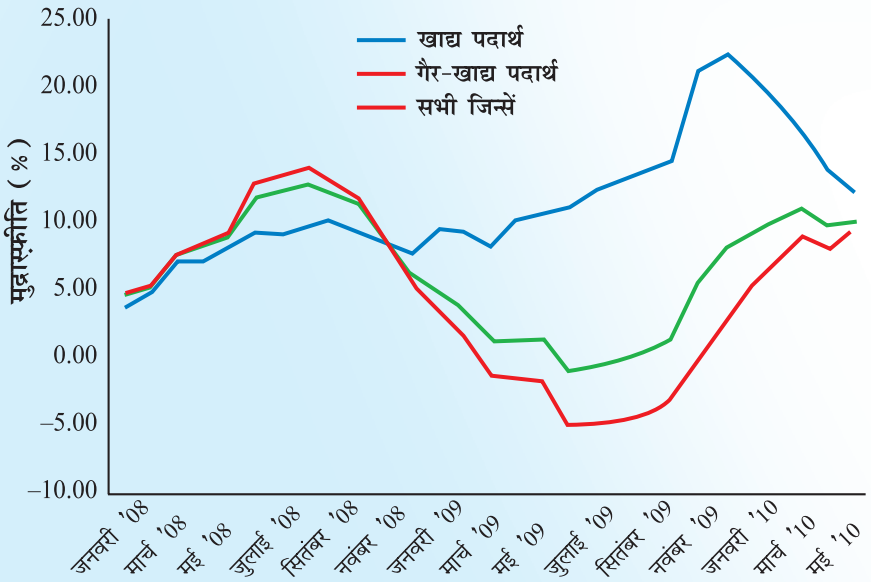

खाद्य एवं गैर-खाद्य जिन्सों में मुद्रास्फीति

की चीज़ों के मामले में आत्मनिर्भर है और जहां व्यापार और उत्पादन अनुपात बहुत ज्यादा नहीं है, क़ीमतों में मध्यम और लंबी अवधि की प्रवृत्ति निर्धारित करने में अंतरराष्ट्रीय कारकों के मुक़ाबले घरेलू कारकों का ज्यादा महत्व है। ये कारक अनेक हो सकते हैं और ये घरेलू मांग, पूर्ति, खाद्य प्रशासन, सरकारी हस्तक्षेप और बाज़ार की दशाओं में परिवर्तन से संबंधित हैं। इसके अलावा अनेक परिवर्तनशील कारकों जैसे- आय वृद्धि, आय वितरण, खाने-पीने की चीज़ों के विविधीकरण, शहरीकरण, मुद्रा आपूर्ति, ऋण, प्रौद्योगिकी और मौसम संबंधी कारक बहुत कुछ मांग और पूर्ति जैसी बातों पर निर्भर हैं।

मुद्रास्फ़ीति संरचना

थोक मूल्य सूचकांक में शामिल जिंसों के विभाजन को दो प्रमुख ग्रुपों में बांटा जा सकता है- खाद्य एवं ग़ैर खाद्य पदार्थ। इससे ज़ाहिर होता है कि जनवरी 2008 से अक्तूबर 2008 तक ग़ैर-खाद्य पदार्थ वाले वर्ग में मूल्य वृद्धि खाद्य पदार्थ वाले वर्ग में मूल्य वृद्धि की अपेक्षा ज्यादा थी। इसके बाद खाद्य एवं ग़ैर-खाद्य मूल्य अनियमित प्रवृत्ति अपना लेते हैं। ग़ैर-खाद्य वस्तुओं की मूल्य वृद्धि तेज़ थी जबकि खाद्य पदार्थों की क़ीमतें दो अंकों की वृद्धिदर की तरफ़ बढ़ती जान पड़ीं। मार्च से नवंबर 2009 तक के 9 महीनों के दौरान खाद्य पदार्थों का थोक मूल्य सूचकांक 2008 की इसी अवधि के सूचकांक की अपेक्षा कम था, जिसके कारण ग़ैर-खाद्य मूल्यों में ऋणात्मक मुद्रास्फीति सामने आई। इसके विपरीत उसी अवधि में खाद्य मूल्यों की मुद्रास्फीति दर 8 प्रतिशत से बढ़कर 20 प्रतिशत हो गई। ग़ैर-खाद्य मुद्रास्फीति दर में ऋणात्मक वृद्धि के चलते कुल मिलाकर मुद्रास्फीति दर इस अवधि के दौरान शून्य के आसपास रही। नवंबर 2009 के बाद ग़ैर-खाद्य पदार्थों की क़ीमतें भी बढ़नी शुरू हो गईं जिसके कारण फरवरी से मार्च 2010 के दौरान मुद्रास्फीति दर दोहरे अंकों वाली हो गई। दिसंबर 2009 के बाद खाद्य मुद्रास्फीति दर में कुछ कमी ज़ान पड़ी लेकिन खाद्य पदार्थों की मुद्रास्फीति दर अब भी 16 प्रतिशत से ऊपर बनी हुई है।

अगर हम पिछले दो वर्षों के थोक मूल्य सूचकांक आधारित खाद्य मुद्रास्फीति पर नज़र डालें तो स्पष्ट हो जाएगा कि उद्योगों द्वारा तैयार किए गए खाद्य पदार्थों का मूल्य वृद्धि में प्रारंभिक खाद्य पदार्थों की तुलना में ज्यादा योगदान रहा। मई से जुलाई 2008 तक की अवधि के दौरान जब मुद्रास्फीति की दर अपने चरम पर थी, उद्योगों द्वारा तैयार खाने-पीने की चीज़ों की क़ीमतों का कुल खाद्य मुद्रास्फीति में 55 से 60 प्रतिशत तक योगदान रहा (चित्र-2)। यह हमारे लिये कोई हैरत की बात नहीं होनी चाहिए क्योंकि उद्योगों द्वारा तैयार खाद्य पदार्थों का इस तरह के मुद्रास्फीति के निर्धारण में प्रारंभिक वस्तुओं की तुलना में अधिक भार होता है। लेकिन यह तब रोचक हो जाएगा जब मामला इसके विपरीत हो। हाल के महीनों में ऐसा ही हो रहा है।

हाल के दिनों में ऐसा देखा गया है कि प्रारंभिक खाद्य पदार्थों की क़ीमतें उद्योगों द्वारा उत्पादित खाद्य पदार्थों के मुक़ाबले तेज़ी से बढ़ रही हैं जिससे खाने-पीने की चीज़ों की क़ीमतों में भारी वृद्धि दिखाई दे रही है। प्रारंभिक चीज़ों में अनाज़, दूध एवं मांस का प्रमुख योग है लेकिन दालों, फलों व सब्जियों की क़ीमतें अब भी तेज़ी से बढ़ रही हैं जिससे खाने-पीने की मुद्रास्फीति दर तेज़ हो गई है। कुछ उदाहरण देखें- चावल की क़ीमतें जनवरी 2008 से मई 2010 के बीच 12 प्रतिशत बढ़ गई जबकि गेहूं की क़ीमत 7 प्रतिशत बढ़ी। दालों की क़ीमतों पर नज़र डालें तो अरहर की दाल 62 प्रतिशत महंगी हुई जबकि काले चने की क़ीमतें इसी अवधि में 105 प्रतिशत बढ़ गई। चीनी तथा अन्य औद्योगिक खाद्य पदार्थों की क़ीमतें भी

रेखाचित्र-2

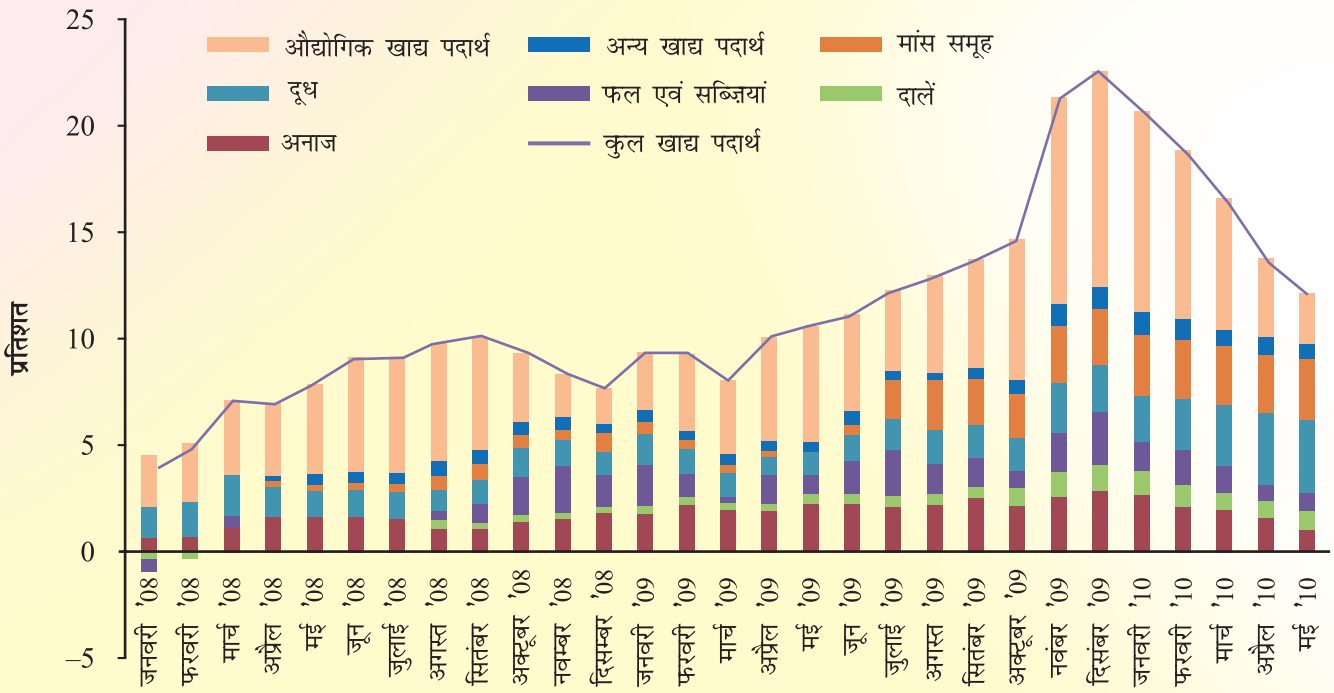

खाद्य मुद्रास्फ़ीति में विभिन्न जिन्स समूहों का योगदान

तेज़ी से बढ़ीं और जनवरी 2009 और मई 2010 की अवधि में यह मुद्रास्फीति दर औसतन 40 प्रतिशत रही। यह ध्यान देने की बात है कि ये सभी चीज़ें आवश्यक वस्तुओं के वर्ग में आती हैं और हर आम भारतीय उपभोक्ता के दैनिक भोजन में शामिल हैं। इसे देखते हुए स्थिति और भी गंभीर हो जाती है। इसीलिए आगामी खंडों में उन अनेक कारकों का विश्लेषण किया गया है जो मौजूदा खाद्य पदार्थों की मूल्य वृद्धि के पीछे मौजूद हैं। ऐसा करके ही उन चुनौतियों का सामना किया जा सकता है और कार्यनीतियां तय की जा सकती हैं जो इस मुद्रास्फीति के जिम्मेदार हैं।

कारणों का विश्लेषण

पूर्ति पक्ष की सीमाएं और संरचना संबंधी खामियां

खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में लगातार वृद्धि के कारणों को विभिन्न प्रकार के लंबी अवधि और कम अवधि के आकस्मिक कारणों में बांटा जा सकता है। इनमें से बहुत महत्वपूर्ण और आमतौर पर चर्चा का विषय बनने वाला कारण है- ज़रूरी खाद्य पदार्थों की मांग और पूर्ति का असंतुलन। लोगों की आमदनी लगातार बढ़ी है और उसका उपयोग भी बढ़ा है जिसके चलते साल-दर-साल खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ गई है।

मनरेगा जैसे कार्यक्रमों के चलते ग़रीबी रेखा से नीचे रहने वाले परिवारों की क़माई बढ़ गई है जिसके चलते भी खाद्य पदार्थों की मांग बढ़ी है। दूसरी तरफ खेती के रकबे का उतना ही बने रहना और फ़सलों की पैदावार न बढ़ने जैसे उपज को सीमित करने वाले कारणों पर भी ध्यान देने की ज़रूरत है। पिछले साल वर्षा कम हुई और दक्षिण-पश्चिमी मानसून से अनेक इलाक़े प्रभावित हुए जिसके कारण वर्ष 2009 की आख़िरी छमाही में जिन्सों की आपूर्ति कम हो गई जो वर्ष 2010 तक बनी रही। देश में वर्ष 2009 की ख़रीफ़ फ़सल के लिए 25 प्रतिशत वर्षा की कमी महसूस की गई इसके परिणामस्वरूप प्रमुख कृषि उत्पादन पर असर पड़ा और अनाज़ों की कमी महसूस की गई। साथ ही, तिलहन और गन्ने की पैदावार भी प्रभावित हुई। चावल की पैदावार में पहले वाले वर्ष के मुक़ाबले क़रीब 20 प्रतिशत कमी आई (देखें तालिका-1)। गेहूं की पैदावार भी तय किए गए लक्ष्य से कम रही लेकिन यह इससे पहले वाले वर्ष के मुक़ाबले कम नहीं थी। तिलहनों और गन्ने की उपज भी काफ़ी कम हुई।

अब जब कि आपूर्ति पक्ष में कमी दिखाई दे रही है, ग़रीबों की अनाज़ तक पहुंच कम हो जाएगी। ऐसी हालत में सरकार सार्वजनिक वितरण व्यवस्था के जरिये सुरक्षित भंडार से आवश्यक जिन्सों की पूर्ति बढ़ा देती है और कई बार खुले बाज़ार में भी इन जिन्सों की बिक्री करती है। लेकिन मौजूदा स्थिति में ऐसा जान पड़ता है कि इस तरह के कोई उपाय कारग़र नहीं रहे। एक तरफ सरकार खाद्य पदार्थों की ऊंची मुद्रास्फीति दर से जूझ रही है तो दूसरी तरफ वह भंडार में अधिक माल ज़मा हो जाने की समस्या से भी परेशान है। एक जून, 2010 की स्थिति के अनुसार सेंट्रल पूल में 6 करोड़ टन अनाज़ का सुरक्षित भंडार था जबकि जुलाई में मात्र 2.69 करोड़ टन ही है। इस प्रकार के अधिक भंडार से दोहरा नुक़सान होता है। पहला यह कि भंडारण पर अनावश्यक रूप से अधिक ख़र्च करना पड़ता है और दूसरा, यह भंडार लोगों की पहुंच से बाहर होता है और इसके कारण क़ीमतों में इज़ाफ़ा होता है।

अंतरराष्ट्रीय संपर्क

भारत ने निर्यात प्रतिबंधों सहित व्यापारिक उपायों के जरिये घरेलू हस्तक्षेप करके वर्ष 2007-08 के दौरान अंतरराष्ट्रीय बाज़ारों में खाद्य पदार्थों की ऊंची क़ीमतों से अपने घरेलू बाज़ार को बचाने में क़ामयाबी पाई। लेकिन वर्ष 2008 के मध्य में अंतरराष्ट्रीय मंडियों में खाद्य पदार्थों की क़ीमतें बढ़ गईं। अधिकांश देशों में ज्यादातर जिन्सों की क़ीमतें वर्ष 2009 की पहली छमाही में दबी रहीं। इसका कारण था वित्तीय और औद्योगिक मंदी के चलते मांग में कमी। वर्ष 2008 में अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में गिरावट के बाद भी ज्यादातर मामलों में अंतरराष्ट्रीय मूल्य स्तर भारत के मूल्य स्तर से काफ़ी ऊंचा बना रहा। अंतरराष्ट्रीय मंडियों में जब अनाज़ की क़ीमतें गिर रही थीं तो भारत में मूल्य में वृद्धि की प्रवृत्ति दिखाई दे रही थी क्योंकि उन्हें अंतरराष्ट्रीय स्तर के बराबर आना था। इससे ज़ाहिर हो जाता है कि 2008 के आखिरी महीनों में जब अंतरराष्ट्रीय स्तर पर क़ीमतें गिर रही थीं तो भी भारत में घरेलू मुद्रास्फीति दर क्यों ऊंची बनी रही।

वर्ष 2009-10 (जून '10 से मई '10) के दौरान अनाज़ की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में फिर वृद्धि शुरू हो गई। पांच बड़े खाद्य समूहों को मिलाकर बनाया गया एफएओ अनाज़ मूल्य सूचकांक जून 2009 से मई 2010 तक 17 प्रतिशत बढ़ गया। सबसे ज्यादा इज़ाफ़ा चीनी की क़ीमतों में दिखाई दिया। एफएओ का चीनी मूल्य सूचकांक जून 2009 के 233.1 से बढ़कर जनवरी 2010 में 375.5 हो गया। इसका प्रमुख कारण ब्राज़ील में चालू वर्ष के दौरान आपूर्ति की स्थिति में अस्थिरता है। उसी अवधि में डेरी उत्पाद की क़ीमतों में भी 86 प्रतिशत और खाद्य तेल मूल्यों में 11 प्रतिशत वृद्धि हुई। मूल्यों में यह परिवर्तन बहुत कुछ अंतरराष्ट्रीय मंडियों के कारण घरेलू बाज़ारों में दिखाई देता है। अगर लंबी अवधि के मामले में देखा जाए, तो जान पड़ेगा कि पिछले 10 वर्षों के दौरान प्रमुख कृषि जिन्सों का वास्तविक यूनिट आयात मूल्य बढ़ा है। वर्ष 1993-94 से 2001-02 के दौरान जहां दालों के आयात का यूनिट मूल्य

तालिका-1

हाल के वर्षों में प्रमुख फ़सलों की पैदावार और उनमें कमी

फ़सलें	2006-07	2007-08	2008-09	● 2009-10
चावल	93.4 (1.7)	96.7 (3.5)	99.2 (2.6)	80 (-19.6)
गेहूं	75.8 (9.2)	78.6 (3.7)	80.7 (2.7)	81.5 (1.0)
अनाज	203.1 (4.1)	216 (6.4)	219.9 (1.8)	197.6 (-10.1)
दालें	14.2 (5.9)	14.8 (4.2)	14.6 (-1.4)	15.1 (3.4)
जोड़ अनाज	217.3 (4.2)	230.8 (6.2)	234.6 (1.7)	212.7 (-9.3)
तिलहन	24.3 (-13.2)	29.8 (22.6)	27.7 (-7.1)	24 (-13.4)
गन्ना	355.2 (26.3)	348.2 (-2.0)	285 (-18.2)	259 (-9.1)

नोट: कोष्ठक वाले अंक पहले वाले वर्ष के मुक़ाबले आए परिवर्तन को दर्शाते हैं।

● आंकड़े अनंतिम हैं।

8,833 रुपये प्रतिटन था वहीं यह वर्ष 2008-09 के दौरान बढ़कर 1,0781 रुपये प्रतिटन हो गया। यही प्रवृत्ति गेहूं, चीनी और वनस्पति तेलों के मामले में दिखाई दी। इनके दीर्घ अवधि के निहितार्थ होते हैं और इसी अवधि में इनकी घरेलू क़ीमतों में इज़ाफ़ा हो जाता है और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर आपूर्ति पक्ष सीमित हो जाता है। देखा गया है कि भारत में खाद्य मुद्रास्फीति का एक अंश घरेलू मूल्य प्रवृत्तियों के अंतरराष्ट्रीय मूल्य प्रवृत्तियों के समेकन के कारण भी होता है। लेकिन मौजूदा संकट बाहरी से ज्यादा घरेलू कारकों के चलते बढ़ा जान पड़ता है।

फॉरवर्ड ट्रेडिंग

खाद्य पदार्थों में अगाऊ सौदे और सट्टेबाजी खाद्य मुद्रास्फीति दर को हवा देने वाला अन्य कारक है। आम धारणा है कि कमी वाले सीज़न के दौरान खाद्य पदार्थों के भावी मूल्य बहुत ऊंचे होते हैं और व्यापारी सट्टा लगाते समय इनसे संकेत लेते हैं। आवश्यक खाद्य पदार्थ भले ही अगाऊ सौदे की परिधि से बाहर हों, लेकिन खाद्य और गैर-खाद्य पदार्थों की क़ीमतों का असर अगाऊ सौदों पर भी पड़ता है। हालांकि अभी तक ऐसा कोई निश्चित अध्ययन नहीं किया गया है जिससे इस धारणा का खंडन या पुष्टि होती हो कि अगाऊ सौदों से मुद्रास्फीति बढ़ती है। इस प्रकार के मामलों पर विचार के लिए नियुक्त की गई अभिजीत सेन समिति का कहना है कि वर्तमान साक्ष्यों से ऐसा कोई पक्का सबूत नहीं मिलता कि अगाऊ सौदों और खेती की जिन्सों के मूल्य वृद्धि में कोई संबंध है। कुछ भी हो यह ध्यान देने की बात है कि इस रिपोर्ट में ऐसी संभावना से इंकार नहीं किया गया है कि अगाऊ सौदों से मुद्रास्फीति दर बढ़ती है।

खाद्य मुद्रास्फ़ीति प्रबंधन

सरकार और केंद्रीय बैंक ने सामान्य मुद्रास्फीति दर को काबू में रखने के उद्देश्य से कई उपाय किए हैं। भारतीय रिज़र्व बैंक ने अपनी प्रमुख नीति संबंधी दरों में पिछले एक वर्ष के दौरान कई बार वृद्धि करके अपनी मुद्रानीति सख़्त बना दी है। लेकिन मुद्रानीति की भूमिका खाद्य जिंसों की मुद्रास्फीति दर को नियंत्रित करने में बहुत सीमित होती है, क्योंकि खाद्य मुद्रास्फीति मुख्य रूप से पूर्ति पक्ष की सीमाओं के कारण होती है और इसमें निहित खामियां असाध्य प्रकृति की होती हैं। खाद्य पदार्थों के कारण पैदा हुई मुद्रास्फीति दर अब आम बात हो गई है और इसमें सुधार करने के लिए एक निश्चित अवधि तक जमकर प्रयास करने होंगे। अब जबकि हाल के वर्षों में सार्वजनिक निवेश काफ़ी बढ़ गया है, इन निवेशों की कुशलता बढ़ाने पर ध्यान देने की ज़रूरत है। खेती और अनाज़ उत्पादन के लिए उपलब्ध क्षेत्रफल भविष्य में और कम हो सकता है। अतः फ़सलों की उत्पादकता बढ़ाने और अनाज़ की बढ़ती मांग को ध्यान में रखना होगा।

सार्वजनिक वितरण व्यवस्था को चुस्त-दुरुस्त बनाना वह सुधारात्मक उपाय है जिसे मध्यम अवधि के लिए अपनाया जा सकता है। साथ ही, अनाज़ के भंडारों में खाद्य पदार्थों का भंडारण एक निर्धारित सीमा से ज्यादा नहीं होना चाहिए। निर्धारित अंतराल पर इसमें से माल उठाकर खुले बाज़ार में बेचा जाना चाहिए। इससे अनाज़ भंडारों पर दबाव कम होगा साथ ही घरेलू बाज़ार में क़ीमतें भी स्थिर रहेंगी। सार्वजनिक वितरण व्यवस्था का क्षेत्र बढ़ाना भी एक तर्कसंगत उपाय हो सकता है। इसके ज़रिये दालें, खाद्य तेल और चीनी जैसी अन्य ज़रूरी वस्तुएं भी वितरित की जाएं ताकि ग़रीब वर्ग को खाद्य मुद्रास्फीति से बचाया जा सके। लेकिन यह स्पष्ट नहीं है कि पिछले दिनों सार्वजनिक वितरण व्यवस्था से खाद्य मुद्रास्फीति घटाने में क्या सहायता मिली? कहीं ऐसा तो नहीं है कि हमारी वितरण व्यवस्था में कमियों के चलते और सब्सिडी बढ़ने से खाद्य मुद्रास्फीति में इज़ाफ़ा हो रहा है?

अनाज़ आयात करके उसकी आपूर्ति घरेलू बाज़ारों में बढ़ाकर भी क़ीमतें क़ाबू में की जा सकती हैं। इसके लिए ज़रूरी है कि सही समय पर आयात करने की योजना बनाई जाए। गेहूं आयात के हमारे पिछले तजुर्बे को देखने पर इस बात की पुष्टि होती है कि अंतरराष्ट्रीय मूल्य बढ़ रहे हैं और आयात महंगा पड़ रहा है। हमें ऐसी व्यवस्था विकसित करनी होगी जिससे हमें मांग और पूर्ति में असंतुलन की जानकारी पहले ही मिल जाए और हम उसके अनुसार अपनी व्यापार नीति में सुधार कर लें।

एक फौरी उपाय यह हो सकता है कि खाद्य पदार्थों की जमाख़ोरी और इनमें की जाने वाली सट्टेबाजी को रोकने के उपाय सख़्ती से लागू किए जाएं। इसके लिए अगर सरकार को करों का कुछ घाटा भी उठाना पड़े तो वह इन्हें तब तक उठाए जब तक क़ीमतें सामान्य स्तर पर न आ जाएं। डीजल पर राज्य स्तर के आयात कर तथा अन्य कर घटाकर भी किसानों को राहत दी जा सकती है।

यह आवश्यक होगा कि मुद्रास्फीति और खाद्य मुद्रास्फीति दर को क़ाबू करने के उपायों को तुरंत, मध्यम अवधि वाले और दीर्घ अवधि वाले वर्गों में विभाजित किया जाए। तुरंत उपाय वे होंगे जो मूल कारणों पर ध्यान न देते हुए दिखाई देने वाले लक्षणों को दूर करने वाले हों। इन्हें लागू करते समय दीर्घ अवधि की दूरदृष्टि और नियोजन की प्रतिभा दिखानी होगी। ❑

(लेखकद्वय राष्ट्रीय कृषि अर्थशास्त्र एवं नीति अनुसंधान केंद्र पूसा, नयी दिल्ली में क्रमशः निदेशक एवं वैज्ञानिक के पद पर कार्यरत हैं।

ई-मेल : rc@ncap.res.in एवं pshinoj@ncap.res.in)

अर्थव्यवस्था में खाद्य मुद्रास्फीति की स्थिति

● बृजेश कुमार

खाद्य मदों की अधिक क़ीमतों से उभरने वाले हेडलाइन मुद्रास्फीति पर संकेंद्रित दबाव में यह ज़ोखिम रहता है कि यह मुद्रास्फीति समय बीतने पर संभावनाओं से संचालित वेतन मूल्य संशोधनों के जरिये अन्य खाद्य भिन्न मदों में अंतरित हो सकती है और इस तरह आम मुद्रास्फीति के रूप में प्रकट हो सकती है

अर्थव्यवस्था में मांग और आपूर्ति की स्थितियों में हुए परिवर्तनों को मुद्रास्फीति की दर में हुए परिवर्तनों के द्वारा देखा जा सकता है। हाल के माइक्रो इकोनॉमिक्स आंकड़ों से संकेत मिलते हैं कि पूरी दुनिया उच्च मुद्रास्फीति क्षेत्र की तरफ बढ़ रही है, और भारत भी इससे अछूता नहीं है। वित्त वर्ष 2008-09 का पूर्वार्ध थोक मूल्य सूचकांक आधारित उच्च मुद्रास्फीति का रहा, जो मुख्यत: वस्तुओं और ईंधन की वैश्विक क़ीमतों में हुई बढ़ोतरी के कारण थी। जबकि जून से अगस्त 2009 के दौरान मुद्रास्फीति ऋणात्मक परिधि में आ गई जिसका मुख्य कारण सितंबर 2008 से शुरू हुई वैश्विक आर्थिक मंदी था। यदि खाद्य मुद्रास्फीति के संदर्भ में बात की जाए तो वित्त वर्ष 2008-09 की पहली तिमाही में देखा गया उछाल 2009-10 में भी जारी रहा। 22 मार्च, 2008 को समाप्त हुए सप्ताह के दौरान फलों, सब्ज़ियों, अंडों, मांस व मछली के भाव एक फ़ीसदी और दालों के भाव में तीन से पांच फ़ीसदी की बढ़ोतरी हुई। सूरजमुखी के तेल के दाम में चार फ़ीसदी की बढ़ोतरी हुई। समग्र रूप से वित्त वर्ष 2008-09 में देखी गई ज़बरदस्त अस्थिरता अगस्त 2008 में 12.82 प्रतिशत और मार्च 2009 के 1.20 प्रतिशत के बीच घटती-बढ़ती रही। यह अस्थिरता चालू वित्त वर्ष 2009-10 में भी जारी है। वर्ष 2008-09 के पूर्वार्द्ध में देखी गई अस्थिरता ईंधन और वस्तुओं की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों में वृद्धि के कारण थी, जबकि 2008-09 के उत्तरार्द्ध में थोक मूल्य सूचकांक मुद्रास्फीति में हुई गिरावट ईंधन और वस्तुओं की अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के गिरने के कारण हुई थी। जबकि वित्त वर्ष 2009-10 में डब्ल्यूपीआई मुद्रास्फीति में बहुत तेज़ी से वृद्धि हो रही है, जो मुख्यत: प्राथमिक और विनिर्मित दोनों प्रकार की खाद्य मदों तथा खाद्य भिन्न मदों की क़ीमतों में बढ़ोतरी के कारण है।

दूसरे शब्दों में, वित्त वर्ष 2008-09 एवं 2009-10 में मुद्रास्फीति में अस्थिरता के अलग-अलग कारण हैं। वर्ष 2009-10 में मुद्रास्फीति बढ़ने की मुख्य वज़ह दक्षिण-पश्चिम मानसून का ख़राब होना है जो सन् 1972 के बाद सबसे ख़राब मानसून रहा है जिसके कारण कृषि उत्पादन में कमी की आशंकाओं का जन्म हुआ। औसत खाद्य मुद्रास्फीति जो वित्त वर्ष 2008-09 के दौरान 7.56 प्रतिशत थी, बढ़कर अप्रैल से दिसंबर 2009 की अवधि में 13.54 प्रतिशत हो गई। दिसंबर 2009 में समग्र खाद्य मुद्रास्फीति 19.77 प्रतिशत थी तथापि यह दिसंबर 2009 में अपने शीर्ष पर पहुंच गई प्रतीत होती है और यहीं से इसके कम होने की उम्मीद है।

इस दशक में 5.5 प्रतिशत से अधिक की अपेक्षाकृत उच्च वार्षिक मुद्रास्फीति के वर्ष 2000-01, 2004-05, 2008-09 थे। वर्ष 2008-09 पूर्ववर्ती दो वर्षों से भिन्न था, क्योंकि तीनों वर्षों में उच्च मुद्रास्फीति देखी गई। परंतु प्रथम दोनों वर्षों में उच्च मुद्रास्फीति ईंधन एवं खाद्य मदों सहित अन्य वस्तुओं की अधिक

अंतरराष्ट्रीय क़ीमतों के कारण थी जबकि वर्ष 2008-09 में उच्च मुद्रास्फीति ख़राब मानसून और मानसून की कमी की आशंकाओं के कारण मुख्यत: प्राथमिक वस्तुओं विशेषकर खाद्य मदों की क़ीमतों में वृद्धि के कारण हुई है। कुछ समय से वैश्विक बाज़ार में खाद्य क़ीमतों, विशेषकर चीनी, पामतेल, सोयाबीन और चाय की क़ीमतों में वृद्धि देखी जा रही है। चालू वित्त वर्ष में प्राथमिक समूह और विर्निमित समूह दोनों में ही उच्च खाद्य मुद्रास्फीति बहुत स्पष्ट रही है।

पिछले 15 वर्षों के दौरान डब्ल्यूपीआई के वर्तमान श्रृंखला (आधार वर्ष-1993-94=100) की खाद्य मुद्रास्फीति का तिमाहीवार विश्लेषण बताता है कि उच्च खाद्य मुद्रास्फीति के वर्तमान दौर से पहले वर्ष 1996-97 की चौथी तिमाही (13.6 प्रतिशत) में और 1998-99 की तीसरी तिमाही (17.1 प्रतिशत) में ऐसे दो प्रकरण पहले भी हुए थे। 1996-97 में उच्च मुद्रास्फीति चावल, गेहूं, चना, फल एवं सब्ज़ियों की क़ीमतें बढ़ने के कारण हुई थी, जबकि 1998-99 में खाद्य क़ीमतों में वृद्धि चौथे वेतन आयोग की सिफ़ारिशों के बाद हुई थी जिससे मांग एवं आपूर्ति में अंतर हो गया। उच्च मुद्रास्फीति का मौजूदा दौर खाद्य तेलों को छोड़ सभी खाद्य मदों में व्याप्त है, विशेषकर चीनी, दालें, सब्ज़ियों

तालिका-1

डब्ल्यूपीआई में भारित योगदान और मुद्रास्फीति (प्रतिशत में)

मदें	भारांश प्रतिशत में	भारित योगदान			मुद्रास्फ़ीति		
		अक्तू. '09,	नव. '09अ	दिस. '09अ	अक्तू. '09,	नव. '09अ	दिस. '09अ
सभी वस्तुएं	100	100	100	100	100	100	100
प्राथमिक मदें	22.02	137.15	58.39	48.23	8.67	11.84	14.88
खाद्य संयुक्त	25.43	232.53	90.68	66.56	14.24	17.78	19.77
खाद्य मदें	15.40	140.38	56.52	42.54	12.99	16.71	19.17
विनिर्मित वस्तुओं में खाद्य पदार्थ	10.03	92.14	34.16	24.02	16.68	19.88	20.93
आवश्यक वस्तुएं	17.63	209.39	75.00	51.88	18.53	21.15	21.89
चावल	2.45	21.48	6.19	3.99	14.29	12.95	12.33
गेहूं	1.38	8.78	3.74	2.39	9.31	12.66	12.04
दालें	0.60	11.44	5.04	3.95	25.08	35.22	41.58
सब्जियां	1.46	7.67	5.98	7.28	7.06	16.92	39.22
प्याज	0.09	2.03	0.70	0.42	33.10	32.41	27.41
फल	1.46	7.21	3.96	2.43	5.90	10.64	9.83
दूध	4.37	28.70	10.33	8.06	10.03	11.49	13.36
अंडे मांस एवं मछलियां	2.21	36.96	14.55	9.03	23.37	29.75	27.16
चाय	0.16	0.29	0.43	0.37	2.96	15.30	21.45
ईंधन एवं विद्युत	14.23	-100.02	-3.94	12.03	-6.66	-0.89	4.29
शेष खनिज तेल	1.55	-66.59	6.46	13.77	-21.96	9.53	38.18
विनिर्मित उत्पाद	63.75	60.11	46.10	39.46	1.60	3.99	5.17
खाद्य उत्पाद	11.54	117.69	51.30	36.33	17.33	24.70	26.40
चीनी	3.62	76.82	27.95	18.72	46.26	53.76	53.98
गुड़	0.06	1.40	0.37	0.28	40.02	32.60	37.23
तेल खली	1.42	25.52	17.14	12.31	21.14	50.39	56.87

स्रोत-औद्योगिक नीति एवं संवर्धन विभाग

अ- अनंतिम

एवं फलों तथा अनाज के मामले में बहुत ऊंची मुद्रास्फीति देखी जा रही है। दरअसल, चिंता की बात यह है कि खाद्य क़ीमतों पर क़ाबू पाने के लिए भारत सरकार के पास साधन सीमित हैं। हालांकि इस क्षेत्र में भारत ही अकेला ऐसा देश नहीं है जहां महंगाई बढ़ रही है। निश्चित रूप से यह वैश्विक परेशानी है। भारतीय रिज़र्व बैंक और वित्त मंत्रालय बढ़ती हुई मंहगाई से काफ़ी चिंतित हैं। बाज़ार विशेषज्ञों का कहना है कि बढ़ती मंहगाई दर भारत की अनुमानित जीडीपी वृद्धि के लक्ष्य के लिए अहितकर हो सकती है। हालांकि देश में खाद्य वस्तुओं में दो अंकीय मुद्रास्फीति की वर्तमान स्थिति आपूर्ति पक्ष की अड़चनों की वजह से हुई कही जा सकती है। अन्य कारण भी महंगाई बढ़ा रहे हैं जैसे- खाद्य पदार्थों, निर्माण उत्पाद और आवश्यक कमोडिटी की बढ़ती क़ीमतें और अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कच्चे तेल की क़ीमतों में बनी अस्थिरता ने भी स्थिति को बिगाड़ने में अपनी भूमिका निभाई है।

खाद्य मदों की अधिक क़ीमतों से उभरने वाले हेडलाइन मुद्रास्फीति पर सकेंद्रित दबाव में यह ज़ोखिम रहता है कि यह मुद्रास्फीति समय बीतने पर संभावनाओं से संचालित वेतन मूल्य संशोधनों के जरिये अन्य खाद्य भिन्न मदों में अंतरित हो सकती है और इस तरह आम मुद्रास्फीति के रूप में प्रकट हो सकती है। खाद्य मुद्रास्फीति को नियंत्रित करने के लिए और इसे आम आदमी में फैलने से रोकने के लिए सरकार द्वारा समुचित उपाय किए जा रहे हैं, जो निम्नलिखित हैं :

- चावल, गेहूं, दालें, खाद्य तेलों (कच्चे) और चीनी तथा मक्का से आयात शुल्क हटाकर शून्य करना (प्रतिवर्ष 5 लाख टन के टीआरक्यू के अंतर्गत, इससे अधिक पर 15 प्रतिशत का शुल्क प्रयोज्य होगा)।
- परिष्कृत एवं हाइड्रोजनीकृत तेलों तथा वनस्पति तेलों के आयात शुल्क घटाकर 7.5 प्रतिशत करना।
- राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को 15 रुपये प्रतिकिलो की सब्सिडी पर आयातित तेलों का वितरण।
- खाद्य तेलों के टैरिफ दरों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।
- ग़ैर-बासमती चावल, खाद्य तेलों और दालों (काबुली चना छोड़कर) के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया गया है।
- दालों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों तथा नैफेड को एक योजना के तहत दालें आयात करने और बेचने की अनुमति दी गई। यदि कोई हानि हुई हो तो 15 प्रतिशत तक प्रतिपूर्ति की जाएगी।
- चीनी कारखानों को घरेलू बाज़ार में संसाधित कच्ची चीनी बेचने और टन-दर-टन आधार पर निर्यात देनदारी पूरी करने की अनुमति दी गई है।
- राज्य सरकारों को दस रुपये प्रतिकिग्रा पर सब्सिडी पर पीडीएस के माध्यम से आयातित दालों का वितरण करना।
- प्याज (जनवरी 2010 में औसतन 500 डॉलर प्रतिटन) और बासमती चावल (900 डॉलर प्रतिटन) का निर्यात नियंत्रित करने के लिए न्यूनतम निर्यात मूल्य का इस्तेमाल करना।
- न्यूनतम समर्थन मूल्य में सुव्यवस्थित तरीक़े से बढ़ोतरी की गई है जिसके परिणास्वरूप क्षेत्रफल, उत्पादन, उत्पादकता और केंद्रीय अधिप्राप्ति में वृद्धि हुई है।
- राज्यों में खुदरा उपभोक्ताओं को वितरित करने के लिए अक्तूबर 2009 से मार्च 2010 तक की अवधि के लिए सामान्य पीडीएस आवंटन के अतिरिक्त दो लाख टन गेहूं और एक लाख टन चावल का आवंटन किया गया है।
- भारतीय रिज़र्व बैंक ने दूसरी और तीसरी तिमाही की समीक्षाओं के माध्यम से क्रमशः सांविधिक नक़दी अनुपात (एसएलआर) और आरक्षित नक़दी अनुपात (सीआरआर) में वृद्धि करने की घोषणा करके अर्थतंत्र में मौजूद अतिरेक नक़दी को समाप्त करने के लिए दरों में चरणबद्ध परिवर्तन किए हैं। ❑

(लेखक दीनदयाल उपाध्याय गोरखपुर विश्वविद्यालय, गोरखपुर के वाणिज्य विभाग में शोधछात्र हैं।

ई-मेलः kumar.brijesh17@yahoo.com)

एशियाई विकास बैंक ने आर्थिक वृद्धिदर अनुमान बढ़ाया

निर्यात में तेज़ी और प्रोत्साहन पैकेज़ों के प्रभाव को देखते हुए एशियाई विकास बैंक (एडीबी) ने वर्ष 2010 में एशियाई क्षेत्र की आर्थिक वृद्धिदर के अपने अनुमान को बढ़ाकर 7.9 प्रतिशत कर दिया है। एडीबी ने वर्ष 2010 के लिए भारत की 8.2 प्रतिशत की वृद्धिदर के अनुमान को बरकरार रखा है। इससे पहले अंतरराष्ट्रीय मुद्राकोष (आईएमएफ) भी एशिया और भारत की वृद्धिदर के अपने अनुमान में संशोधन कर चुका है।

बैंक ने एशियाई अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धिदर का अनुमान 7.5 प्रतिशत से बढ़ाकर 7.9 प्रतिशत करते हुए कहा कि निर्यात में तेज़ी निजी मांग बढ़ने और प्रोत्साहन नीतियों के प्रभाव से पहली तिमाही में अनुमान से बेहतर परिणाम सामने आए हैं। इसलिए हमने एशियाई अर्थव्यवस्था के लिए वृद्धिदर का अनुमान बढ़ा दिया है। एडीबी ने भारत के लिए 8.2 और चीन के लिए 9.6 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धिदर का अनुमान जस-का-तस रखा है। वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने पिछले दिनों को कहा था कि वह चालू वित्त वर्ष के लिए क़रीब 8.2 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धिदर के अनुमान पर कायम हैं।

पूर्व एशियाई देशों की अर्थव्यवस्था में जबरदस्त तेज़ी का रुख बना हुआ है। एडीबी ने इस तेज़ी पर सतर्क रुख़ अपनाते हुए कहा है कि अभी यह कहना जल्दबाजी होगी कि सबसे बुरा दौर ख़त्म हो गया है। एडीबी के क्षेत्रीय आर्थिक एकीकरण कार्यालय के श्रीनिवास मधुर ने एशिया आर्थिक रिपोर्ट (एईएम) जारी करते हुए कहा कि हालांकि जयादातर उभरती पूर्वी एशियाई अर्थव्यवस्था में इस साल तेज़ी का रुख बना है, फिर भी यह कहना जल्दबाजी होगी कि यह तेज़ी विजय की सूचक है। एईएम में वर्ष 2010 के लिए पूर्वी एशियाई क्षेत्र की वृद्धिदर का अनुमान 7.7 प्रतिशत से बढ़ाकर 8.1 प्रतिशत कर दिया गया है। इस क्षेत्र में 14 देश शामिल हैं। एडीबी ने वर्ष 2011 के लिए इस क्षेत्र की 7.2 प्रतिशत की आर्थिक वृद्धिदर का अनुमान व्यक्त किया है। ❑

बढ़ती महंगाई पर अंकुश के प्रयास

● ओ. पी. शर्मा

भारत की अर्थव्यवस्था वैश्विक मंदी से अभी पूरी तरह उबर भी नहीं पाई थी कि उफ़ान लेती महंगाई ने अर्थव्यवस्था को घेर लिया। मई 2010 में थोक मूल्य सूचकांक आधारित मासिक मुद्रास्फीति दहाई अंक को पार कर 10.2 प्रतिशत के स्तर पर पहुंच गई। इससे भी अधिक चिंता खाद्य वस्तुओं की मुद्रास्फीति 12 जून, 2010 को 16.9 प्रतिशत को छू लेने से है। केंद्र सरकार ने 25 जून, 2010 को पेट्रोल की क़ीमतें सरकारी नियंत्रण से मुक़्त कर दी। इससे पेट्रोल, डीजल, केरोसीन और रसोई गैस महंगा हो गया है। केंद्र सरकार के इस निर्णय से महंगाई के और अधिक बढ़ने की संभावना व्यक्त की जा रही है। डीज़ल की क़ीमतें भी सरकारी नियंत्रण से मुक़्त करने की केंद्र सरकार की योजना है। केंद्र सरकार ने यह बड़ा क़दम सार्वजनिक क्षेत्र की तेल कंपनियों के भारी घाटे को कम करने के लिए उठाया है। प्रधानमंत्री डॉ. मनमोहन सिंह के अनुसार पेट्रोल की क़ीमतों को नियंत्रण मुक़्त करने जैसा सुधारवादी क़दम आज की ज़रूरत है। आर्थिक आंकड़ों के मुख्य अधिकारी प्रणव सेन की राय में पेट्रोलियम पदार्थों की क़ीमत में वृद्धि से मुद्रास्फीति भड़क सकती है और उसे क़ाबू में करने के लिए भारतीय रिज़र्व बैंक को जल्दी ही कड़े उपाय करने पड़ सकते हैं। इधर रिज़र्व बैंक बढ़ती महंगाई को लेकर सचेत हो गया है। पेट्रोलियम पदार्थों की बढ़ी हुई क़ीमतें महंगाई पर असर डालती उससे पहले ही रिज़र्व बैंक ने 2 जुलाई, 2010 को रेपो दर और रिवर्स रेपो दर में 0.25 प्रतिशत की वृद्धि कर दी और इसे लागू भी कर दिया। इस वृद्धि के साथ अब रेपो दर 5.25 प्रतिशत से बढ़कर 5.50 प्रतिशत तथा रिवर्स रेपो दर 3.75 प्रतिशत से बढ़कर 4 प्रतिशत हो गई है। इससे पूर्व भी भारतीय रिज़र्व बैंक ने बढ़ती महंगाई पर अकुंश के लिए मौद्रिक और ऋण नीति में परिवर्तन किए थे।

ज्वलंत आर्थिक मुद्दों के समाधान में भारतीय रिज़र्व बैंक ने महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है। भारत में वैश्विक मंदी का सामना करने में रिज़र्व बैंक का योगदान उल्लेखनीय रहा। सबसे महत्वपूर्ण बात यह है कि आम लोगों का भारत के बैंकों में विश्वास बना हुआ है। वर्तमान में रिज़र्व बैंक महंगाई पर क़ाबू पाने के लिए प्रयत्नशील है। भारतीय रिज़र्व बैंक ने बढ़ रही महंगाई पर क़ाबू पाने के लिए वित्त वर्ष 2010-11 के लिए 20 अप्रैल, 2010 को घोषित नयी मौद्रिक और ऋण नीति में नक़द आरक्षी अनुपात (सीआरआर), रेपो दर तथा रिवर्स रेपो दर में 0.25 आधार अंकों की वृद्धि की थी। इससे सीआरआर 5.75 प्रतिशत से बढ़कर 6 प्रतिशत, रेपो दर 5 प्रतिशत से बढ़कर 5.25 प्रतिशत तथा रिवर्स रेपो दर 3.50 प्रतिशत से बढ़कर 3.75 प्रतिशत हो गई थी। इसके अलावा रिज़र्व बैंक ने सूक्ष्म, मध्यम और मझोले उद्योगों को बिना रेहन के दी जाने वाली ऋण सीमा 5 लाख से बढ़ाकर दस लाख रुपये कर दी। इस अवसर पर वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने कहा कि यह तटस्थ नीतिगत दरों की ओर लौटने का समय है। अर्थव्यवस्था के स्थिर और पटरी पर होने के लिए यही दरें रहनी चाहिए। महंगाई धीरे-धीरे और नीचे आएगी। रिज़र्व बैंक के गवर्नर डी. सुब्बाराव के अनुसार नयी मौद्रिक और ऋण नीति से महंगाई को क़ाबू करने और 8 प्रतिशत से अधिक विकास दर का लक्ष्य अर्जित करने में मदद मिलेगी। अक्तूबर 2008 से भारतीय अर्थव्यवस्था के वैश्विक मंदी की चपेट में आ जाने के कारण रिज़र्व बैंक ने उदार मौद्रिक और ऋण नीति को मंदी से निपटने के प्रमुख हथियार के रूप में इस्तेमाल किया। सीआरआर और रेपो दर में निरंतर कमी की गई। वैश्विक मंदी के बादल वर्ष 2009-10 में छंटने के बाद, किंतु महंगाई के फिर से उफ़न जाने के कारण रिज़र्व बैंक ने उदार मौद्रिक नीति से क़दम पीछे ख़ींच लिए।

भारत में महंगाई चर्चित मुद्दा बनी हुई है। खाद्य पदार्थों की क़ीमतें आसमान को छू रही हैं। ईंधन की क़ीमतों में वृद्धि तथा खाद्यान्न क़ीमतों में भारी वृद्धि महंगाई में उछाल का कारण है। इसके अलावा बढ़ते राजकोषीय घाटे ने आग में घी का काम किया। आम उपभोग की वस्तुओं के दाम अधिक बढ़ जाने से न केवल ग़रीब लोगों का अपितु मध्यमवर्गीय परिवारों तक का रसोई ख़र्च बढ़ जाने के कारण पारिवारिक बज़ट बिगड़ गया है। इस महंगाई की सबसे अधिक मार ग़रीब तबक़ों पर पड़ी है। उनके लिए दो जून की रोटी जुटाना मुश्किल हो गया है। हालांकि केंद्र सरकार ने महंगाई को रोकने में कोई क़सर नहीं छोड़ी है। केंद्र सरकार ने महंगाई को थामने के लिए लगभग सभी मौद्रिक और राजकोषीय क़दम उठा लिए हैं। बावजूद इसके महंगाई कम होने का नाम नहीं ले रही है। बढ़ती महंगाई के पीछे के कारणों में

क़ालाबाज़ारी और ज़माख़ोरी का हाथ होने की संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। अब अर्थव्यवस्था के अधिक उदारीकृत हो जाने से देश के आर्थिक घटकों पर वैश्विक घटकों का प्रभाव पड़ने लगा है। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में ख़निज तेल की क़ीमतें जुलाई 2008 के पहले सप्ताह में 146 डॉलर प्रतिबैरल को छू गई थी। भारत ख़निज और खाद्य दोनों तेलों का बड़ा आयातक देश है।

महंगाई के चलते सकल घरेलू उत्पाद वृद्धि का लक्ष्य अर्जित करना मुश्किल होगा। बढ़ती महंगाई ने लोगों के बैंकों में ज़मा धन को लीलना शुरू कर दिया है। बैंकों में सावधि जमा ब्याज दर लगभग आठ प्रतिशत है। पोस्ट ऑफिस में तो यह और भी कम है। ऐसे में महंगाई के दहाई अंक पार कर जाने से जमा धन का वास्तविक मूल्य दो से तीन प्रतिशत घट गया है। ऊंची महंगाई दर के चलते बैंकों के लिए ब्याज़ दर बढ़ाना ज़रूरी हो गया है। मंहगाई का औद्योगिक उत्पादन और विदेशी व्यापार पर भी बुरा असर पड़ेगा।

ऐसी बात नहीं कि महंगाई केवल भारत में ही बढ़ रही है। आज अनेक देश महंगाई की चपेट में हैं। महंगाई के शिकार विकासशील देशों समेत विकसित देश भी हैं। अमरीका में महंगाई 17 वर्षों के सबसे ऊंचे स्तर पर है। हाल ही में चीन ने तेल कंपनियों के घाटे को कम करने के लिए ईंधन के दामों में भारी वृद्धि की है। अब महंगाई की चिंगारी भभक उठी है। जिंबाब्वे की अर्थव्यवस्था भी महंगाई से पीड़ित है। पाकिस्तान में भी महंगाई बहुत ऊपर है।

अब देखना यह है कि केंद्र सरकार तेज़ी से बढ़ती इस महंगाई को कैसे नियंत्रित करती है। इस दिशा में रिज़र्व बैंक मौद्रिक नियंत्रण के क़दम पुनः उठा सकता है। कुछ आवश्यक वस्तुओं के निर्यात और वायदा क़ारोबार पर भी रोक लग सकती है। पूर्व में केंद्र सरकार ने बढ़ती महंगाई को नियंत्रित करने के लिए महत्वपूर्ण क़दम उठाए हैं। इनमें खाद्य तेलों से आयात शुल्क समाप्त करना, सीमेंट और प्राथमिक इस्पात के निर्यात पर रोक, ग़ैर बासमती चावल के निर्यात पर रोक, दस लाख टन तेल और पंद्रह लाख टन दालों के आयात का निर्णय आदि मुख्य हैं। खाद्यान्न की बढ़ती क़ीमतों को दृष्टिगत रखकर गेहूं की सरकारी खरीद 1.50 करोड़ टन लक्ष्य के मुक़ाबले 18 मई, 2008 को दो करोड़ टन तक पहुंच चुकी जो लक्ष्य से 33 प्रतिशत अधिक थी। इन सारे प्रयासों के बावजूद बढ़ती महंगाई नहीं थमी तो केंद्र सरकार ने 7 मई, 2008 को सोया तेल, रबर, आलू और चना के वायदा क़ारोबार पर चार माह के लिए रोक लगा दी। ज़ाहिर है केंद्र सरकार ने महंगाई को रोकने के लिए कई तीर छोड़े मगर वे सब लक्ष्य भेदने में सफ़ल नहीं हो सके।

वर्तमान में महंगाई का ठीकरा जिन आर्थिक घटकों के सिर फोड़ा जा रहा है, उनमें अधिक वैश्विक महंगाई दर, खाद्यान्न की बढ़ी क़ीमतें, ख़निज तेल की बढ़ती क़ीमतें, खाद्यान्न का जैव ईंधन में उपयोग आदि प्रमुख हैं। बढ़ी हुई महंगाई के पीछे इन कारणों को नज़रअंदाज नहीं किया जा सकता। आज वैश्वीकरण के युग में सभी अर्थव्यवस्थाएं परस्पर संबद्ध हो गई हैं। ऐसे में एक देश की अर्थव्यवस्था पर अन्य देशों की आर्थिक स्थिति का प्रभाव पड़ना स्वाभाविक है। फिर भारत तो बड़ा देश है। यहां की अर्थव्यवस्था तेज़ी से बढ़ रही है। अनेक देशों से आर्थिक संबंध हैं ऐसे में वैश्विक घटनाओं का प्रभाव पड़ना ही है। हालांकि भारत वर्तमान में खाद्यान्न का आयात नहीं कर रहा है, किंतु खाद्य तेल, दालें और ख़निज तेल तो बड़ी मात्रा में आयात कर रहा है। अगर अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में इनकी क़ीमतें बढ़ती हैं तो उसका असर भारत में बढ़ती महंगाई के रूप में पड़ेगा। इनके अलावा दूसरे और कारण भी महंगाई की आग को हवा दे रहे हैं। महंगाई की तह में जाकर देखें तो इसके पीछे कई कारण उभरकर सामने आते हैं। इनमें बढ़ता हुआ सरकारी व्यय, घाटे का वित्त प्रबंधन, मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि, अधिक निवेश, बढ़ता कालाधन, जनसंख्या वृद्धि आदि मुख्य हैं। केंद्र सरकार ने महंगाई को रोकने के लिए हाल ही में जो क़दम उठाए हैं उनमें इन घटकों से संबंधित ठोस निर्णय नहीं है। यह भी एक बड़ा कारण है कि सरकार के लाख ज़तन के बावजूद महंगाई नहीं थमी।

केंद्र और राज्य सरकारों ने बढ़ते सरकारी व्यय को नियंत्रित करने के अधिक प्रयत्न नहीं किए। इसका परिणाम यह हुआ कि सरकारी व्यय उत्तरोत्तर बढ़ता गया। इसकी पूर्ति के लिए 'घाटे के बज़ट' को काम में लिया गया जिसका सीधा अर्थ मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि है। केंद्र सरकार घाटे के वित्त प्रबंधन के कारण महंगाई के लिए जिम्मेदार है और इस स्थिति के लिए राज्य सरकारें भी उत्तरदायी हैं जिन्होंने पिछले वर्षों में कमज़ोर वित्तीय अनुशासन और अधिक ओवरड्राफ्ट का प्रयोग कर महंगाई बढ़ाया।

मुद्रा आपूर्ति में वृद्धि का प्रभावी मांग पर प्रत्यक्ष प्रभाव पड़ा है इसके परिणामस्वरूप क़ीमत स्तर में वृद्धि हुई है। केंद्र सरकार ने सीआरआर को बढ़ाकर तरलता सोखने का क़दम तो उठाया, किंतु मुद्रा आपूर्ति को घटाने की पहल नहीं की। यही कारण है कि सीआरआर में वृद्धि के बावजूद महंगाई नहीं रुकी। फिर अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति अन्य तरीक़ों से भी बढ़ रही है। हाल के वर्षों में विदेशी प्रत्यक्ष निवेश और विदेशी संस्थागत निवेश में भारी वृद्धि हुई है। इस तरह के निवेशों के बढ़ने से अर्थव्यवस्था में प्रभावी मांग बढ़ी है जिससे महंगाई को हवा मिली। पिछले दशकों में महंगाई को बढ़ाने में बाह्य निवेश जैसे घटक नहीं हुआ करते थे। यहां उल्लेख करना समीचीन होगा कि सार्वजनिक निवेश भी महंगाई का कारक होता है। यह बात आर्थिक उदारीकरण से पूर्व के योजनाबद्ध विकास में ख़री उतरी है। मगर वर्तमान में सार्वजनिक निवेश कम हुआ है। बावजूद इसके महंगाई का बढ़ना आश्चर्यजनक है। इससे स्पष्ट होता है कि अर्थव्यवस्था में मुद्रा की आपूर्ति को बढ़ाने में अन्य घटक बड़ी भूमिका निभा रहे हैं। इसमें नकली मुद्रा और बढ़ते काले धन की समस्या से इंकार नहीं किया जा सकता है। आए दिन नकली नोटों की घटना सामने आने से इसकी पुष्टि हो जाती है।

देश में सदैव काले धन की समानांतर अर्थव्यवस्था है जो सरकार के प्रयास के बावजूद ख़त्म नहीं हो रही है। जब तक अर्थव्यवस्था में काला धन है तब तक आर्थिक नीतियों की सफलता संदिग्ध है। महंगाई में काला धन दिन दूनी रात चौगुनी गति से बढ़ता है। चिंताप्रद बात तो यह है कि देश में बहुत अधिक कालाधन उपलब्ध है। देश में कालेधन की अधिकता और इसके दोषपूर्ण प्रभाव के कारण स्फ़ीतिकारी प्रवृत्तियां मज़बूत हो गई हैं। अतः सरकार को कालेधन को ख़त्म करने के क़ारगर प्रयत्न करने चाहिए।

यहां यह प्रश्न उठना स्वाभाविक है कि क्या केंद्र सरकार मुद्रा आपूर्ति को कम करके महंगाई को बढ़ने से रोक सकती है? इसका ज़वाब है जब तक केंद्र सरकार बाह्य निवेश, कालेधन, नकली मुद्रा से बढ़ती प्रत्यक्ष और परोक्ष मुद्रा आपूर्ति को नियंत्रित नहीं करती तब तक सरकार घाटे के वित्त प्रबधंन को भी कम करके महंगाई नहीं रोक सकती है। आंकड़े बताते हैं आर्थिक उदारीकरण के बाद घाटे का वित्त प्रबंधन कम

हुआ है। इसके उदारीकरण के प्रारंभिक वर्षों में अच्छे परिणाम भी मिले हैं, किंतु अब देश की आर्थिक स्थिति बदल चुकी है। अब बज़ट घाटा कम होने के बावजूद महंगाई उफ़ान पर है। हालांकि पिछले दो वर्षों में (2009-10 और 2010-11) राजकोषीय घाटा अधिक बढ़ा है इसके पीछे का कारण मंदी से मुक़ाबले के लिए उठाए गए क़दम हैं।

वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में बढ़ती महंगाई को रोकने के लिए अन्य स्रोतों से बढ़ी मुद्रा आपूर्ति को सोख़ने के लिए अलग से 'प्रभेदक नक़द आरक्षित अनुपात' मददगार सिद्ध हो सकता है। जहां तक नकली मुद्रा और कालेधन को ख़त्म करने का सवाल है तो इसके लिए जिम्मेदारों के विरुद्ध कड़े कानून बनाकर उनके लिए कठोर सज़ा की व्यवस्था करना है। इनसे निपटना अकेले सरकार के बूते की बात नहीं, जनता को भी इसके उन्मूलन के लिए भूमिका निभाना होगा। इससे देश की अर्थव्यवस्था को बहुत बल मिलेगा।

वर्तमान में जनसंख्या को लेकर बहुत ज्यादा चर्चा नहीं हो रही है। जबकि पिछले दशकों में अधिक जनसंख्या को सारी समस्याओं की जड़ माना जाता था। भारत में जनसंख्या अब मानव संसाधन बन चुकी है। यहां का मध्यमवर्ग विकास की गति को बढ़ाने में बड़ी भूमिका निभा रहा है। चीन की तरह भारत में भी जनसंख्या अर्थव्यवस्था की ताक़त बन गई है। साथ ही इस सत्य को भी स्वीकारना होगा कि तेज़ी से बढ़ती जनसंख्या कई बार विकास में बाधक सिद्ध होती है। आज विशाल जनसंख्या और घटते उत्पादन के कारण मांग और पूर्ति के बीच अंतराल बढ़ गया है। हालांकि वर्तमान में खाद्यान्न का उत्पादन देश की ज़रूरत के हिसाब से पर्याप्त है। इसके अलावा खाद्यान्न का सुरक्षित भंडार भी है। मगर आंकड़ों पर नज़र डालने से खाद्यान्न उत्पादन में ठहराव की प्रवृत्ति दृष्टिगोचर होती है। आज खाद्यान्न को लेकर विश्व में संकट की स्थिति बनी हुई है। ऐसे में कृषि प्रधान देश भारत में खाद्यान्न उत्पादन में ठहराव चिंताप्रद है। भारत को भी आगामी वर्षों में खाद्यान्न की भारी आवश्यकता होगी। खाद्यान्न की भावी ज़रूरतों को पूरा करने की व्यूहरचना अभी से बना लेनी चाहिए। देश में दूसरी हरित क्रांति को अपनाने की महती आवश्यकता है। केंद्र सरकार प्रत्येक वर्ष खाद्यान्न का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाती है। इससे किसानों को लाभ तो मिलता है, किंतु खाद्यान्न के दाम बढ़ने से महंगाई बढ़ती है। खाद्यान्न क़ीमतों के बढ़ने का बुरा असर सीमांत कृषकों, खेतिहर किसान और कृषि श्रमिकों पर पड़ता है।

इसके अलावा सार्वजनिक क्षेत्र के उद्यम अपने उत्पाद और सेवाओं की क़ीमतें लगातार बढ़ाते रहते हैं। प्रशासित क़ीमतों की प्रत्येक वृद्धि स्फ़ीतिकारी शक्तियों को प्रचंड करती है। अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में ख़निज तेल की क़ीमतों के 5 जुलाई, 2008 को 145 डॉलर प्रतिबैरल से ऊपर तक पहुंच जाने के बावजूद सरकार ने पेट्रोल, रसोई गैस, केरोसीन, डीजल के भाव आनुपातिक गति से नहीं बढ़ाए थे। सरकार ने ऐसा महंगाई को बढ़ने से रोकने के लिए किया।

भारत में महंगाई को मापने के लिए प्रमुख रूप से थोक मूल्य सूचकांक को काम में लिया जाता है। इसमें आधार वर्ष और सम्मिलित वस्तुओं के भारांक की बड़ी भूमिका होती है। वर्तमान में आधार वर्ष 1993-94 और भारांक के लिए सम्मिलित वस्तुओं की संख्या 435 है। वर्तमान में थोक मूल्य सूचकांक को लेकर सवाल उठने लगे हैं। सूचकांक में शामिल कई वस्तुएं ऐसी हैं जो दैनिक उपभोग की दृष्टि से महत्वपूर्ण नहीं है। आज विश्व में भारत समेत एक-दो अन्य देश ही हैं जिन्होंने महंगाई को मापने के लिए थोक मूल्य सूचकांक को आधार माना है, जबकि महंगाई को मापने के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक ख़रा पैमाना है। इसी कारण सभी विकसित देश और चीन तक ने उपभोक्ता मूल्य सूचकांक को अपना रखा है।

भारत में थोक मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति की जानकारी अब मासिक आधार पर बताई जाती है। इसके अलावा औद्योगिक क़ामगारों के लिए उपभोक्ता मूल्य सूचकांक भी जारी किया जाता है। भारत में उपभोक्ता मूल्य सूचकांक यदा-क़दा ही नज़र आते हैं। इसका कारण उपभोक्ता मूल्य सूचकांक आधारित मुद्रास्फीति का अधिक होना भी हो सकता है। सरकार इनको जारी कर महंगाई के और अधिक बढ़ने का सिरदर्द मोल लेना नहीं चाहती है।

महंगाई आर्थिक विकास को प्रभावित करती है। हालांकि महंगाई और विकास के बीच संबंध की बात को निश्चित तौर पर नहीं कहा जा सकता है। महंगाई का प्रभाव किसी भी देश की आर्थिक स्थिति पर निर्भर करती है। ज़िम्बाब्वे की विकास दर बहुत कम है, किंतु वहां मुद्रास्फीति बहुत अधिक है। अमरीका में मुद्रास्फीति के तीन प्रतिशत से अधिक होने पर चिंता बढ़ जाती है। ज़ापान में मुद्रास्फीति बहुत कम है। भारत में वर्तमान आर्थिक परिस्थितियों में 5 प्रतिशत महंगाई स्वीकार्य है तथा यह दर विकास की गति को बढ़ाने में सहायक सिद्ध हो सकती है, किंतु मई 2010 में दहाई अंक से ऊपर हो चुकी महंगाई ने समस्याएं खड़ी कर दी है। अल्पकाल में एक सीमा तक बढ़ती महंगाई विकास की गति को बढ़ाने में सहायक होती है, किंतु दीर्घकाल में बढ़ती महंगाई आर्थिक विकास पर विपरीत प्रभाव डालती है।

भारत में तेज़ी से बढ़ती महंगाई विकास पर मार करेगी। कच्चे माल की क़ीमतों के बढ़ने से औद्योगिक उत्पादों की लागत बढ़ेगी। औद्योगिक उत्पादों के महंगा होने से निर्यात घटेगा। महंगाई के बढ़ने से बचत भी कम होगी, जिसका प्रभाव घटते औद्योगिक उत्पादन के रूप में नज़र आएगा, जो पहले से ही मार्च 2008 में पिछले छह वर्षों के न्यूनतम स्तर पर है। आर्थिक विकास की दर वर्ष 2008-09 और 2009-10 में घट चुकी है। इसके वर्ष 2010-11 में और घटने से रोकने के लिए महंगाई को नियंत्रित करना आवश्यक है।

जिन वस्तुओं की क़ीमतों में उछाल है उनकी आपूर्ति बढ़ाकर क़ीमतों को कम किया जा सकता है। देश में अभाव वाली वस्तुओं का आयात किया जा सकता है। वस्तुओं की क़ालाबाज़ारी को रोककर भी महंगाई को क़ाबू किया जा सकता है। इसके अलावा सार्वजनिक वितरण प्रणाली को मज़बूत किया जाना चाहिए। दोहरी मूल्य प्रणाली भी महंगाई को रोकने में सहायक होती है। सरकार प्रशासित क़ीमतों को नहीं बढ़ाए। इन सब प्रयत्नों के बावजूद महंगाई नहीं थमती है तो केंद्र सरकार के पास आख़िरी हथियार के रूप में औद्योगिक विकास और नियमन अधिनियम 1951 (आइआरडीए) है। इस अधिनियम की धारा 18जी में ऐसा प्रावधान है जिसके ज़रिये बाज़ार में ख़रीद और बिक्री की जा रही तमाम वस्तुओं और अनाज का मूल्य नियंत्रण सरकार के हाथों में आ जाएगा। इससे प्रत्येक माह के पहले दिन मूल्य निर्धारित होंगे। उन्हें दुकानदार पूरे माह प्रदर्शित करेगा। इसके अलावा मौजूद स्टॉक की जानकारी देगा। फ़िलहाल आइआरडीए 1951 की धारा 18जी को लागू करने का समय नहीं आया है। ❑

(लेखक राजकीय स्नातकोत्तर महाविद्यालय, सवाईमाधोपुर के आर्थिक प्रशासन तथा वित्तीय प्रबंध विभाग में व्याख्याता हैं।

ई-मेल : opsomdeep@yahoo.com)

मौद्रिक नीति और मुद्रास्फीति

● प्रतिमा ऋषि

महंगाई को लेकर जो चर्चाएं जारी थीं, उनमें पिछले दिनों नई जान आ गई है। इसमें कोई शक नहीं है कि बाते एक साल में महंगाई का ग्राफ ऊपर चढ़ा है। सरकार महंगाई पर लगाम लगाने के लिए क्या कर सकती है। सबसे पहले तो एक बेहतर प्रणाली की जरूरत है जो महंगाई का ठीक तरीके से लेखा जोखा रख सके।

फिलहाल थोक मूल्य सूचकांक मापने का जो तरीका इस्तेमाल किया जाता है वह दोषपूर्ण है और उस पर सवाल खड़े किए जाते रहे हैं। दूसरी बात यह कि जिस तरीके से थोक मूल्य सूचकांक और उपभोक्ता मूल्य सूचकांक मापा जाता है उससे वास्तविक महंगाई का पता नहीं चल पाता है। महंगाई के लिहाज से सबसे संवेदनशील उत्पाद खाद्य पदार्थ और ईंधन हैं। भारत सरकार ईंधन की कीमतों को लेकर ज्यादा कुछ नहीं कर सकती है। उसे डीजल और पेट्रोल की कीमतों को नियंत्रण मुक्त करना होगा क्योंकि भारत 80 फीसदी कच्चे तेल का आयात करता है। सरकार को तो केरोसिन की कीमतों को भी नियंत्रण मुक्त कर देना चाहिए। सरकार अब भी गैस पर सब्सिडी दे रही है जहां उसे आने वाले दिनों में घरेलू आपूर्ति बढ़ाने का आश्वासन मिला है।

विकसित देशों में, समय-समय पर जो मौद्रिक नीति उनके केंद्रीय बैंकों द्वारा घोषित की जाती है, उसका लक्ष्य मुद्रास्फीति की दर को निम्न स्तर पर बनाए रखना होता है। भारत और अन्य अनेक विकासशील अर्थव्यवस्थाओं में केंद्रीय बैंकों के दो लक्ष्य होते हैं- मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना और विकास को गति देना।

अत: भारतीय रिज़र्व बैंक को हमेशा संतुलन का काम करना होता है। तीन-तीन महीने पर होने वाली मौद्रिक नीति की समीक्षा में विकास की गति में कोई बाधा पहुंचाए बिना मुद्रास्फीति को नियंत्रित करना होता है। यदि ऐसी कोई असामान्य स्थिति सामने आती है, जिसमें नीतिगत कार्रवाई की आवश्यकता होती है तो निश्चय ही, केंद्रीय बैंक हस्तक्षेप कर सकता है।

वर्ष 2008 में उभर कर सामने आया विश्वव्यापी मुद्रा संकट देखते-देखते ऐसी अप्रत्याशित आर्थिक मंदी में बदल गया, जिसका अनुभव सन् 1928 की भीषण मंदी के बाद पहले कभी नहीं हुआ। इसके मद्देनज़र भारत सहित पूरे विश्व के केंद्रीय बैंकों को इस भयावह संकट से उबरने के लिए तेज़ी से मौद्रिक कार्रवाई करनी पड़ी।

बैंकिंग प्रणाली में आई नकदी की भीषण कमी और डूबने वाले कर्ज़ों की बढ़ती संख्या के कारण अनेक प्रमुख अंतरराष्ट्रीय बैंकों के लड़खड़ा जाने से प्रणाली में पैसा डालने के लिए नीतिगत कार्रवाई की ज़रूरत थी ताकि मांग में तेज़ी आए और अर्थव्यवस्था के स्वास्थ्य के लिए निर्णायक विकास की विपरीत गति को रोका जा सके।

मुद्रा की आपूर्ति और ब्याज़ दरों पर कठोर नियंत्रण करने के स्थान पर केंद्रीय बैंक ने सरल मौद्रिक नीति अपना कर बैंकिंग प्रणाली में धन लगाने और ब्याज़ दरों में कमी करने की नीति अपनाई। कुछ विकसित देशों में तो ब्याज दर लगभग शून्य तक पहुंच गई थी। ऐसा इसलिए किया गया ताकि नकारात्मक (ऋणात्मक) विकास की दिशा को पलट कर उसे फिर से सकारात्मक (धनात्मक) मोड़ दिया जा सके।

आरबीआई का रूढ़िवादी दृष्टिकोण

अन्य अनेक देशों के विपरीत भारतीय रिज़र्व बैंक का रवैया अपनी मौद्रिक नीति के प्रति अभी भी रूढ़िवादी बना हुआ है और सरकार रुपये की पूर्ण परिवर्तनशीलता के बारे में बहुत सतर्क है। भारत के इस दृष्टिकोण से भारी संकट को टालने में मदद मिली है और अंतरराष्ट्रीय आर्थिक मंदी से हम ज्यादा तेज़ी से उबर सके हैं तथा अर्थव्यवस्था वापस पटरी पर आ गई है। संकट के दौरान सरकार और रिज़र्व बैंक राजकोषीय और मौद्रिक प्रोत्साहन पैकेज़ लेकर सरकार का राजकोषीय घाटा बढ़कर सकल घरेलू उत्पाद (जीडीपी) का 6.7 प्रतिशत (2009-10) तक पहुंच गया। इसलिए अधिक ऋण लेना पड़ा।

रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति काफी उदार हो गई और प्रणाली में और अधिक नकदी डाली गई। नीतिगत दरों को नीचे लाया गया ताकि ब्याज दरों में कमी लाई जा सके और यह सुनिश्चित किया जा सके कि कर्ज़ लेने की लागत कम बनी रहे।

इस उद्देश्य के लिए केंद्रीय बैंक ने जो मौद्रिक साधन अपनाए, वे हैं नकद आरक्षी अनुपात (कैश रिज़र्व रेशियो-सीआरआर), धनराशि का प्रतिशत, जमा राशि का वह अंश जो बैंकों को केंद्रीय बैंक के पास रखना होता है और महत्वपूर्ण लघु अवधि नीतिगत दरें-रेपो और रिवर्स रेपो दरें (रेपो वह दर होती जिस पर बैंक रिज़र्व बैंक से रातभर के लिए अथवा लघु अवधि के लिए कर्ज़ लेते हैं। रिवर्स रेपो दर उस दर को कहते हैं जिस पर बैंक अपनी अति

शेष राशि केंद्रीय बैंक के पास जमा करते हैं)।

विदेशों से भारी मात्रा में आने वाली पूंजी तथा निवेश के लिए देश में बढ़ती मांग के कारण, वैश्विक संकट से पूर्व, बड़ी तादाद में ऋण उठाए जा रहे थे। केंद्रीय बैंक ने नकद आरक्षी अनुपात धीरे-धीरे बढ़ाते हुए 9 प्रतिशत तक पहुंचा दिया था ताकि बैंकिंग प्रणाली में पड़ी हुई अतिशेष नक़दी को सोख लिया जाए और अर्थव्यवस्था में आवश्यकता से अधिक गर्मी न आ सके, विशेषकर रियल एस्टेट क्षेत्र में, जहां बुलबुले उठने लगे थे अर्थात ख़तरा नज़र आने लगा था। इसी तरह, रिज़र्व बैंक ने कई चरणों में रेपो और रिवर्स रेपो दरों में वृद्धि की। रेपो दर तो बढ़ कर 6 प्रतिशत तक पहुंच गई थी। ऐसा इसलिए कि यह सुनिश्चित किया जा सके कि उधार देना बैंकों के लिए महंगे का सौदा न बन जाए।

वैश्विक संकट के दौरान सरल मौद्रिक नीति

जब वैश्विक मंदी शुरू हुई, केंद्रीय बैंक ने उदार मौद्रिक नीति अपनाना शुरू कर दिया। विभिन्न चरणों में लिए गए फ़ैसलों से और अधिक नक़दी उपलब्ध कराई गई तथा उधार की लागत को कम कर दिया गया। सीआरआर घटकर तीन प्रतिशत तक आ गया तथा रेपो दर क़रीब 4 प्रतिशत पर लाई गई। इससे बैंकिंग प्रणाली में 3 लाख करोड़ (30 खरब) रुपये से भी अधिक की राशि छोड़ी गई और विकास को बढ़ावा देने के लिए बाज़ार में पर्याप्त नक़दी उपलब्ध हो सकी।

अर्थव्यवस्था के वापस पटरी पर आने तथा मुद्रास्फीति में तेज़ी से हुई वृद्धि को देखते हुए पिछले कुछ महीनों से राजकोषीय प्रोत्साहन देने के लिए फूंक-फूंक कर क़दम उठाए जा रहे हैं। जनवरी में ही मौद्रिक संकुचन शुरू हो गया था ताकि बाज़ार में पड़ी अतिशेष नक़दी को धीरे-धीरे वापस ले लिया जाए, जिससे विकास की गति को अवरुद्ध किए बिना मुद्रास्फीति को क़ाबू में रखा जा सके। ऐसा करना इसलिए ज़रूरी था कि अर्थव्यवस्था अभी अधिक सुदृढ़ नहीं हो सकी है।

अर्थव्यवस्था में सुधार और मुद्रास्फीति में तेज़ी के साथ सरल नीति से निकासी की शुरुआत

मुद्रास्फीति में आ रही तेज़ी की समस्या से निपटने के लिए केंद्रीय बैंक ने 20 अप्रैल को घोषित 2010-11 की वार्षिक मौद्रिक नीति में कई नीतिगत दरों- रेपो और रिवर्स रेपो दरों में वृद्धि कर दी। ऐसा दो महीनों में दो बार किया गया। सीआरआर में भी बढ़ोतरी की गई ताकि बैंकिंग प्रणाली से अतिशेष नक़दी को खींचा जा सके। रेपो और रिवर्स रेपो दरों में 0.25 प्रतिशत और सीआरआर में भी 0.25 प्रतिशत की वृद्धि की गई है ताकि बैंकिंग प्रणाली से एक खरब 25 अरब रुपये निकाले जा सके। नीतिगत दरों में वृद्धि से ब्याज़ दरों में बढ़ोतरी का संकेत निहित है। रेपो दर अब 5.25 प्रतिशत होगी, जबकि रिवर्स रेपो दर 3.76 प्रतिशत रहेगी। अप्रैल 24 से प्रभावित होने वाली सीआरआर अब बढ़कर 6 प्रतिशत हो जाएगा। इससे पूर्व जनवरी में तिमाही समीक्षा में केंद्रीय बैंक ने सीआरआर में 0.75 प्रतिशत की वृद्धि कर 5.75 प्रतिशत कर दिया था ताकि बैंकिंग प्रणाली से 3 खरब 75 अरब रुपये की तरलता को सोखा जा सके।

नीति की घोषणा के बाद रिज़र्व बैंक के गवर्नर डॉ. डी. सुब्बाराव ने उचित ही कहा कि वे छोटे-छोटे क़दम उठाना अधिक पसंद करेंगे। अर्थव्यवस्था के लिए यही बेहतर है, क्योंकि नीतिगत दरों और सीआरआर में अधिक वृद्धि से मुद्रास्फ़ीति में तो कमी लाई जा सकती थी, परंतु इससे विकास पर नकारात्मक प्रभाव पड़ता, जबकि अब इसमें गति पकड़ने के लक्षण दिखाई दे रहे हैं।

मुद्रास्फ़ीति अभी भी चिंता का विषय

मुद्रास्फीति निश्चय ही चिंता का विषय है, क्योंकि खाद्य पदार्थों की महंगाई अब अन्य क्षेत्रों में फ़ैलती जा रही है। परंतु थोड़ी मात्रा में मुद्रास्फीति अर्थव्यवस्था के लिए अच्छी होती है क्योंकि इसका प्रभाव बहु-आयामी होता है और एक प्रकार से यह अर्थव्यवस्था को वापस पटरी पर लाने में मदद करती है। डॉ. सुब्बाराव ने कहा है कि "सामान्य स्थिति की बहाली के लिए अनेक प्रकार के छोटे-छोटे क़दम उठाना बेहतर होता है ताकि अर्थव्यवस्था की संकटपूर्व की स्थिति का विकास दर से तालमेल बिठाने में दिक्क़त न हो।" इन छोटे-छोटे क़दमों से बैंकों की ब्याज़ दरों (उधार देने की) पर तुरंत कोई प्रभाव नहीं पड़ेगा, क्योंकि उनके पास अभी भी पर्याप्त नक़दी उपलब्ध है। कर्ज़ के लिए मांग अब धीरे-धीरे बढ़ने लगी है। उनका अनुमान था कि वर्ष 2010-11 में मुद्रास्फीति 5.5 प्रतिशत के आस-पास रहेगी और इस वित्त वर्ष में विकास दर बढ़कर 8 प्रतिशत तक पहुंच जाएगी। उन्होंने कहा कि कर्ज़ की मांग में उठान के साथ-साथ सरकार के कर्ज़ लेने के व्यापक कार्यक्रम को देखते हुए सरल नीतिगत स्थिति से बाहर निकलने के लिए सोच-समझ कर धीरे-धीरे क़दम बढ़ाने होंगे। उन्होंने आशा व्यक्त की कि इस वर्ष ऋण की मांग में 20 प्रतिशत की वृद्धि होगी।

इस उपाय का समर्थन करते हुए वित्तमंत्री श्री प्रणब मुखर्जी ने इसे संतुलित और परिपक्व बताया और कहा कि ऋण पर मामूली सख़्ती और इस 'सौम्य' नीति से मुद्रास्फीति की बढ़ती प्रवृत्ति में कमी आएगी। उन्होंने रिज़र्व बैंक के इस आकलन से असहमति जताई कि मुद्रास्फीति इस वर्ष 5.5 प्रतिशत के लगभग रहेगी और कहा कि समीक्षा से पता चलता है कि मुद्रास्फीति में और भी कमी आने के संकेत हैं और यह 4 प्रतिशत के आस-पास रहेगी।

मुद्रास्फीति में और गिरावट की संभावना

रबी की फ़सल के बाज़ार में आने के साथ ही खाद्य पदार्थों की क़ीमतों में गिरावट आनी शुरू हो चुकी है। वित्तमंत्री ने कहा कि मुद्रास्फीति अपने चरम तक जा चुकी है और अब इसके नीचे आने का सिलसिला शुरू होने के संकेत दिखाई दे रहे हैं। मौसम के मोर्चे पर इस वर्ष कुछ अप्रिय घटने की संभावना नहीं दिखाई देती कि खाद्यान्न की क़ीमतें फिर ऊपर चढ़ सकें। श्री मुखर्जी ने कहा कि अर्थव्यवस्था में आ रहे सुधार और स्थिरता को देखते हुए मुझे ऐसा प्रतीत होता है कि यह 'सामान्य दौर' की वापसी की ओर इशारा है। उन्होंने भरोसा दिलाते हुए कहा कि चिंता की कोई बात नहीं है और कर्ज़ में कसावट लाने से विकास पर कोई असर नहीं पड़ेगा। टिकाऊ वस्तुओं के क्षेत्र का विकास विशेष रूप से प्रभावित रहेगा। वित्त मंत्री ने रिज़र्व बैंक के मौद्रिक उपायों पर अपने विचार व्यक्त करते हुए कहा कि औद्योगिक विकास और ऋण की मांग की हमारी समीक्षा से यह संकेत मिलता है कि विकास पर विपरीत प्रभाव पड़ने की कोई आशंका नहीं है। वास्तव में इन नीतियों से स्थायी विकास का मार्ग प्रशस्त होगा। ❑

(लेखिका स्वतंत्र पत्रकार हैं)

असंगठित क्षेत्र पर महंगाई का असर

महंगाई के कारणों एवं उसके निदान पर नये सिरे से विचार करने की ज़रूरत

● अवधेश कुमार

यह स्वीकारने में तो किसी को भी आपत्ति नहीं होगी कि महंगाई ने एक छोटे तबक़े को छोड़कर समाज के सभी वर्गों के सामने मुश्किलें पैदा कर दी है। वर्तमान अर्थशास्त्र ने इसके लिए एक शब्दावली दी है– मुद्रास्फीति। इस अर्थशास्त्र को विज्ञान मानने वाले आंकड़ों में मुद्रास्फीति को इस प्रकार मापते हैं जैसे रक्त दबाव या हृदय की धड़कनें मापी जा रही हों। हालांकि यह बिल्कुल साफ़ हो चुका है कि मुद्रास्फीति यानी महंगाई मापने का पैमाना, तौर-तरीक़ा दोषपूर्ण हैं और ज़्यादातर मुद्रास्फीति दर यानी महंगाई दर का आम बाज़ारों में सामग्रियों के मूल्यों से कोई रिश्ता नहीं होता। मसलन, पिछले वर्ष दिसंबर के पहले सप्ताह यानी 5 दिसंबर को समाप्त सप्ताह में मुद्रास्फीति 19.95 के रिकॉर्ड पर थी। क़ीमतें भी ऊंचाईं पर थीं। जून के अंतिम सप्ताह में महंगाई दर में गिरावट दर्ज़ हुई, पर बाज़ार इससे बेअसर था। हमने देखा कि पिछले साल महंगाई दर नकारात्मक अंक में पहुंच गया, पर बाज़ार में क़ीमतें आसमान पर ही बनी रहीं। नकारात्मक महंगाई दर सस्ताई दर नहीं है। ज़ाहिर है, इसके अनुसार सामान सस्ते होने की खामख्याली नहीं पाली चाहिए। इसका अर्थ है कि पिछले वर्ष के मुक़ाबले इस वर्ष वस्तुओं की क़ीमते निर्दिष्ट प्रतिशत कम बढ़ी। इसे सरकार की नीतियां बनाने वालों ने भी महसूस किया और ऐसे कई बयान आए जिनमें मुद्रास्फीति मापने के मानक, उनमें शामिल सामग्रियों की संख्या बढ़ाने, मुद्रास्फीति में उनके अंशदान संबंधी आधारबिंदुओं में परिवर्तन करने की बात शामिल हैं।

पता नहीं ऐसा कब होगा और उसके बाद भी मुद्रास्फीति दर आम बाज़ार में सामग्रियों के मूल्यों की जानकारी का सही पैमाना बन पाएगा या नहीं, कहा नहीं जा सकता। किंतु महंगाई ने सबसे ज्यादा जिस तबक़े को प्रभावित किया है, वह है असंगठित क्षेत्र। असंगठित क्षेत्र भी पश्चिमी अर्थशास्त्र द्वारा दी गई शब्दावली है। वस्तुत: ज्यादातर पश्चिमी देशों में रोज़गार के आधार पर समाज दो वर्गों में बंटा है, संगठित एवं असंगठित। संगठित क्षेत्र में सरकारी तथा स्थापित निज़ी उद्योग एवं व्यवसाय से प्राप्त रोज़गार हैं जिनमें निश्चित वेतन तथा भत्ते मिलते हैं तथा जीवन सुरक्षा भी। दूसरी ओर असंगठित क्षेत्र में अस्थायी दैनिक श्रम से लेकर रोज़गार के वे सभी पहलू शामिल हैं, जो संगठित क्षेत्र में नहीं आते। अपने देश में समाज एवं अर्थोपार्जन की परंपरागत रचना इससे काफ़ी भिन्न थी। लेकिन धीरे-धीरे अर्थरचना की उस प्रणाली को अपनाने के कारण हमारे देश में भी रोज़गार के संदर्भ में समाज धीरे-धीरे इस दो ख़ांचों में विभाजित हो रहा है। हालांकि अभी भी इन दो भागों में समाज का विभाजन समग्र भारत की तस्वीर पेश नहीं करता। थोड़े शब्दों में असंगठित क्षेत्र का मतलब वैसा क्षेत्र है जहां लोगों की आय अनिश्चित है। यानी हर दिन कुआं ख़ोदो और पानी पीयो, या कुएं से जो थोड़ा पानी निकला उसी का कुछ अंश सुरक्षित रख थोड़ा-थोड़ा तब तक ख़र्च करो जब तक आगे कुआं न खुद जाए और कभी वह भी नहीं बचे तो फिर बिना उसके रह जाओ। यह वर्ग कौन हो सकता है? ज़ाहिर है, इस आधार पर समाज का जो ग़रीब और वंचित तबका है वही असंगठित क्षेत्र में आएगा।

इस बात पर एक राय कठिन है कि असंगठित क्षेत्र के लोगों की संख्या कितनी होगी। एक सामान्य आकलन यह है कि भारत में इस समय भी उद्योगों एवं सेवाओं में जितने लोगों को रोज़गार मिला है उनमें 92-93 प्रतिशत ऐसे हैं जो दैनिक पारिश्रमिक पर काम करते हैं। उन्हें कोई सुरक्षा उपलब्ध नहीं है। छोटे किसानों, कृषक मज़दूरों, गांवों-शहरों में ख़ोमचे का व्यापार करने वाले, परंपरागत व्यवसाय से संबंधित छोटे स्वरोज़गार करने वालों को इसमें शामिल करना होगा। ऐसा करने के बाद कुल संख्या काफ़ी बड़ी हो जाएगी। वैसे सरकार द्वारा गठित अर्जुन सेन गुप्ता समिति ने मई 2006 में दी गई अपनी रिपोर्ट में असंगठित क्षेत्र में काम करने वालों की कुल संख्या 34 करोड़ तीन लाख के आसपास माना है। यह बात साफ़ है कि अगर आम आवश्यकताओं की चीज़ों या सेवाओं के दाम बढ़ेंगे तो इसकी मार सबसे ज्यादा इसी वर्ग पर पड़ेगी। इसे समझने के लिए न तो अर्थशास्त्र को ज्यादा समझने की आवश्यकता है और न बड़े-बड़े आंकड़ों में जाने की। योजना आयोग ने अपने पूर्व आकलन में माना था कि भारत में ग़रीबी रेखा से नीचे जीने वालों की संख्या 27.5 प्रतिशत है। लेकिन योजना आयोग की ही तेंदुलकर समिति ने न्यूनतम आवश्यकताओं की पूर्ति की क्षमता का अनुमान लगाते हुए ग़रीबों की संख्या 37.5 प्रतिशत बताई है। इस संख्या में पूरा असंगठित क्षेत्र नहीं आता है। क्योंकि न्यूनतम आवश्यकता से थोड़ा ऊपर की श्रेणी में भी ऐसे लोग हैं, जिनकी आय अनिश्चित हैं। जिन्हें जीवन सुरक्षा उपलब्ध नहीं और कुल मिलाकर जिनके लिए इस महंगाई में अपनी

आय के अंदर एक सामान्य मनुष्य के रूप में जीवनयापन करना कठिन है। असंगठित क्षेत्र के लिए सबसे पहली आवश्यकता पेट की भूख मिटाने की है। और अगर अन्न से लेकर फल, सब्ज़ियों के दाम इसी तरह बढ़ते रहे तो फिर यह वर्ग अपना पेट कैसे भरेगा? वैश्विक आंकड़ा कहता है कि भारत में 23 करोड़ से ज्यादा लोग ऐसे हैं जिन्हें उपयुक्त आहार नहीं मिलता। यह विश्व का 27 प्रतिशत है। विश्व के भूखों से संबंधित सूचकांक 'वर्ल्ड हंगर इंडेक्स' में शामिल 88 देशों में भारत का स्थान 66वां है।

प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह ने पिछले फरवरी में कृषि एवं उपभोक्ता मंत्रालय द्वारा आयोजित मुख्यमंत्रियों के सम्मेलन में खाद्यान्नों के बढ़ते मूल्यों से आम आदमी की बढ़ती कठिनाइयों पर चिंता प्रकट करते हुए कहा था कि अब बुरे दिन लद गए हैं। उन्होंने उम्मीद प्रकट की थी कि बेहतर पैदावार की संभावनाओं के कारण बाज़ार में पर्याप्त खाद्यान्न उपलब्ध होंगे और चूंकि सरकार किसानों को उनकी उपज़ का उचित मूल्य देगी जोकि अंतरराष्ट्रीय मूल्यों के समतुल्य होगा, इसलिए आगे आम आदमी के लिए हमारे पास सुरक्षित भंडार उपलब्ध रहेगा। उन्होंने अधिक-से-अधिक खुदरा मूल्य की दुकानें खोलकर ग़रीबों तक उचित मूल्य पर अनाज़ पहुंचाने का रास्ता सुझाया था। राज्य सरकारों ने ऐसा किया भी लेकिन आज भी अनाज़ के दाम रिकॉर्ड स्तर पर हैं। सरकार ने महंगाई की मार से ग़रीबी रेखा के नीचे की आबादी को बचाने के लिए खाद्यान्न सुरक्षा कानून के तहत 25 किलो चावल और गेहूं तीन रुपये प्रतिकिलो की दर से उपलब्ध कराने का क़दम उठाया है। इसका भी कुछ असर अवश्य हुआ है, किंतु स्वास्थ्य सेवाओं की पहुंच अभी भी इनसे दूर हैं। महंगाई का असंगठित क्षेत्र यानी समाज के ग़रीब तबक़े के जीवन के सभी पहलुओं पर कितना विपरीत असर हुआ है इसका वस्तुनिष्ठ अध्ययन कम हुआ है। अगर सिलसिलेवार अध्ययन किया जाए तो निश्चय ही सिहरन पैदा करने वाली तस्वीरें सामने आएंगी। आज यह आम बात है कि इस वर्ग की थाली से दाल गायब हो चुका है, सब्ज़ियों की मात्रा न्यूनतम हो चुकी है, अन्य पोषक तत्वों की तो बात ही छोड़िए। कल्पना करिए कि यदि देश की बड़ी आबादी को भरपेट अन्न नहीं मिलेगा, उन्हें आवश्यक पोषक तत्व ही उपलब्ध नहीं होगा तो वे कितना परिश्रम कर पाएंगे? ज़ाहिर है, असंगठित क्षेत्र पर महंगाई के दुष्प्रभाव का यह ऐसा पहलू है जिसे क़तई नज़रअंदाज़ नहीं करना चाहिए। आख़िर इस वर्ग के परिश्रम पर हमारे देश का भविष्य निर्भर है। आवश्यक भोजन के अभाव में शारीरिक श्रम करने की इनकी क्षमता में कमी आई है। अर्थशास्त्र की शब्दावली में हम इसे 'श्रम उत्पादकता ह्रास' कह सकते हैं। इन परिवारों की आने वाली पीढ़ियों के स्वास्थ्य की कल्पना कीजिए। भविष्य की दृष्टि से भी हमारे देश के लिए यह अत्यंत चिंताजनक स्थिति है।

जिन्हें हम संगठित क्षेत्र कहते हैं वहां के कर्मचारियों को तो सरकार या निज़ी क्षेत्र महंगाई भत्ता या अन्य प्रकार की वृद्धियों से लाभान्वित करती है परंतु इस वर्ग को अपने परिश्रम, सरकारी योजनाओं या अपने नियोजकों की दया पर ही निर्भर रहना पड़ता है। अब इस परिप्रेक्ष्य में इस वर्ग के लिए विशेष व्यवस्थाएं करना सरकार तथा नियोजकों का दायित्व है। इसी प्रकार शिक्षा का प्रश्न है। जिस तरह से शिक्षा महंगी हो चुकी है, उसमें इन परिवारों के बच्चों के लिए कहां स्थान है? आर्थिक उदारीकरण के पीछे एक सोच यह थी कि विकास की गाड़ी यदि तेज़ दौड़ेगी तो उसकी धौंक एवं आवाज़ असंगठित क्षेत्र तक पहुंचेगी। लेकिन यह बात साफ़ है कि इसका लाभ ग़रीबों तक नहीं पहुंचा है। 11वीं पंचवर्षीय योजना में समावेशी विकास पर सबसे ज्यादा ज़ोर रहा, पर ज़मीनी यथार्थ सबके सामने है। सरकार में एक वर्ग अभी भी यह उम्मीद प्रकट कर रहा है कि मुक्त अर्थव्यवस्था की टंकी से विकास की धारा अपने आप नलों के माध्यम से इनके घरों तक पहुंचेगी। हालांकि सरकार में ही दूसरे वर्ग भी हैं जो इनकी सामाजिक-आर्थिक स्थिति बेहतर करने एवं इनकी ख़रीद क्षमता बढ़ाने के लिए अन्य उपाय करने की बात कर रहे हैं।

समाज का एक तबका महंगाई से बेअसर सुख-शांति का जीवन जिए, हर प्रकार की सुविधाओं का लुफ़्त उठाए और वहीं एक बड़ा तबक़ा पेट पालने एवं तन ढंकने की चिंता में ही मरता रहे तो उस समाज का भविष्य क्या होगा? इससे जो असंतोष पैदा होता है, वह कई रूपों में प्रकट होता है, जिसमें से एक है– हिंसक विद्रोह। इस समय हमारे देश की सर्वप्रमुख चिंता माओवादी विद्रोह पर नियंत्रण करना है। यह बात सरकार भी मानती है कि इन ग़रीबों की कठिनाइयों को कम किए बगैर ऐसा संभव नहीं हो सकता। वर्तमान परिप्रेक्ष्य में हमें असंगठित क्षेत्र के लिए नये सिरे से विचार करना होगा। महंगाई और उसका प्रभाव अलग से समस्या नहीं है, बल्कि यह समग्र अर्थव्यवस्था की समस्या से उत्पन्न संकट है। हमें सबसे पहले अपनी आर्थिक सोच एवं नीतियों में व्यापक संशोधन करना चाहिए। क्या अर्थव्यवस्था का ऐसा ढांचा नहीं हो सकता जिसमें लोगों को अपनी दैनिक आवश्यकता की पूर्ति के लिए किसी दूसरे का मुंह न ताकना पड़े? यह नहीं भूलना चाहिए कि समस्या की जड़ हर चीज़ का नक़दी पर आधारित हो जाना है। भारतीय समाज में परंपरागत रूप से नक़दी की अत्यंत कम आवश्यकता वाली जो अर्थव्यवस्था थी उसे आज की परिस्थितियों में कैसे कितना अपनाया जा सकता है इस दिशा में विचार किया जाना चाहिए। हमें पश्चिमी समाज एवं भारतीय समाज के मूलभूत अंतर को समझना होगा। हर चीज़ या सेवा के लिए नक़दी आवश्यक नहीं है। महंगाई दर का निर्धारण उसके नक़दी मूल्यों के आधार पर होता है। इसके अलावा भारतीय खेती की विविधता एवं स्थानिक स्वावलंबिता को हर हाल में पुनर्स्थापित करने की आवश्यकता है। इससे ऐसी अनेक चीज़ें पैदा होंगी जिनसे पोषक तत्वों के लिए बाहर झांकने की आवश्यकता ही न रहे। नयी अर्थव्यवस्था ने जाने-अनजाने बाज़ार पूंजीवाद को किसानों के खेत एवं घरों तक पहुंचा दिया है, जिससे हमारी खेती भी अत्यधिक नक़दी आधारित हो गई है। बाहरी बीज एवं खादों पर निर्भरता बढ़ चुकी है। इस समय की महंगाई में साधारण किसानों के लिए खेती अलाभकर पेशा हो गया है एवं उनके सामने नक़दी के लिए खेती छोड़कर कहीं दूसरे क्षेत्र में श्रम करने की मज़बूरी आ गई है। यही स्थिति परंपरागत पेशेवरों एवं शिल्पकारों की है। जब परंपरागत अर्थरचना ध्वस्त हो रही है तो इनके लिए उसमें कहां गुंज़ाइश है। ऐसे में इन्हें भी अन्यत्र कार्य करने के लिए विवश होना पड़ रहा है। इससे महंगाई की मार कई गुना बढ़ जाती है। ऐसे और भी रास्ते सुझाए जा सकते हैं। वास्तव में जैसे ही हम इस दिशा में सोचना आरंभ करेंगे रास्ता अपने आप निकलता जाएगा। ❑

(लेखक पत्रकार एवं राजनीतिक विश्लेषक हैं।
ई-मेलः awadheshkum@gmail.com)

मुद्रास्फीति विशेषकर खाद्य मुद्रास्फीति पर अंकुश लगाने के लिए किए गए उपाय

भारतीय रिज़र्व बैंक द्वारा चालू वित्त वर्ष में किए गए मौद्रिक उपाय

(i) वर्ष 2009-10 को मौद्रिक नीति संबंधी दृष्टिकोण अन्य बातों के साथ-साथ मूल्य स्थिरता और वित्तीय स्थिरता के अनुरूप मौद्रिक और ब्याज दर प्रणाली बनाए रखना और विकास प्रक्रिया में सहायक बनना रहा है।

(ii) भारतीय रिज़र्व बैंक ने 27 अक्तूबर, 2009 को अपनी मौद्रिक नीति की दूसरी तिमाही की समीक्षा में एसएलआर में मामूली संशोधन किया और इसे 7 नवंबर, 2009 से शुरू पखवाड़े से पुन: निवल मांग और मियादी देनदारियों के 25 प्रतिशत पर बहाल कर दिया।

(iii) 29 जनवरी, 2010 को भारतीय रिज़र्व बैंक की मौद्रिक नीति की तीसरी तिमाही की समीक्षा में अनुसूचित बैंकों के आरक्षित नकदी अनुपात (सीआरआर) में दो चरणों में 75 आधार बिंदुओं की बढ़ोतरी करके उसे निवल मांग और मियादी देनदारियों के 5.0 प्रतिशत से बढ़कर 5.75 प्रतिशत किया गया; प्रथम चरण में 50 आधार बिंदुओं की बढ़ोतरी 13 फरवरी, 2010 से शुरू होने वाले पखवाड़े में प्रभावी होगी, उसके बाद दूसरा चरण 27 फरवरी, 2010 से शुरू होगा जिसमें 25 आधार बिंदुओं की बढ़ोतरी की जाएगी।

राजकोषीय उपाय

(i) चावल, गेहूं, दालों, खाद्य तेलों (कच्चे) और चीनी तथा मक्का के आयात शुल्क घटाकर शून्य करना (प्रति वर्ष 5 लाख टन के टीआरक्यू के अंतर्गत इससे अधिक पर 15 प्रतिशत का शुल्क प्रयोज्य होगा)।

(ii) परिष्कृत एवं हाइड्रोजनीकृत तेलों तथा वनस्पति तेलों के आयात शुल्क घटाकर 7.5 प्रतिशत करना।

(iii) चीनी मिलों को 1 अगस्त, 2009 तक ओजीएल के तहत शून्य शुल्क पर कच्ची चीनी आयात करने की अनुमति दी गई। (17 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित)। इसे अब 31 दिसंबर, 2010 तक बढ़ा दिया गया है।

(iv) एसटीसी/एमएमटीसी/पीईसी तथा नैफेड को 1 अगस्त, 2009 तक ओजीएल के तहत शून्य शुल्क पर दस लाख टन तक सफेद/परिष्कृत चीनी आयात करने की अनुमति दी गई (17 अप्रैल, 2009 को अधिसूचित)। इसे अब 31 मार्च, 2010 तक बढ़ा दिया गया है। इसके अतिरिक्त, ओजीएल के तहत सफेद/परिष्कृत चीनी का शुल्क मुक्त आयात मौजूदा नामोदिष्ट एजेंसियों के अलावा अन्य केंद्रीय/राज्य सरकार की एजेंसियों और निजी व्यापार के लिए खोल दिया गया है।

प्रशासनिक उपाय

(i) राज्यों को खुदरा उपभोक्ताओं को वितरित करने के लिए अक्तूबर, 2009 से मार्च 2010 की अवधि के लिए सामान्य पीडीएस आवंटन के अतिरिक्त 20 लाख टन गेहूं तथा 10 लाख टन चावल का आवंटन किया गया है।

(ii) 10 लाख टन गेहूं भारतीय खाद्य निगम द्वारा अक्तूबर 2009 से मार्च 2010 तक की अवधि के लिए ओएमएसएस के खुले बाज़ार में जारी करने के लिए आवंटित किया गया है।

(iii) ओएमएसएस(डी) के तहत राज्य सरकारों को गिए गए आवंटनों की दर पर राष्ट्रीय कृषि सहकारी विपणन महासंघ (नैफेड) को भी अपनी बिक्री केंद्रों के माध्यम से वितरण करने के लिए 37,400 मीट्रिक टन गेहूं और 15,500 मीट्रिक टन चावल आवंटित किया गया है।

(iv) ओएमएसएस(डी) के तहत राज्य सरकारों को किए गए आवंटनों की दर ही राष्ट्रीय उपभोक्ता सहकारी संघ (एनसीसीएफ) को भी अपने केंद्रों के माध्यम से वितरण करने के लिए 32,684 मीट्रिक टन गेहूं 11,000 मीट्रिक टन चावल आवंटित किया गया है।

(v) गैर-बासमती चावल, खाद्य तेलों और दालों (काबुली चना छोड़कर) के निर्यात पर प्रतिबंध लगाया गया है।

(vi) खाद्य तेलों के टैरिफ दर मूल्यों में कोई परिवर्तन नहीं किया गया है।

(vii) धान, चावल, दालों, चीनी, खाद्य तेलों तथा खाद्य तिलहनों के मामले में स्टॉक सीमा संबंधी आदेश 30 सितंबर, 2010 तक लागू किया गया; घरेलू उपयोग से इतर उपयोग करने वाले उपभोक्ता को चीनी की जमाखोरी से हतोत्साहित करने और वास्तविक उपभोक्ताओं के लिए खुले बाज़ार में चीनी की पर्याप्त उपलब्धता सुनिश्चित करने के लिए केंद्र सरकार ने बड़े उपभोक्ताओं पर भंडारण सीमा लागू करते हुए 22 अगस्त, 2009 को एक अधिसूचना जारी की।

(viii) प्याज (जनवरी 2010 में औसतन 500 डॉलर प्रतिटन) और बासमती चावल (900 डॉलर प्रति मी.टन) का निर्यात नियंत्रित करने के लिए न्यूनतम निर्यात मूल्य (एमईपी) को इस्तेमाल करना।

(ix) वायदा बाज़ार आयोग द्वारा वर्ष 2007-08 में चावल, उड़द और तूर में वायदा कारोबार स्थगित किया गया और यह सिलसिला 2009-10 के दौरान भी जारी रखा गया। चीनी में वायदा कारोबार 27 मई, 2009 से 31 दिसंबर, 2009 तक स्थगित किया गया था। इसे 20 सितंबर, 2010 तक बढ़ा दिया गया है।

(x) राज्यों/संघ राज्य क्षेत्रों को 15 रुपये प्रतिकिलो की सब्सिडी पर आयातित तेलों का वितरण।

(xi) दालों की उपलब्धता बढ़ाने के लिए सरकारी क्षेत्र के उपक्रमों (एसटीसी, एमएमटीसी, एमएमटीसी और पीईसी) तथा नैफेड को एक योजना के तहत दालें आयात करने और बेचने की अनुमति दी गई और यदि कोई हानि हो, तो सरकार द्वारा 15 प्रतिशत तक प्रतिपूर्ति की जाएगी।

(xii) राज्य सरकारों को 10 रुपये प्रति किलोग्राम की सब्सिडी पर सार्वजनिक वितरण प्रणाली के माध्यम से आयातित दालों का वितरण करना।

(xiii) चीनी कारखानों को घरेलू बाज़ार में संसाधित कच्ची चीनी और टन-दर-टन आधार पर निर्यात देनदारी पूरी करने की अनुमति दी गई।

(xiv) लेवी चीनी के रूप में मांगी गई चीनी के उत्पादन के अनुपात को 10 प्रतिशत से बढ़ाकर 2009-10 के चीनी मौसम के लिए 20 प्रतिशत किया गया ताकि पीडीएस के अंतर्गत पर्याप्त लेवी चीनी की आपूर्ति सुनिश्चित की जा सके।

(xv) वर्ष 2009-10 के चीनी मौसम के दौरान देश में 19.34 लाख टन कच्ची चीनी और 3.89 लाख टन सफेद/परिष्कृत चीनी की आवक हुई।

(xvi) न्यूनतम समर्थन मूल्य (एमएसपी) में सुव्यवस्थित तरीक़े से बढ़ोतरी की गई है जिसके परिणामस्वरूप क्षेत्रफल, उत्पादन, उत्पादकता और केंद्रीय अधिप्राप्ति में वृद्धि हुई है। वर्ष 2008-09 के विपणन मौसम के लिए गेहूं का न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाकर 1,080 रुपये प्रति क्विंटल किया गया था। वर्ष 2009-10 वे ख़रीफ विपणन मौसम के लिए धान की विभिन्न श्रेणियों के लिए न्यूनतम समर्थन मूल्य बढ़ाकर 950-980 रुपये प्रति क्विंटल किया गया है और सभी किस्मों के लिए प्रति क्विंटल 50 रुपये का बोनस दिया गया है। ❑

स्रोत : आर्थिक समीक्षा 2009-10

पृष्ठ 19 का शेषांश

की अनुमति नहीं है, हालांकि उनके प्रवेश से हमारे व्युत्पन्न जिंस बाज़ार (कमोडिटी डेरिवेटिव्स मार्केट) को वांछित गहराई, तरलता और लोकप्रियता मिल सकती है। भारत में यह बाज़ार अभी भी फारवर्ड कांट्रेक्ट्स (रेगुलेशन) ऐक्ट, 1952 के मार्गदर्शन में काम करता है। यह कानून युद्ध काल में अभावों की पृष्ठभूमि में बनाया गया था, जिसका आज की अर्थव्यवस्था की सच्चाइयों और मांगों से अब दूर-दूर का नाता नहीं रहा है। भारत की आर्थिक व्यवस्था के उदारीकरण का घोषित उद्देश्य उदार नीति का वातावरण तैयार करना है। इस माहौल में एक शक्तिशाली विनियामक की निगरानी में कमोडिटी डेरिवेटिव्स, भारतीयों के लिए मुद्रास्फीति और मूल्यों में उतार-चढ़ाव के विरुद्ध प्रभावशाली हेजिंग विकल्प के रूप में उभर सकता है।

निष्कर्ष और दृष्टिकोण

अनेक पर्यवेक्षकों का मत है कि भारतीय अर्थव्यवस्था में पिछले कुछ महीनों से मुद्रास्फीति की जो स्थायी प्रवृत्ति बनती जा रही है, वह एक ऐसी विलक्षण स्थिति है जो लंबे समय तक बनी रहेगी। यह स्थिति तीव्र आर्थिक विकास, युवा जनसंख्या की बढ़ती आय, कृषि उत्पादन में ठहराव और मांग तथा आपूर्ति में बढ़ते अंतर के कारण पैदा हुई है। अतः यह ज़रूरी है कि मुद्रास्फीति के दबाव को कम करने के लिए दीर्घकालीन दूरदर्शी नीतियां अपनाई जाएं और अर्थव्यवस्था को वास्तविक क्षति पहुंचे, इसके पहले ही मूल्यवृद्धि के झटकों को निष्प्रभावी बना दिया जाए। मूल्य नियंत्रण और गुणात्मक प्रतिबंधों जैसी मौद्रिक प्रबंधन और राजकोषीय नीतियों से मुद्रास्फीति पर बस थोड़े समय के लिए ही नियंत्रण किया जा सकता है। नयी सोच वाली नीतिगत व्यवस्था में ऐसी संस्थाओं को सुदृढ़ बनाने वाली कार्यक्रमों को अवश्य शामिल किया जाना चाहिए जो मूल्य के वास्तविक झटकों को सहने और प्रभावहीन बनाने में मदद कर सकें। व्युत्पन्न जिंसों का वायदा करोबार (एक्सचेंज ट्रेडेड कमोडिटी डेरिवेटिव्स) की संस्था इनमें प्रमुख है। वैश्वीकरण ने जो अवसर हमें प्रदान किया है, उसका लाभ उठाकर इस दिशा में कदम उठाने का यह सुनहरा अवसर है। ❑

(लेखकद्वय मुंबई स्थित मल्टी कमोडिटी एक्सचेंज ऑफ इंडिया के क्रमशः चीफ इकोनॉमिस्ट और इकोनॉमिस्ट हैं।

ई-मेल : shunmugamv@gmail.com, debjyoti.dey@mcsindia,com)

स्वतंत्रता दिवस पर विशेष

भारतीय संविधान के साठ वर्ष

● गरिमा मैहदीरत्ता

भारत को विदेशी शासन से राजनीतिक स्वतंत्रता तो 1947 में ही मिल गई थी, किंतु यह पूर्ण स्वायतशासी और सार्वभौमिक राज्य तब बना जब इसने अपना संविधान बनाया और 26 जनवरी, 1950 से लागू किया। आज भी कुछ लोग स्वतंत्रता और गणतंत्र को एक ही मानते हैं जबकि ऐसा नहीं है। स्वतंत्रता विदेशी राज्य से मुक्ति मात्र है जिसमें राज्य तो हमारा है किंतु कानून दूसरों के बनाए हुए हैं जबकि गणतंत्र का अर्थ सार्वभौमिकता है और हमारा राज्य हमारे ही बनाए हुए कानूनों से चलता है। संविधान के अंतर्गत देश अपने कानून स्वयं बना सकता है।

हमारे देश की शासन प्रणाली संसदीय है जो इंग्लैंड की संसदीय प्रणाली पर आधारित है। किंतु हमारे देश का प्रमुख राष्ट्रपति होता है जिसे प्रत्येक पांच साल बाद चुना जाता है। यह वंशानुगत नहीं है जैसाकि इंग्लैंड तथा यूरोप के अन्य देशों जैसे– नार्वे, डेनमार्क आदि में है।

इंग्लैंड में कोई संविधान नहीं है, इसलिए वहां संसद सर्वोच्च है जो आवश्यकता पड़ने पर नये कानून बनाती है या पुराने कानूनों में संशोधन करती है, जबकि हमारा संविधान एक निश्चित और स्पष्ट रूप में लिखित संविधान है। लिखित होने के कारण संविधान सर्वोच्च माना गया है, संसद नहीं।

एक अन्य अंतर यह है कि इंग्लैंड में संसद द्वारा बनाए गए किसी भी कानून को न्यायालय में चुनौती नहीं दी जा सकती, न ही उसे विचार के लिए रखा जा सकता है। किंतु भारत में बनाए गए किसी भी कानून को, यहां तक कि संविधान के संशोधन को भी, उच्चतम न्यायालय में विचार के लिए रखा जा सकता है और संविधान की कसौटी पर खरा न उतरने की हालत में उसका पालन रोका जा सकता है या उसे निरस्त भी किया जा सकता है। इसलिए संसद को अपने सभी काम संविधान के दायरे में रह कर ही करने होते हैं और किसी भी नये कानून को संविधान की कसौटी पर परखा जाता है।

हमारा संविधान बहुत लचीला है। पिछले साठ वर्षों में इसमें 94 संशोधन किए जा चुके हैं। ये सभी संशोधन देश की जनता की भावनाओं को ध्यान में रख कर किए गए हैं। आवश्यकता पड़ने पर संसद द्वारा संविधान में संशोधन तो किए जा सकते हैं किंतु इसे निरस्त नहीं किया जा सकता, यदि संसद के दोनों सदनों के सभी सदस्य एक साथ मिल कर चाहें, तब भी।

भारत में शासन प्रणाली के तीन अंग हैं, विधायिका, कार्यपालिका और न्यायपालिका। अमरीका में ये तीनों अंग स्वतंत्र हैं किंतु भारत में कार्यपालिका विधायिका के अधीन है, केवल न्यायपालिका ही स्वतंत्र संगठन है।

भारत का संविधान बहुत सोच-समझ कर बनाया गया है। सन् 1946 में संविधान निर्माण सभा बनी जिसने स्वतंत्रता के बाद अपना काम शुरू किया। उस समय सच्चिदानंद सिन्हा इसके अध्यक्ष थे जिनकी मृत्यु के बाद डॉ. राजेंद्र प्रसाद इसके अध्यक्ष बने। 1 फरवरी, 1948 को संविधान का मसौदा प्रकाशित हुआ, 26 नवंबर, 1948 को संविधान अंतिम रूप से स्वीकृत हुआ और 26 जनवरी, 1950 से लागू हुआ। तब से यह देश गणतंत्र बन गया। हमारा संविधान विश्व में सबसे बड़ा संविधान है। इसमें एक प्रस्तावना, 22 भाग जिसमें 395 अनुच्छेद, 12 अनुसूचियां और तीन परिशिष्ट हैं।

ढांचा : संविधान के लागू होने के समय भारत 15 राज्यों का संघ था। समय-समय पर राज्यों का पुनर्गठन होता रहा और इस समय 28 राज्य और 5 केंद्रशासित प्रदेश हैं। इसी तरह 1950 में केवल 15 भाषाएं आठवीं सूची में थीं जिन्हें राज्य भाषा का दर्जा प्राप्त था। इस समय इस सूची में 25 भाषाएं हैं।

आठवीं अनुसूची में कोंकणी, मैथिली, नेपाली, संथाली, सिंधी और उर्दू भाषाएं जोड़ीं गईं।

संविधान में समाज के लिए आवश्यक सभी तत्वों का समावेश है जैसे– समानता, आर्थिक और राजनीतिक न्याय, धार्मिक स्वतंत्रता। संविधान को ऐसा बनाया गया है कि यह सभी तत्व विभिन्न समयों पर विभिन्न अर्थ निकालते हैं और देश को दिशानिर्देश देते हैं। किसी भी बात का अर्थ समझने के लिए संविधान से बाहर जाने की आवश्यकता नहीं है, इसलिए यह संविधान आने वाली पीढ़ियों का कई सदियों तक मार्गदर्शन करता रहेगा।

अधिकारों का विभाजन

संघ सरकार को सातवीं अनुसूची की पहली सूची (संघ सूची) में वर्णित सभी विषयों पर कानून बनाने का एकाधिकार प्राप्त है। दूसरी सूची (राज्य सूची) में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार केवल राज्यों को है, संघ सरकार को नहीं। तीसरी सूची (समवर्ती सूची) में वर्णित विषयों पर कानून बनाने का अधिकार संघ सरकार और राज्य, दोनों को प्राप्त है। (अनुच्छेद 246)।

अवशिष्ट शक्तियां : जिन विषयों का वर्णन समवर्ती सूची या राज्य सूची में नहीं है, उन पर कानून बनाने का अधिकार केवल संघ सरकार को प्राप्त है।

मूल अधिकार

संविधान के भाग 2 में अनुच्छेद 12 से 35 के अधीन नागरिकों को सात मूल अधिकार प्रदान किए गए हैं। ये अधिकार हैं : 1. समानता का अधिकार, 2. स्वाधीनता का अधिकार, 3. शोषण से रक्षा का अधिकार, 4. धर्म की स्वतंत्रता का अधिकार, 5. सांस्कृतिक एवं शिक्षा संबंधी अधिकार, 6. संपत्ति का

अधिकार और 7. संवैधानिक उपचार का अधिकार अर्थात हर नागरिक को अपने मूल अधिकारों की रक्षा के लिए सर्वोच्च या उच्च न्यायालय के समक्ष आवेदन करने का अधिकार है। इनमें से संपत्ति के अधिकार पर कुछ अंकुश हैं जिन्हें संविधान (पहले) संशोधन द्वारा लगाया गया था।

मौलिक अधिकार

संविधान के 16वें और 24वें संशोधन ने मूल अधिकारों के प्रयोग पर काफी बंधन लगा दिए हैं। ये अधिकार विशेषतया (स्वाधीनता का अधिकार और संपत्ति का अधिकार) पहले, चौथे और चौबीसवें संशोधनों द्वारा बिल्कुल नगण्य बना दिए गए हैं। राज्य को अधिकार दे दिया गया है कि वह नागरिकों के इन दोनों अधिकारों के प्रयोग पर वाजिब रोक लगा सके।

राज्य के नीति निर्देशक तत्व : ये संविधान के भाग 4 के अनुच्छेद 36 से 51 में दिए गए हैं। इनमें प्रमुख रूप से 22 लक्ष्यों का वर्णन है, जिनके अधीन बहुत से विषय आते हैं। राज्य इन्हें पूरा करने का प्रयत्न करेगा। इनको मूल अधिकारों की भांति न्यायालय की सहायता से लागू नहीं कराया जा सकता, फिर भी इन्हें देश के शासन में आधारभूत घोषित किया गया है।

नीति निर्देशक सिद्धांत मुख्य रूप से ये हैं :

- लोक कल्याण के हितार्थ सामाजिक व्यवस्था या सामाजिक न्याय की प्राप्ति।
- नागरिकों को पर्याप्त उपार्जन का अधिकार।
- समाज के भौतिक संसाधनों के आधिपत्य और नियंत्रण का संवितरण सर्व साधारण के हित में होगा।
- अर्थव्यवस्था का संचालन इस रूप में नहीं किया जाएगा कि उससे पूंजी और उत्पादन के साधनों के केंद्रीकरण के कारण सार्वजनिक अहित हो।
- पुरुषों व महिलाओं को समान कार्य के लिए समान वेतन।
- पुरुष और महिला श्रमिकों व अल्प वयस्क बालकों के स्वास्थ्य एवं शक्ति का दुरुपयोग न हो और ऐसा न हो कि नागरिकों को आर्थिक आवश्यकता के कारण उपार्जनार्थ अपने आयु व शक्ति के लिए अनुपयुक्त कार्यों को स्वीकार करना पड़े।
- बालकों को एक स्वस्थ रीति से तथा स्वतंत्रता व गरिमामय स्थितियों में विकसित होने के अवसर और सुविधाएं उपलब्ध हों और शैशवावस्था व युवावस्था का शोषण तथा नैतिक व भौतिक आत्मसमर्पण से रक्षा हो।
- न्यायिक प्रणाली का संचालन इस रीति से हो जिससे समान अवसर के आधार पर न्याय मिल सके और किसी भी नागरिक को आर्थिक अथवा विपन्नताओं के कारण न्याय के अवसर से वंचित न होना पड़े, इस बात को सुनिश्चित करने के लिए कानून या अन्य रीतियों से मुक्त विधिक सहायता देने की व्यवस्था हो।
- गांवों में ग्राम पंचायतों की स्थापना।
- काम, शिक्षा व बेकारी, बुढ़ापा, बीमारी आदि के प्रकरणों में सार्वजनिक सहायता का अधिकार।
- कार्य की स्थितियां न्यायपूर्ण व मानवोचित हों और महिलाओं को प्रसूति में राहत मिले।
- समस्त श्रमिकों को चाहे वे खेती में लगे हों या उद्योग में या अन्यत्र, भरण-पोषण लायक वेतन, शिष्ट जीवनस्तर और अवकाश का उपभोग करने वाली कार्य स्थितियां व सामाजिक व सांस्कृतिक अवसर प्रदान करने तथा गांवों में कुटीर उद्योग को प्रोत्साहित करने का राज्य प्रयास करेगा।
- उद्योगों के प्रबंधन में श्रमिकों की भागीदारी।
- समस्त नागरिकों के लिए एक समान नागरिक संहिता की व्यवस्था का प्रयास।
- 14 वर्ष तक की आयु के बालकों के लिए अनिवार्य शिक्षा।
- राज्य दुर्बल वर्गों, विशेषकर अनुसूचित जातियों व अनुसूचित जनजातियों के शैक्षणिक व आर्थिक उत्थान के साथ उनका सामाजिक अन्याय तथा सभी प्रकार के शोषणों से बचाव के उपाय करेगा।
- पोषाहार के स्तर, जीवनस्तर और लोक स्वास्थ्य में सुधार का राज्य प्रयत्न करेगा, मद्यनिषेध लागू करेगा व नशीली दवाओं व पेय पदार्थों के सेवन पर प्रतिबंध लगाएगा।
- कृषि व पशु पालन की आधुनिक प्रणालियों पर संगठन।
- पर्यावरण की रक्षा और सुधार तथा वन्य जीवों की रक्षा।
- राष्ट्रीय स्मारकों व राष्ट्रीय महत्व की वस्तुओं की रक्षा।
- कार्यपालिका का न्यायपालिका से पृथक्करण।
- अंतरराष्ट्रीय शांति व सुरक्षा।

नागरिकों के मूल कर्तव्य

42वें संविधान संशोधन अधिनियम, 1976 द्वारा मूल कर्तव्य का एक नया भाग चतुर्थ-क संविधान में जोड़ा गया। इसके अनुसार भारतीय नागरिकों के मूल कर्तव्य निम्न हैं :

- संविधान के प्रति निष्ठा और इसके आदर्शों का सम्मान, राष्ट्रीय ध्वज एवं राष्ट्रीय नीति के प्रति सम्मान।
- उत्कृष्ट विचारों का पालन एवं पोषण करना।
- भारत की संप्रभुता, एकता और अखंडता को बनाए रखना।
- राष्ट्र की सुरक्षा व आवश्यकता पड़ने पर राष्ट्र की सेवा के लिए तैयार रहना।
- समस्त भारतीयों में भाईचारा एवं स्नेह को बढ़ावा देना और महिलाओं की गरिमा को बनाए रखना।
- अनेकता में एकता की सूचक हमारी मिली-जुली संस्कृति को संरक्षण देना।
- प्राकृतिक पर्यावरण जिसमें वन, झीलें, नदियां और वन्य जीवन शामिल हैं, को संरक्षण एवं बढ़ावा देना। जीवित प्राणियों के प्रति करुणा रखना।
- वैज्ञानिक सोच, मानवता और जानने एवं सुधार की चेतना का विकास करना।
- सार्वजनिक संपत्ति की रक्षा करना और हिंसा का त्याग करना।
- व्यष्टिगत तथा सामूहिक कार्यों में उत्कृष्टता लाने का प्रयास करना जिससे राष्ट्र निरंतर उन्नति एवं सफलता की ओर बढ़ता रहे।

महत्वपूर्ण संशोधन

देश की जनता की आकांक्षाओं को पूरा करने और सुचारू रूप से शासन करने के लिए संविधान में समय-समय पर संशोधन होते रहे हैं। संविधान में पहला संशोधन 1951 में ही हो गया था जिसके द्वारा नौवीं अनुसूची (अनुच्छेद 31(ख) के अधीन संविधान अधिनियम द्वारा जोड़ी गई थी। इसमें भूमि, पट्टा, मालगुजारी, रेलवे, उद्योगों आदि के बारे में राज्य सरकारों और संघ सरकार द्वारा पारित किए गए अधिनियम और आदेश हैं, जो न्यायालयों के क्षेत्राधिकार से बाहर हैं।

तत्संबंधी अनुच्छेद 31 में इस प्रकार व्यवस्था है - "नौवीं अनुसूची में उल्लिखित कोई भी अधिनियम और विनियम और उनका कोई भी प्रावधान इस आधार पर न प्रभावशून्य माना जाएगा और न कभी प्रभावशून्य होगा कि वह अधिनियम, विनियम या प्रावधान इस भाग द्वारा प्रदत्त किसी अधिकार को छीनता है, या उसे कम कर देता है और किसी न्यायालय या न्यायाधिकरण के किसी प्रतिकूल फ़ैसले, आज्ञप्ति

या आदेश के होते हुए भी ऐसा प्रत्येक अधिनियम और विनियम लागू रहेगा - केवल सक्षम विधानमंडल को ही इसमें संशोधन करने का अधिकार होगा।"

दसवीं अनुसूची (अनुच्छेद 101, 102, 191 और 192 के अधीन) 1985 में संविधान (52वें संशोधन) अधिनियम द्वारा जोड़ी गई थी। इसमें दल-बदल करने पर रोक का प्रावधान है। यह एक महत्वपूर्ण संशोधन है जिसके द्वारा किसी भी संसद या राज्य विधान सभा के सदस्य द्वारा दबाव में आकर या लालच में पड़ कर दल बदलने पर उसकी सदस्यता समाप्त करने का प्रावधान है।

ग्यारहवीं अनुसूची (अनुच्छेद 243जी के अधीन) 1992 में तेहत्तरवें संशोधन अधिनियम के अंतर्गत प्रत्येक पंचायत में आर्थिक विकास और सामाजिक न्याय के लिए आवश्यक योजनाओं को लागू करने के लिए कार्यकारी क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है।

बारहवीं अनुसूची (अनुच्छेद 243जी के अधीन) 1992 में 74वें संशोधन अधिनियम के अंतर्गत शहरी क्षेत्रों में नगरपालिकाओं के कार्यकारी क्षेत्रों का उल्लेख किया गया है।

सबसे अधिक महत्वपूर्ण और बड़ा संशोधन 1976 में बयालीसवां संशोधन था जिसके द्वारा नागरिकों के मूल अधिकारों और न्यायपालिका के अधिकारों पर अंकुश लगाया गया। साथ ही यह प्रावधान किया गया कि संसद के संविधान में संशोधन के अधिकार को चुनौती नहीं दी जा सकेगी। इस संशोधन ने संविधान का ढांचा ही बदल दिया। किंतु अगले वर्ष 1977 में चौवालीसवें संशोधन द्वारा संविधान क़रीब-क़रीब उसी रूप में वापस लाया गया।

इकसठवें संशोधन द्वारा 1988 में लोक सभा और राज्य विधान सभाओं के चुनाव के लिए मतदाता की न्यूनतम आयु 21 वर्ष से घटा कर 18 वर्ष कर दी गई ताकि अधिक युवाओं को चुनावों की प्रक्रिया में भाग लेने का अवसर मिल सके।

संशोधन की सीमा

अनुच्छेद 368 संविधान के उन प्रावधानों में है जिस पर न्यायालयों में और उनके बाहर संभवतः सबसे अधिक बहस हुई है और बावजूद इस अनुच्छेद में किए गए प्रावधानों व संशोधनों के इस प्रश्न पर स्थिति अब भी वैसी ही अस्पष्ट बनी हुई है कि संविधान में संशोधनों की क्या सीमा है, क्या संविधान या इसका अनुच्छेद 368 एक सामान्य विधि है या कोई ऐसा विशिष्ट विधि जिसका संशोधन किसी विशेष प्रक्रिया से ही हो सकता है जो इस अनुच्छेद में बताई गई प्रक्रिया से भिन्न हो। फिलहाल अभी तक कि जो स्थिति है वह यह है कि उच्चतम न्यायालय ने इस संविधान के अनेक उपबंधों को असंवैधानिक घोषित किया हुआ है बावजूद इसके ये उपबंध अब तक संविधान का अंग रूप बने हुए हैं। दूसरी बात यह कि उच्चतम न्यायालय के निर्णय के अनुसार संविधान के कुछ ऐसे प्रत्यय हैं जो उसका आधारभूत ढांचा कहे जा सकते हैं (उन्हें यदा-कदा परिगणित किया गया है किंतु पूर्णतया नहीं) और इस ढांचे को फेर-बदल करने का संसद को कोई अधिकार नहीं है। अनेक न्यायविद इस निर्णय से सहमत नहीं हैं किंतु वर्तमान में संविधान के प्रावधानों के संशोधन की कानूनी प्रस्थिति यही है।

सन् 1967 में उच्चतम न्यायालय ने एक मुक़दमे में (गोलकनाथ बनाम पंजाब राज्य - ए. आई. आर 1967 उच्चतम न्यायालय 1643) में यह ऐतिहासिक निर्णय दिया कि संसद भी मूल अधिकारों में संवैधानिक संशोधन के द्वारा कमी नहीं कर सकती। सरकार ने उस निर्णय को अप्रभावी बनाने के लिए 1971 में चौबीसवां संविधान संशोधन पारित किया जिसमें मौलिक अधिकारों सहित संविधान के किसी भी भाग को संशोधित करने के संसद के अधिकार की पुनःस्थापना की गई। इस पर पुनः सर्वोच्च न्यायालय ने अपना मानस बनाया और फैसला दिया (केशवानंद भारती बनाम केरल राज्य - ए. आई. आर. 1973 उच्चतम न्यायालय 1461) कि संसद संविधान में और सब संशोधन कर सकती है मगर उसके मूलभूत ढांचे को बिगाड़ने वाला कोई संशोधन नहीं कर सकती और यदि ऐसा करना आवश्यक हो तो उसे अपने आप को संविधान निर्मात्री सभा में परिवर्तित करना होगा। केशवानंद भारती नामक यह फैसला अभी भी बरकरार है। मूलभूत ढांचे की व्याख्या नहीं की गई है किंतु संविधान की सर्वोच्चता, राज्यों की स्वायत्तता, धर्म निरपेक्षता, न्यायपालिका, कार्यपालिका और विधायिका का पृथक्करण, यानी राज्य का संघीय ढांचा, न्यायपालिका को संविधान की व्याख्या करने का अधिकार आदि कुछ तत्व समय-समय पर दिए गए फ़ैसलों में गिनाए गए हैं जो संविधान के मूलभूत ढांचे के अंग कहे जा सकते हैं। यह बात अब भी विवादास्पद है कि नागरिकों के मूल अधिकार इस ढांचे में आते हैं या नहीं।

संशोधनों की सीमाएं

हमारे संविधान के भारी-भरकम शरीर में इतने पैबंद लग चुके हैं कि लोगों की राय है कि अब इसे नये सिरे से ही लिख लिया जाए। कुछ विचारकों की राय में हमारा संविधान तो पहले से ही भारतीय संस्कृति, अस्मिता व आत्मा के अनुरूप नहीं था और 60 वर्षों के अनुभव ने इस आशंका की पुष्टि कर दी है कि यह हमारे समाज की मूल आवश्यकताओं, मान्यताओं व धारणाओं के सर्वथा विपरीत नहीं तो अनुकूल भी नहीं है और इसमें आमूलचूल परिवर्तन होना चाहिए। एक महत्वपूर्ण प्रश्न यह भी है कि संविधान क्या केवल शासन की रीति-नीतियों का दस्तावेज़ है अर्थात एक ऐसा कानून जो शासन के विभिन्न अंगों को भली भांति चला सके, या उस जनता की आशा-आकांक्षाओं का प्रतीक है जिसके लिए शासन स्थापित होता है और चलता है? लोकतंत्र में शासन निश्चय ही जनता का, जनता के लिए व जनता के द्वारा होना चाहिए, यदि वास्तव में होता न भी हो। उस स्थिति में जनता का प्रतिनिधित्व जो शासन करे उसके सुव्यवस्थित रीति से चलते रहने के लिए जो कानून बनें वे जनता के हितार्थ ही होंगे, यह माना जाएगा और संविधान उन सब कानूनों का स्रोत है।

संविधान की प्रकृति व उसकी रचनाधर्मिता के विषय में यह सब बहस इसलिए प्रासंगिक है कि आखिर संविधान जैसा भी बना हो, उसे हम अपनी आवश्यकताओं के अनुरूप ढालने, सजाने, संवारने, सुधारने में या नया रूप देने में कहां तक समर्थ होते हैं। यह सुनिश्चित करना हमारा अधिकार ही नहीं, दायित्व भी है।

आज स्थिति यह है कि संविधान में 94 संशोधन हो चुके हैं और लगभग 8 संशोधन प्रक्रिया में हैं, यही कहा जा सकता है कि संविधान के संशोधन संसदीय प्रणाली की एक सामान्य प्रक्रिया है जो समय-समय पर आवश्यक हो जाते हैं। हमारा संविधान ऐसे सैकड़ों संशोधन अपने में समा सकता है और आने वाली कई सदियों तक बना रह सकता है, उसे बदलने की कोई आवश्यकता नहीं है। आवश्यकता है तो केवल उचित नेतृत्व की जो देश को सही दिशा में ले जा सके और जनता की आकांक्षाओं को पूरा कर सके। ❑

(लेखिका दिल्ली हाईकोर्ट में अधिवक्ता हैं।
ई-मेलः garima22@yahoo.com)

इतिहास का एक विस्मृत अध्याय की वापसी : फॉरवर्ड ब्लॉक

● अतुल कुमार

इतिहास में घटी कोई सामान्य-सी ऐसी घटना, जिस पर उस समय हमारा ध्यान नहीं जाता, कितनी महत्वपूर्ण हो सकती है, इसका अहसास हमें बाद में होता है। लेकिन तब तक समय बीत चुका होता है और हमारे सामने उस घटना के बारे में संस्मरण सुन-पढ़कर या अपने मनो-मस्तिष्क की कल्पना की उड़ानों से स्पर्श करने के अलावा कोई अन्य तरीक़ा नहीं रह जाता है कि उस बारे में हम जानें समझें। लेकिन उन्हीं घटनाओं में कई चीज़ें ऐसी भी होती हैं जो कालांतर में हमारे सामने आश्चर्यजनक रूप से आ जाती हैं और वह क्षण किसी अजूबा घटना के समान विस्मयकारी होती है। वह हमारे मन में रोमांच का संचार करती है। भारतीय स्वतंत्रता आंदोलन के अमर सेनानी सुभाष चंद्र बोस की एक ऐसी ही थाती पूरे 70 वर्षों बाद देश और दुनिया के सामने आ जाने का अनुभव भी इसी तरह से रोमांचकारी है। खासकर आज़ादी की बाद वाली पीढ़ियों के लिए, जो सुभाष को नाम और उनके करिश्माई कारनामों के कारण ही जानती है। सुभाष बाबू की वह थाती है उनके संपादन में प्रकाशित साप्ताहिक पत्रिका *फारवर्ड ब्लॉक।*

इतिहास के पन्नों में झांकने पर पता चलता है कि सन् 1939 में त्रिपुरी कांग्रेस में गांधीजी के विरोध के बावजूद सुभाष चंद्र बोस ने कांग्रेस के राष्ट्रपति पद का चुनाव जीता। लेकिन इसके बाद कांग्रेस के अंदर कलह इस क़दर बढ़ी और सुभाष और उनके अध्यक्षीय कामकाज पर पार्टी के अन्य नेताओं का दबाव और हस्तक्षेप इतना बढ़ने लगा कि उनके लिए संगठन का कामकाज आगे जारी रखना भी मुश्किल हो गया। अखिल भारतीय कांग्रेस कमिटी की ओर से उसी सम्मेलन में गोविंद वल्लभ पंत द्वारा एक प्रस्ताव यह भी लाया गया कि पार्टी के राष्ट्रपति गांधीजी से पूछे बिना अपनी कार्यकारिणी का गठन नहीं कर पाएंगे। इस प्रकरण का आश्चर्यजनक पहलू यह रहा कि जिन कम्युनिस्टों और सोशलिस्टों ने कांग्रेस के दक्षिणपंथियों के ख़िलाफ़ राष्ट्रपति (आज़ादी के पहले कांग्रेस अध्यक्ष को राष्ट्रपति कहा जाता था) के चुनाव में सुभाष का साथ दिया था, उन्हीं में से कम्युनिस्टों ने इस बाद वाले प्रस्ताव के पक्ष में वोट देकर सुभाष चंद्र बोस का हाथ बांधने में मदद की। सोशलिस्टों ने इस प्रस्ताव पर मतदान का बहिष्कार कर पार्टी में सुभाष विरोधियों की ही एक तरह से मदद की थी।

इसके बाद जो घटनाएं घटित हुईं उनमें सुभाष चंद्र बोस का गांधी जी से मतभेद बढ़ता गया और कांग्रेस में गांधी समर्थकों की बड़ी संख्या के कारण बाद में सुभाष बाबू पर पार्टी विरोधी गतिविधियों का आरोप लगाकर उन्हें कांग्रेस से निष्कासित कर दिया गया। इसके बाद उन्होंने अपनी अलग पार्टी 'फॉरवर्ड ब्लॉक' नाम से गठित की। यह पार्टी द्वितीय विश्वयुद्ध में सीधे हस्तक्षेप करते हुए अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ सीधा मोर्चा खोलने के पक्ष में थी। लेकिन तब तक न तो गांधी जी और न ही कांग्रेस इसके लिए तैयार हो पाए थे। हालांकि सन् 1942 में गांधीजी को भी इस रणनीति को अपनाकर अंग्रेज़ों के ख़िलाफ़ सीधा मोर्चा खोलना पड़ा था और 'भारत छोड़ो आंदोलन' शुरू करना पड़ा था। लेकिन तब काफी देर हो चुकी थी और कम्युनिस्ट मास्को का रुख भांप एक बार फिर पलटी मार चुके थे। कम्युनिस्टों ने हिटलर द्वारा सोवियत संघ पर हमले के कारण ब्रिटेन का साथ देना उचित समझा था, जो रूस के साथ था और हिटलर के ख़िलाफ़ लड़ रहा था। लेकिन सुभाष चंद्र बोस उससे पहले ही सन् 1941 में भारत छोड़ जर्मनी होते हुए जापान पहुंच चुके थे और आज़ाद हिंद फ़ौज का गठन कर वह वहां से दिल्ली के लिए कूच कर चुके थे।

सुभाष के कांग्रेस से अलग होने और फिर भारत छोड़ने के बीच भी घटनाएं घटीं उन्हीं में से एक था *फॉरवर्ड ब्लॉक* नाम से साप्ताहिक पत्रिका का प्रकाशन, जिसमें भारत की भविष्य की तस्वीरें उकेरी जा रही थीं। इस पत्रिका में आज़ाद होने के बाद भारत के पुनर्निर्माण की रणनीति, किसान, मज़दूर, अर्थ, उद्योग, समाज, राजनीति आदि के बारे में विभिन्न नेताओं और विचारकों के लेख प्रकाशित हुए थे और आज़ादी की लड़ाई की रूपरेखा भी निरूपित की जा रही थी। ज़ाहिर है यह पत्रिका ब्रिटिश शासकों की आंखों में खटकने लगी। अब *फॉरवर्ड ब्लॉक* के इन ऐतिहासिक अंकों को सहेजकर बेमिसाल रूप में पुनर्प्रकाशित किया है कोलकाता के लोकमत प्रकाशन ने। प्रस्तावना लिखी है फॉरवर्ड ब्लॉक पार्टी की पश्चिम बंगाल ईकाई के महासचिव 82 वर्षीय अशोक घोष ने। श्री घोष ने ही इस पत्रिका के अंकों को संग्रह किया और उसे व्यवस्थित कर प्रकाशित कराया है।

घोष की प्रस्तावना के अनुसार, सुभाष चंद्र बोस के संपादन में पार्टी के मुखपत्र के रूप में साप्ताहिक *फॉरवर्ड ब्लॉक* पत्रिका का पहला अंक 5 अगस्त, 1939 को निकला और यह 1 जून, 1940 तक लगातार प्रकाशित हुआ। लेकिन सुभाष के भारत छोड़ने और द्वितीय विश्वयुद्ध में जापान-जर्मनी की ओर से लड़ाई में हिस्सा लेने के कारण ब्रिटिश सरकार ने उन्हें देशद्रोही करार दिया और इस पत्रिका की देश में उपलब्ध सभी प्रतियों को जब्त कर उन्हें नष्ट कर दिया गया। इस तरह अंग्रेज़ों की नज़र में भारत से सुभाष चंद्र बोस के साथ ही उनकी इस पत्रिका का भी सफ़ाया हो गया। 1 जून, 1940 के बाद *फॉरवर्ड ब्लॉक* का 3 अगस्त, 1940 तक प्रकाशन बंद रहा। 3 अगस्त को इसका अगला अंक निकला। श्री घोष ने इसे *फॉरवर्ड ब्लॉक*

का दूसरा संस्करण कहा है। अब तक प्रकाशित हो रहे *फॉरवर्ड ब्लॉक* के पहले पृष्ठ पर संपादक के रूप में सुभाष चंद्र बोस का नाम प्रकाशित होता था लेकिन दूसरे संस्करण के 1 से लेकर 8 अंक तक संपादक के रूप में शांति रंजन चटर्जी का नाम छपा। घोष लिखते हैं कि यह वही शांति रंजन थे जो सुभाष से मिलने काबुल उस समय गए थे, जब 17 जनवरी, 1941 को सुभाष बाबू अंग्रेज़ों की नज़र से छिपकर भारत से निकल गए और काबुल पहुंचे थे। वहां से शांति रंजन चटर्जी नेताजी द्वारा लिखित दस्तावेज़ *काबुल थिसिस* (प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय हिंदी में प्रकाशित 'नेताजी संपूर्ण वाङ्मय' में यह आलेख संकलित है-वरि. सं.) लेकर भारत वापस लौटे थे। इस थिसिस का शीर्षक था, द *जस्टिफ़िकेशन ऑफ फॉरवर्ड ब्लॉक*। इसमें तात्कालिक राजनीतिक और दार्शनिक नोट लिखे गए थे। *फॉरवर्ड ब्लॉक* के अंक 9 पर संपादक के रूप में लाला रॉय का नाम छपा और सुभाष का नाम यहां संस्थापक के रूप में प्रकाशित हुआ। लेकिन दुर्भाग्य से 3 अगस्त, 1940 से बाद का अंक श्री घोष को कहीं उपलब्ध नहीं हो सका।

इतिहास में कुछ ऐसी चीज़ें होती हैं जिन्हें एक खास बिंदु पर हम अपने स्तर से समाप्त मान लेते हैं, लेकिन असल में वह उस चीज़ या घटना का प्रस्थान बिंदु होता है। दमनात्मक कार्रवाइयों से जनांदोलन और मज़बूत होते हैं। जो चीज़ें एक बार अस्तित्व में आ जाती हैं, उसे प्रकृति से नष्ट करना मुश्किल है। यही बात सत्ता के मद में चूर लोग समझ नहीं पाते। अंग्रेज़ भी इसे नहीं समझ पाए। *फॉरवर्ड ब्लॉक* पत्रिका सरकारी संस्थानों, सार्वजनिक पुस्तकालयों और बुक स्टॉलों, विभिन्न पार्टियों के दफ़्तरों से नष्ट हो गई लेकिन लोक मानस में तो वह स्थापित हो चुकी थी।

घोष ने लिखा है कि उन्होंने इस पत्रिका के अंकों को एकत्रित करना शुरू किया। ये अंक देश में कहीं नहीं थे लेकिन विदेशों में उसी समय वितरित हुए अंक मिले। वर्ष 1998-99 में नेताजी जन्म शताब्दी के दौरान उन्होंने इसे पुनः प्रकाशित करने का प्रयास शुरू कर दिया। लेकिन जब उन्होंने इसे क्रमबद्ध किया तो पता चला कि इसमें से कई अंक अनुपलब्ध हैं। घोष के मुताबिक, कुछ वर्षों बाद श्रीमती रामेन डे ने जर्मनी से फोन किया और उन्हें बताया कि इस पत्रिका के कई अंक उनके पास उपलब्ध हैं। श्रीमती डे ने उन अंकों को उन्हें सौंप भी दिया। लेकिन घोष को फिर निराशा तब हाथ लगी जब पता चला कि अनुपलब्ध अंकों में से कुछ तो उन्हें मिल गए लेकिन तब भी अंक संख्या 38, 39, 40 और 41 अनुपलब्ध ही थे। श्रीमती डे के पति श्री रामेन डे सुभाषचंद्र बोस द्वारा स्थापित युवा संगठन 'बंगाल वॉलंटियर' के सक्रिय लड़ाका दस्ते के सदस्य थे। बाद में वह जर्मनी जाकर बस गए। अशोक घोष ने तब नेशनल लाइब्रेरी, कोलकाता से संपर्क किया, जहां जीर्ण-शीर्ण अवस्था में पत्रिका के सभी अंकों का एक सेट मिल गया। दरअसल, अंग्रेज़ सुभाष बोस के साथ ही उनकी पार्टी और पत्रिका को भी अपने साम्राज्य के लिए ख़तरा मानते थे इसलिए पुलिस ने सन् 1942-43 के दौरान देशभर में *फॉरवर्ड ब्लॉक* के दफ़्तरों पर छापा मारकर पार्टी के सारे दस्तावेज़ों को जला डाला, दफ़्तरों को तोड़ डाला और कार्यकर्ताओं को गिरफ़्तार कर लिया। पुलिस ने एक बार फिर 1947-49 के दौरान भी यही क्रूरता दिखाई। लेकिन इसकी कुछ प्रतियां जहां-तहां फिर भी बची रहीं।

इस पत्रिका में नेताजी वाम एकता पर ज़ोर देकर ऐसे विचार रखने वाले पहले भारतीय राजनीतिक विचारक बने। *फॉरवर्ड ब्लॉक* पत्रिका में उस समय देश के स्वतंत्रता आंदोलन में सक्रिय तमाम धाराओं के नेताओं के तो लेख प्रकाशित होते ही रहते थे, साथ ही अनेक नामी-गिरामी हस्तियां भी इसमें स्थान पाती थीं। इनमें गुरुदेव रवींद्रनाथ टैगोर, किसान नेता सहजानंद सरस्वती, कांग्रेस नेता हुमायूं कबीर, वैज्ञानिक मेघनाद साहा, संविधानविद हरि विष्णु कामथ, विख्यात साहित्यकार नीरद सी. चौधरी, कांग्रेस नेता और कलाकार नंदलाल बोस, विख्यात क्रांतिकारी मन्मथनाथ गुप्त, महापंडित राहुल सांकृत्यायन सरीखे नेता शामिल थे। सुभाष ने सन् 1930 में ही लेफ्ट कंसोलिडेशन कमिटी का गठन किया था जिसकी प्रासंगिकता अब क़रीब 75 साल बाद और अधिक प्रतीत होने लगी है।

पत्रिका के पहले अंक में ही 'हवाई फॉरवर्ड ब्लॉक' शीर्षक से संपादकीय लिखकर नेताजी ने अपनी गतिविधियों के बारे में स्पष्ट कर दिया। जो लोग और संगठन फासीवाद के प्रति सुभाष का रुझान होने का प्रचार करते हैं, उन्हें पहले ही अंक में प्रकाशित अमियनाथ बोस का लेख 'फ़ासिज्म इन इंडिया' और 'चाइना फाइट्स इंपीरियलिस्टिक जापान' पढ़ लेना चाहिए। पत्रिका में प्रकाशित लेखों से भी आईने की तरह साफ़ हो जाता है कि सुभाष का रुझान पूरी तरह से वामपंथी प्रगतिशील राजनीति की ओर था। वह देश में तमाम ऐसी धाराओं की एकजुटता चाहते थे। इसी क्रम में दूसरे अंक में ही सोशलिस्टों से एकता की अपील करता हुआ निहारेंदु दत्त मजूमदार का लेख प्रकाशित हुआ था। तीसरे अंक के संपादकीय में सुभाष ने अपने आलोचकों को तर्क़पूर्ण जवाब दिया है तो रवींद्रनाथ टैगोर का संबोधन छापा। इसमें 24-25 मार्च, 1940 को विजिगापटम में आयोजित ऑल इंडिया किसान कांफ्रेस में राहुलजी का अध्यक्षीय भाषण दस्तावेज़ के तौर पर विद्यमान है। पत्रिका में देश-दुनिया की तमाम समस्याओं के साथ भारत की विदेश नीति, मज़दूरों के सवाल आदि पर भी महत्वपूर्ण विचार व्यक्त किए जाते थे। इसी अंक में उन्होंने अपने ऊपर हुई अनुशासनात्मक कार्रवाई का जवाब दिया है और *फॉरवर्ड ब्लॉक* से जुड़ने की अपील की। चौथे अंक में जर्मन-सोवियत पैक्ट, वर्धा स्कीम की आलोचना आदि विचारोत्तेजक लेख उस समय की राजनीतिक गतिविधियों से समुचित रूप से अवगत कराते हैं। पत्रिका में छपे संपादक के नाम पत्र भी एक तरह से विचारों से भरे लेख जैसे हैं। महात्मा गांधी के 70 वर्ष पूरे करने के उपलक्ष्य में भी पत्रिका में बधाई के तौर पर एक लेख लिखा गया था। इसका उल्लेख यहां इसलिए ज़रूरी है कि महात्मा गांधी के साथ मतभेदों के कारण ही सुभाष को कांग्रेस से अलग होना पड़ा था। दो खंडों में प्रकाशित इस रेसिमाइल के दूसरे खंड में अंक संख्या 22 उपलब्ध नहीं है तो अंक 23 दो बार संकलित हो गया है।

पत्रिका के सभी उपलब्ध अंकों का दो खंडों में प्रकाशन ऐतिहासिक शोध के लिए महत्वपूर्ण है, जिसे उद्धृत किए बिना आज़ादी की लड़ाई के दौरान के वैचारिक विमर्श को समग्रता में समझा नहीं जा सकता। साथ ही इसे भारतीय पत्रकारिता के इतिहास के परिप्रेक्ष्य में भी उल्लिखित करना ज़रूरी है, क्योंकि स्वतंत्रता आंदोलन के दौरान भारतीय पत्रकारिता ने जो राष्ट्रीयतावादी और साम्राज्य विरोधी स्वरूप ग्रहण किया, उसकी कोई भी चर्चा *फॉरवर्ड ब्लॉक* के बिना पूरी नहीं हो सकती। ❑

(लेखक नयी दिल्ली से प्रकाशित दैनिक *हिन्दुस्तान* के वरिष्ठ कॉपी एडीटर हैं।
ई-मेलः atul.knmaar@gmail.com)

रुपये को मिली नयी पहचान

विशिष्ट चिह्न को सरकार की मंज़ूरी

प्रतीक चिह्न के बहाने रुपये के सफ़रनामे पर एक नज़र

भारतीय रुपये के लिए 15 जुलाई, 2010 का दिन एक ऐतिहासिक दिन कहलाएगा। इसी दिन भारतीय रुपये को भी विश्व की अन्य प्रमुख मुद्राओं की भांति अलग पहचान मिली। अमरीकी डॉलर, जापानी येन, ब्रिटिश पौंड स्टर्लिंग और यूरोपीय संघ के यूरो की तरह अब भारतीय रुपये का भी अपना चिह्न होगा। प्रधानमंत्री मनमोहन सिंह की अध्यक्षता में केंद्रीय मंत्रिमंडल की बैठक में यह महत्वपूर्ण फ़ैसला करते हुए रुपये के विशिष्ट चिह्न को मंजूरी दे दी गई। बैठक के बाद सूचना प्रसारण मंत्री अंबिका सोनी ने बताया कि इस चिह्न को यूनीकोड मानक, आईएसओ-आईईसी 10646 और आईएस 13194 में शामिल करने के बाद इसका इस्तेमाल भारत के भीतर और बाहर किया जा सकेगा। उन्होंने कहा– रुपये का चिह्न भारतीय मुद्रा की पहचान क़ायम करेगा और भारतीय अर्थव्यवस्था की तेज़ी और मज़बूती को रेखांकित करेगा। साथ ही यह भारत की वैश्विक निवेश के तरज़ीही गंतव्य के रूप में आगे बढ़ने में भी मददगार होगा। उन्होंने कहा कि भारतीय अर्थव्यवस्था के साथ एकीकृत होने और भारत के वैश्विक निवेश का प्रमुख गंतव्य बनने की वजह से भारतीय रुपये का एक चिह्न विकसित करने का फ़ैसला सरकार ने किया था।

चिह्न की एनकोडिंग के बाद नासकॉम

रुपये को सॉफ्टवेयर में शामिल करने के लिए भारतीय सॉफ्टवेयर विकास कंपनियों से संपर्क साधेगा ताकि दुनियाभर में कंप्यूटर इस्तेमाल करने वाले लोग इसका आसानी से उपयोग कर सकें, भले ही यह चिह्न की-बोर्ड पर न बना हो। यूरो का निशान भारत में इस्तेमाल होने वाले की-बोर्ड में नहीं है लेकिन उसका इस्तेमाल होता है। उन्होंने कहा कि भारत में बनने वाले की-बोर्ड में इस चिह्न को शामिल करने के लिए सूचना प्रौद्योगिकी निर्माता एसोसिएशन चिह्न की अधिसूचना जारी होने के बाद इसे की-बोर्ड में शामिल करने की पहल करेगा। राज्य सरकारों को रुपये के इस चिह्न के इस्तेमाल के लिए प्रोत्साहित किया जाएगा। रुपये के निशान को भारतीय मानकों में एनकोड करने की प्रक्रिया में छह महीने लगेंगे जबकि यूनीकोड और अन्य मानकों में ऐसा करने के लिए डेढ़ से दो साल का वक़्त लगेगा।

उन्होंने कहा कि यह भारतीय रुपये को विभिन्न भाषाओं में एक ही तरह से पेश करने में सहायक होगा। इससे भारतीय रुपये की पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका और इंडोनेशिया जैसे देशों की मुद्राओं से अलग पहचान बनेगी, जहां रुपया या रुपइया चलता है। इस चिह्न को यूनीकोड मानक में शामिल किया जाएगा ताकि दुनिया की सभी लिपियों में इसे लिखा जा सके। इलेक्ट्रॉनिक और प्रिंट मीडिया में इस चिह्न को छापा जा सकेगा क्योंकि सभी सॉफ्टवेयर कंपनियां इस मानक के अनुरूप सॉफ्टवेयर विकसित करेंगी। चिह्न को भारतीय मानकों में भी शामिल किया जाएगा। इसके लिए भारतीय मानक ब्यूरो की मौजूदा सूची में संशोधन होगा। इंडियन स्क्रिप्ट कोड फॉर इंफ़ारमेशन, इंटरचेंज (आईएससीआईआई) के तहत रुपये का चिह्न शामिल होगा। आईएससीआईआई कंप्यूटर प्रोसेसिंग के लिए की-बोर्ड ले-आउट सहित भारतीय भाषाओं के विभिन्न कोड की व्याख्या करता है। निर्णायक मंडल ने इसके लिए जो प्रतीक चिह्न चुना, उसे आईआईटी, मुंबई के परास्नातक डी. उदय कुमार ने बनाया है।

सरकार ने इस चिह्न के चुनाव के लिए 5

मार्च, 2009 को प्रविष्टियां मांगी थीं। प्रत्याशियों से कहा गया था कि ऐसा प्रतीक पेश करें जिसमें भारतीय संस्कृति और इसके मूल्य समाहित हों। तीन हज़ार से ज्यादा प्रविष्टियों में से पांच प्रविष्टियां निर्णायक मंडल ने आख़िरी फ़ैसले के लिए छांटी। बाद में डी. उदय कुमार के डिज़ाइन को चुना गया जिसे सरकार ने मंजूर कर लिया।

श्री उदय कुमार को ढाई लाख रुपये का पुस्कार तो मिलगा ही, बल्कि उससे भी अधिक रुपये के प्रतीक चिह्न के रचयिता के तौर पर उन्हें भारी प्रसिद्धि मिलेगी और रुपये के प्रतीक चिह्न के रचयिता के रूप में इतिहास में स्थान भी मिलेगा। अपनी प्रविष्टि के चयन से प्रसन्न श्री कुमार ने कहा कि "मेरी डिज़ाइन देवनागरी लिपि के 'र' और रोमन के 'आर' का मेल है। असल में वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने भी ऐसे चिह्न की परिकल्पना की थी। बजट सत्र में उन्होंने कहा था कि हम रुपये के लिए ऐसा चिह्न चाहते हैं जिसमें भारतीय मूल्यों और संस्कृति की झलक दिखती हो।

बरहाल नये चिह्न का मूल उद्देश्य भारतीय रुपये को अंतरराष्ट्रीय पहचान दिलाना है, क्योंकि देश की अर्थव्यवस्था को विश्व स्तर पर जगह बनाने के लिए और उद्यम की दरक़ार है। यह विशेष चिह्न भारतीय रुपये को पड़ोसी देशों– पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका में रुपये के संक्षिप्त 'आरएस' से अलग भी करेगा।

श्री कुमार की परिकल्पना तिरंगे और 'गणितीय समानता' पर आधारित है, जबकि दो क्षैतिज रेखाओं के बीच उजला स्थान अशोक चक्र युक्त राष्ट्रीय झंडे की झलक देता है। दो गाढ़ी समांतर रेखाएं बराबरी का प्रतीक हैं, जो देश और बाहर की अर्थव्यवस्थाओं के बीच संतुलन का प्रतिनिधित्व करती हैं।

हाल ही में डी. उदय कुमार ने आईआईटी गुवाहाटी में डिज़ाइन विभाग में संकाय सदस्य के तौर पर काम संभाला है।

भारतीय रुपये के लिए जिस चिह्न को केंद्रीय मंत्रिमंडल ने मंजूर किया है वह कहीं भी इस्तेमाल किया जा सकने वाला एक सीधा-सादा देसी प्रतीक है, हालांकि ख़ोजने वाले इसमें कुछ गूढ़ अर्थ भी ख़ोज सकते हैं। लगभग डेढ़ साल पहले वित्त मंत्रालय ने जब इस चिह्न के लिए डिज़ाइन मांगे थे तो अपनी शर्त ही यही रखी थी कि उसे हिंदी अक्षर र के इर्द-गिर्द रचा जाए, इसमें दो क्षैतिज रेखाओं का इस्तेमाल किया जाए और यह इतना आसान हो कि इसको बनाने में किसी को मुश्किल न आए।

रुपये का सफ़रनामा

रुपया पिछले कई सौ सालों से पूरे दक्षिण एशिया की मुद्रा रहा है। 'रुपया' शब्द की उत्पत्ति संस्कृत के 'रौप्य' से हुई है, जो चांदी का दूसरा नाम है। एक समय था जब रुपया चांदी का ही हुआ करता था और दो रुपया महीना तनख़्वाह पाने वाले को भी समाज में मुंह छिपाने की ज़रूरत नहीं होती थी।

भारतीय रुपये को हिंदी में रुपया, गुजराती में रुपियो, तेलुगु और कन्नड़ में रुपई, तमिल में रुबाई संस्कृत में रुप्यकम, बांग्ला और असमिया में टका/टॉका तथा ओड़िया में टंका कहा जाता है।

भारत की गिनती उन गिने-चुने देशों में होती है जिसने सबसे पहले सिक्के जारी किए। परिणामत: इसके इतिहास में अनेक मौद्रिक इकाइयों का उल्लेख मिलता है। इस बात के कुछ ऐतिहासिक प्रमाण मिले हैं कि पहले सिक्के 2500 और 1750 ईसा पूर्व के बीच जारी किए गए थे। परंतु दस्तावेज़ी प्रमाण सातवीं/छठी शताब्दी ईसा पूर्व के बीच सिक्कों की ढलाई के ही मिले हैं। इन सिक्कों के निर्माण की विशिष्ट तकनीक के कारण इन्हें 'पंच मार्क्ड (हथौड़ा छाप) सिक्के कहा जाता है।

अगली कुछ सदियों के दौरान जैसे-जैसे साम्राज्यों का उदय और पतन हुआ तथा परंपराओं का विकास हुआ, देश की मुद्राओं में इसका प्रगति-क्रम दिखाई देने लगा। इन मुद्राओं से प्राय: तत्कालीन राजवंश, सामाजिक-राजनीतिक घटनाओं, आराध्य देवों और प्रकृति का परिचय मिलता था। इनमें इंडो-ग्रीक काल के यूनानी देवताओं और उसके बाद के पश्चिमी क्षत्रप वाले तांबे की मुद्राएं शामिल हैं जो पहली और चौथी शताब्दी के दौरान जारी किए गए थे।

अरबों ने 712 ईसवी में भारत के सिंध प्रांत को जीतकर उस पर अपना प्रभुत्व स्थापित किया। बारहवीं शताब्दी तक दिल्ली के तुर्क़ सुल्तानों ने लंबे समय से चली आ रही अरबी डिज़ाइन को हटाकर उसके स्थान पर इस्लामी लिखावटों को मुद्रित कराया। इस मुद्रा को 'टंका' कहा जाता था। दिल्ली के सुल्तानों ने इस मौद्रिक प्रणाली का मानकीकरण करने का प्रयास किया और फिर बाद में सोने, चांदी और तांबे की मुद्राओं का प्रचलन शुरू हो गया।

1526 ई. में मुगलों का शासन काल शुरू होने के बाद समूचे साम्राज्य में एकीकृत और सुगठित मौद्रिक प्रणाली की शुरुआत हुई। अफ़गान सुल्तान शेरशाह सूरी (1540 से 1545) ने चांदी के 'रुपैये' अथवा रुपये के सिक्क़े की शुरुआत की। पूर्व-उपनिवेश काल के भारत के राजे रजवाड़ों ने अपनी अलग मुद्राओं की ढलाई करवाई जो मुख्यत: चांदी के रुपये जैसे ही दिखते थे, लेकिन उन पर उनकी रियासतों की क्षेत्रीय विशेषताएं भी अंकित होती थीं।

अट्ठाहरवीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध में एजेंसी घरानों ने बैंकों का विकास किया। दि बैंक ऑफ बंगाल, दि बैंक ऑफ हिंदुस्तान, ओरियंटल बैक कार्पोरेशन और दि बैंक ऑफ वेस्टर्न इंडिया इनमें प्रमुख थे। इन बैंकों ने अपनी अलग-अलग क़ागजी मुद्राएं– उर्दू, बांग्ला और देवनागरी लिपियों में मुद्रित करवाई।

लगभग सौ वर्षों तक निजी और प्रेसीडेंसी बैंकों द्वारा जारी बैंक नोटों का प्रचलन बना रहा, परंतु सन् 1961 के पेपर करेंसी कानून बनने के बाद उस पर सरकार का एकाधिकार हो गया। ब्रिटिश सरकार ने बैंक नोटों के वितरण में मदद के लिए पहले तो प्रेसीडेंसी बैंकों को ही अपने एजेंट के रूप में नियुक्त किया, क्योंकि एक बड़े भू-भाग में सामान्य नोटों के इस्तेमाल को बढ़ावा देना एक दुष्कर कार्य था। महारानी विक्टोरिया के सम्मान में सन् 1867 में पहली बार उनके चित्र की शृंखला वाले नोट जारी किए गए। ये नोट एक ही ओर छपे थे और पांच मूल्यों में जारी किए गए थे।

भारतीय रिज़र्व बैंक ने बैंक नोटों के मुद्रण और वितरण का दायित्व भारत सरकार से सन् 1935 में ले लिया। जार्ज पंचम के चित्र वाले नोटों के स्थान पर सन् 1938 में जार्ज षष्ठम के चित्र वाले नोट जारी किए गए जो सन् 1947 तक प्रचलन में बने रहे। भारत की स्वतंत्रता के बाद उन्हें मुद्रा बाज़ार से वापस ले लिया गया। सारनाथ के सिंहों के स्तंभ वाले नोटों ने जार्ज षष्ठम वाले नोटों का स्थान लिया।

भारतीय रुपया सन् 1957 तक तो 16 आनों में विभाजित रहा, परंतु उसके बाद सन् 1957 में ही मुद्रा की दशमलव प्रणाली अपना ली गई और एक रुपये का पुनर्गठन 100 समान पैसों में

किया गया। महात्मा गांधी के चित्र वाले क़ागजी नोटों की शृंखला की शुरुआत सन् 1996 में हुई जो आज तक चलन में है।

सुरक्षा के उपाय

नकली मुद्रा की चुनौती से निपटने के लिए भारतीय नोट में सुरक्षा संबंधी अनेक विशेषताओं को समाहित किया गया है। नोटों के एक ओर सफेद भाग में महात्मा गांधी का जल चिह्न बना हुआ है। सभी नोटों में चांदी का सुरक्षा धागा लगा हुआ है जिस पर अंग्रेज़ी में आरबीआई और हिंदी में भारत अंकित है। प्रकाश के सामने लाने पर इसको देखा जा सकता है। पांच सौ और एक हजार के नोटों में उनकी संख्या प्रकाश में परिवर्तनीय स्याही से लिखा हुआ है। धरती के समानांतर रखने पर ये संख्याएं हरी दिखाई देती हैं, परंतु तिरछे या कोण से देखने पर नीले रंग में लिखी दिखाई देती हैं।

भारतीय रुपये के भाषा पटल पर भारत की 22 सरकारी भाषाओं में से 15 में इनका मूल्य मुद्रित है। ऊपर से नीचे इनका क्रम इस प्रकार है– असमिया, बांग्ला, गुजराती, कन्नड़, कश्मीरी, कोकंणीं, मलयाली, मराठी, उड़िया, संस्कृत, तमिल, तेलुगु और उर्दू।

विशिष्ट पहचान की ज़रूरत

आज रुपया पांच देशों की (भारत के अलावा पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका और इंडोनेशिया की भी) मुद्रा है और हर जगह इसकी क़ीमत अलग-अलग है। इतना ही नहीं, कहीं यह मज़बूत और चढ़ती हुई, तो कहीं बर्बाद अर्थव्यवस्था का प्रतिनिधित्व करता है। ऐसे में भारत के रुपये की एक अलग पहचान हो, इसके लिए इस्तेमाल होने वाला प्रतीक एक संस्कृति और सभ्यता का ही नहीं, एक स्थिर, संतुलित, ताकतवर अर्थव्यवस्था का भी प्रतिनिधित्व करे, यह किसी भी भारतीय की इच्छा हो सकती है। फ़िलहाल कई देश और क्षेत्र अपने सिक्के के लिए अलग प्रतीक का इस्तेमाल करते हैं, लेकिन स्वतंत्र पहचान डॉलर, यूरो और पाउंड के मुद्रा चिह्नों की ही है। जापान की मुद्रा येन काफ़ी ताक़तवर होने के बजाय अपनी पहचान में बिल्कुल चीनी मुद्रा युआन जैसी है। इसकी वज़ह शायद यह हो कि दोनों का ही डिज़ाइन अंग्रेज़ी के अक्षर वाई पर टिका है और इससे हटकर अपना रास्ता खोजने के लिए दोनों तैयार नहीं हैं। ज़ाहिर है, मुद्रा चिह्नों की गति मुद्रा की गति से जुड़ी होने के बावजूद कुछ मायनों में उससे अलग भी होती है। उम्मीद है कि अगले कुछ महीनों में भारत सरकार कंप्यूटर की-बोर्डों और साइबर दुनिया की सार्वभौम लिपि यूनीकोड में रुपये के प्रतीक चिह्न को शामिल करा लेगी। तब यह निशान भी डॉलर, यूरो और पाउंड की पांत में बैठा नज़र आएगा।

प्रतीक चिह्न यानी विशिष्टता

यूं तो विश्व के सभी देशों की मुद्रा के प्रतीक चिह्न उनके संक्षिप्त रूप हैं। भारतीय रुपये को संक्षिप्त में आरएस या आईएनआर लिखा जाता है। अमरीकी डॉलर को यूएसडी लिखा जाता है। मगर जहां तक चिह्न की बात है तो अंतरराष्ट्रीय स्तर पर जिन देशों की मुद्रा का प्रतीक चिह्न प्रचलन में है, उनमें अमरीकी डॉलर, जापानी येन, ब्रिटिश पाउंड स्टर्लिंग और यूरोपीय संघ की मुद्रा यूरो शामिल हैं। अब कुछ समय के बाद भारतीय रुपये का प्रतीक भी इसी सूची में शामिल हो जाएगा। सवाल यह उठता है कि आखिर इसकी ज़रूरत क्या है? एक समय ब्रिटेन का कारोबार विश्व में काफी फैला था। कारोबार ब्रिटिश मुद्रा में होता था। ब्रिटेन ने इस विशिष्टता को कायम करने के लिए उसका प्रतीक चिह्न बनाया। अमरीका ने भी यही रणनीति अपनाई। कई अन्य देशों में डॉलर मुद्रा का प्रचलन है, उनसे अलग अपनी मुद्रा डॉलर की पहचान और अपनी मुद्रा का वर्चस्व अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में स्थापित करने के लिए अमरीका ने अपनी मुद्रा का प्रतीक चिह्न बनाया। 1999 में यूरोपीय देशों ने अपनी नयी मुद्रा का प्रचलन शुरू किया, अपने ख़ास प्रतीक चिह्न के साथ।

कारोबार का वर्चस्व

यह कारोबार के वर्चस्व की लड़ाई है। जिन-जिन देशों की मुद्रा के प्रतीक चिह्न हैं, उनके साथ कारोबार की पहली शर्त यह है कि कारोबार उनकी मुद्रा में होगा। निर्यात से लेकर आयात सब कुछ उनकी मुद्रा में होगा। अमरीकी डॉलर ने विदेशी मुद्रा विनिमय बाज़ार में अपनी धुरी इस कदर बना ली है कि अन्य देशों की मुद्राओं की क़ीमत डॉलर के मुक़ाबले ही तय होती है। हालांकि यूरोपीय देश यूरो के द्वारा इस मिथ को तोड़ने की कोशिश में हैं, मगर अन्य देशों के साथ अमरीका का कारोबार यूरोपीय देशों की तुलना में इतना अधिक है कि डॉलर का वर्चस्व बना हुआ है।

बढ़ती अर्थव्यवस्था

भारत की अर्थव्यवस्था तेज़ी के साथ बढ़ रही है। चीन के बाद भारत की वृद्धिदर सबसे ज्यादा है। मगर भारत को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर कारोबार अमरीकी डॉलर में करना पड़ता है। भारत के कंप्यूटर के की-बोर्ड तक में अमरीकी डॉलर का प्रतीक उपलब्ध है। यह दर्शाता है कि अमरीका की अर्थव्यवस्था और मुद्रा भारत की अर्थव्यवस्था पर कितनी हावी है। भारत अब चाहता है कि उसकी मुद्रा की ताक़त को दुनिया माने। इसके लिए उसने उदार अर्थव्यवस्था की नीतियों का ईमानदारी से पालन किया। चीन की तरह अपनी मुद्रा पर नियंत्रण नहीं रखा। अपनी मुद्रा में उतार-चढ़ाव को सहा। इससे यह साबित होता है कि भारत के बाज़ार और उसकी मुद्रा हर मायने में मज़बूत है। बस इस मज़बूती को अंतरराष्ट्रीय स्तर पर ले जाने की ज़रूरत है।

भारत पिछले 10 सालों से अपनी मुद्रा का प्रतीक चिह्न बनाने की कोशिश में है। जब भारत ने दक्षिण एशियाई मुक्त व्यापार संधि (साफ्टा) लागू किया तो उस वक़्त ही उसने अपनी मंशा ज़ाहिर कर दी थी। भारत ने साफ़ तौर पर कहा था कि वह चाहता है कि दक्षिण एशियाई देशों में एक मुद्रा का चलन हो। और वह मुद्रा भारतीय रुपया हो। दक्षिण एशिया के अधिकांश देशों में रुपया ही मुद्रा के रूप में चलता है। इसमें प्रमुख देश हैं– पाकिस्तान, नेपाल, श्रीलंका और इंडोनेशिया। बेशक भूटान और बांग्लादेश में अलग मुद्रा का प्रचलन है। अगर सभी देश सहमत हो गए तो इसमें बदलाव किया जा सकता है। अब भारत ने अपनी मुद्रा का प्रतीक चिह्न बनाकर अपने इस सपने को साकार करने की तरफ़ क़दम बढ़ा दिया है। अगर दक्षिण एशियाई देशों में भारतीय रुपये का सिक्क़ा चल गया तो वैश्विक बाज़ार में इसे स्थापित करने में आसानी होगी।

रुपया अपने प्रतीक चिह्न के साथ अंतरराष्ट्रीय बाज़ार में अपनी विशिष्टता बनाएगा। आने वाले समय में भारत भी अपने साथ होने वाले कारोबार को रुपये में करने की बात कर सकता है। कारोबार का गणित रुपये के मूल्य पर तय हो सकता है। इस वक़्त भारत की अर्थव्यवस्था और बाज़ार दर डॉलर के आधार पर तय होती है। आने वाले समय में इस मानदंड में बदलाव आ सकता है। ❑

(*योजना* **संपादकीय टीम द्वारा संकलित**)

आधार परियोजना

● ***विशिष्ट (अनन्य) पहचान पत्र (आधार) परियोजना का उद्देश्य क्या है?***

भारत में किसी भी व्यक्ति के लिए अपनी पहचान साबित करना एक बड़ी समस्या है। आज तक कोई भी ऐसा एक दस्तावेज़ नहीं है जिससे व्यक्ति की भलीभांति पहचान की जा सके। विभिन्न कार्यों के लिए लोगों को अपनी पहचान बताने के लिए अनेक प्रकार के दस्तावेज़ ढोने होते हैं। आपको जब बैंक में ख़ाता खोलना होता है, पासपोर्ट लेना होता है या फिर मोबाइल फोन का कनेक्शन लेना होता है, विविध प्रकार के दस्तावेज़ अपनी पहचान बताने के लिए दिखाने पड़ते हैं। इससे भी बढ़कर बात यह है कि आज़कल जो दस्तावेज़ पहचान के लिए इस्तेमाल किए जाते हैं उनसे प्रवासी नागरिकों अथवा प्राय: अपने कार्य अथवा आज़ीविका के सिलसिले में एक स्थान से दूसरे स्थान की यात्रा करने वाले लोगों को अपनी पहचान साबित करना मुश्किल होता है। गरीबों और वंचित वर्गों के लोगों की भी यही समस्या है।

यूआईडी (आधार) का उद्देश्य देश के प्रत्येक व्यक्ति को एक ऐसी विशिष्ट पहचान संख्या देना है, जिससे उसकी पहचान सुनिश्चित की जा सके। पहचान के लिए यह एक संख्या पर्याप्त होगी। अन्य किसी कार्ड की कोई आवश्यकता नहीं रहेगी। व्यक्ति की मौलिक पहचान को उसके जीवसंख्या (बायोमेट्रिक्स) से जोड़ दिया जाएगा और उसको यूआईडी के संचित आंकड़ा बैंक (डाटाबेस) में अंकित कर दिया जाएगा। जब भी किसी व्यक्ति की पहचान का पता लगाने की आवश्यकता होगी उसे प्रामाणिकता की ऑन लाइन प्रक्रिया के माध्यम से इसी यूआईडी के द्वारा साबित किया जा सकेगा।

● ***यूआईडी संख्या लेना क्या अनिवार्य होगा?***

यूआईडी संख्या लेना अनिवार्य नहीं है, पर यह है बड़े काम की चीज़। भारत का कोई भी स्थायी अथवा अस्थायी नागरिक इसे प्राप्त करने का पात्र है और उसे यह लेना भी चाहिए क्योंकि कोई भी सेवा हासिल करने के लिए उसे हर बार अपनी पहचान साबित करने के झंझट से छुटकारा मिल जाएगा। यूआईडी के माध्यम से ग़रीबों और वंचित वर्ग के लोगों के लिए भी बैंकों की सुविधाओं का लाभ लेना सुगम हो जाएगा। सरकारी और निज़ी क्षेत्रों द्वारा प्रदान की जाने वाली सेवाओं का लाभ उठाने का अवसर भी उन्हें सुलभ हो सकेगा। दूसरे स्थानों से आने वाले प्रवासियों की पहचान करना सरल होगा।

● ***यूआईडी का डाटाबेस किस प्रकार तैयार किया जाएगा?***

यूआईडी का डाटाबेस तैयार करने में विभिन्न संस्थानों के नेटवर्क का उपयोग तीन स्तरों पर किया जाएगा। लोगों के साथ पहली बार संपर्क करने के लिए पंजीकरण एजेंसियां होंगी जो यूआईडी डाटाबेस में लोगों का नाम दर्ज़ करेंगी। इन पंजीकरण एजेंसियों पर पंजीयकों का एक नेटवर्क नज़र रखेगा, जिनमें ऐसी सरकारी और निज़ी क्षेत्र की एजेंसियां शामिल होंगी जिनके पास आम जनता से लेकर लोक व्यवहार का ढांचा पहले से ही मौजूद है। बैंक, बीमा कंपनियां, रसोई गैस वितरण करने वाली कंपनियां, मनरेगा आदि से जुड़ी संस्थाएं इनमें प्रमुख हैं। महिलाओं, बच्चों, कमज़ोर और वंचित वर्ग के लोगों के लिए काम कर रही ग़ैर सरकारी संस्थाओं का भी सहयोग लिया जाएगा। केंद्रीय स्तर पर यह एक पहचान आंकड़ा कोष होगा जो आंकड़ों और रजिस्ट्रारों के नेटवर्क का प्रबंधन करेगा।

● ***यूआईडी संख्या कैसे जारी की जाएगी?***

किसी भी नागरिक को पंजीकरण एजेंसी में पहले आवेदन करना होगा और निर्धारित प्रपत्र को भरकर ज़मा करना होगा। इसमें जो जानकारियां मांगी जाएंगी उनको भरकर देना होगा। साथ ही संबंधित दस्तावेज़, फ़ोटोग्राफ़ और दसों उंगलियों के चिह्न तथा दोनों आंखों की पुतलियों की स्कैनिंग कराकर देनी होगी। यह जानकारी रजिस्ट्रार के माध्यम से यूआईडी के केंद्रीय डाटाबेस को भेजी जाएगी। जहां यह एक ऐसी प्रक्रिया से गुज़रेगी जिससे यह पता चल सकेगा कि कोई दोबारा तो आवेदन नहीं कर रहा है। इसका अर्थ यह है कि किसी भी व्यक्ति को यूआईडी संख्या तभी दी जाएगी जब उससे संबंधित जानकारियां आंकड़ा कोष में पहले से मौजूद नहीं होंगी। यदि आंकड़ा कोष में जानकारी होगी तो उसका आवेदन निरस्त कर दिया जाएगा। पुनरावृत्ति को निष्प्रभावी बनाने की इस प्रक्रिया से आवेदनकर्ता की पहचान संख्या वास्तव में अनन्य होगी और इससे धोखाधड़ी पर रोक लगेगी। यदि आंकड़ा कोष में कोई ग़लत जानकारी भरी गई है या कोई व्यक्ति अपने बारे में पहले दी गई जानकारी में कोई परिवर्तन करना चाहता है तो यह काम एक निर्धारित प्रक्रिया के जरिये करना होगा। इस कार्यक्रम में विकलांगों को भी शामिल किया जाएगा और जीव संख्या प्रणाली इस प्रकार तैयार की जाएगी कि इस तरह के लोगों को भी इस सुविधा का लाभ मिले। जिन व्यक्तियों के हाथ या उंगलियां नहीं होंगी उनकी पहचान स्थापित करने के लिए केवल फोटो लिए जाएंगे और उनकी विशिष्टता की पहचान के लिए किसी चिह्न का निर्धारण किया जाएगा। बच्चों को 18 वर्ष की आयु तक हर पांच वर्ष में अपनी जीवसंख्या को अद्यतन कराना होगा। उसके बाद उनकी जीवसंख्या में स्थिरता आ जाएगी।

● ***यूडीआईडी संख्या कैसी जारी की जाएगी?***

इस प्रक्रिया के अंतर्गत किसी व्यक्ति की जीवसंख्या की प्रमाणिकता का निर्धारण ऑन लाइन पद्धति से होगा। एक-एक व्यक्ति की जीवसंख्या का ऑन लाइन मिलान, यूआईडी आंकड़ा कोष में पहले से मौजूद जीवसंख्या से किया जाएगा। प्रमाणीकरण प्रक्रिया का उत्तर 'हां' अथवा 'ना' में दिया जाएगा।

● ***परियोजना के अंतर्गत वंचितों का समावेश किस प्रकार सुनिश्चित किया जाएगा?***

वंचितों का समावेश यूआईडी परियोजना का एक प्रमुख उद्देश्य है, क्योंकि इन्हीं लोगों को अपनी पहचान साबित करने में सबसे अधिक कठिनाई होती है और इसलिए उन्हें तमाम सुविधाओं और कार्यक्रमों का लाभ नहीं मिल पाता। यह सुनिश्चित करने के लिए इस तरह के हर ज़रूरतमंद व्यक्ति को यूआईडी संख्या मिल सके, परियोजना पर रजिस्ट्रारों के उस नेटवर्क के माध्यम से काम किया जाएगा जो स्थानीय स्तर पर लोगों से सीधा संपर्क पहले से ही बनाए हुए हैं। इसके अतिरिक्त इस परियोजना से उन स्वयंसेवी/ग़ैर सरकारी संस्थाओं को भी जोड़ा जाएगा जो समाज के वंचित वर्ग, महिलाओं और बच्चों के कल्याण के लिए काम कर रही हैं।

● ***आंकड़ा कोष कितना सुरक्षित होगा?***

यूआईडी आंकड़ा कोष की सुरक्षा शारीरिक और इलेक्ट्रॉनिक पद्धति से कुछ चुनिंदा व्यक्तियों द्वारा की जाएगी, जिन तक पहुंचना लोगों के लिए आसान नहीं होगा। यूआईडी कर्मचारियों के अनेक सदस्यों के लिए भी उन तक पहुंचना सरल नहीं होगा। कूटांकण (इंक्रिप्शन) की सर्वोत्तम पद्धति से उन जानकारियों को सुरक्षित रखा जाएगा। जानकारियों के आदान-प्रदान की पूरी जानकारी कंप्यूटर में रखी जाएगी।

● ***इस परियोजना पर क्रियान्वयन की संस्थागत संरचना कैसी है?***

सरकार ने योजना आयोग के अंतर्गत एक संबद्ध कार्यालय के तौर पर भारतीय विशिष्ट पहचान पत्र प्राधिकरण का गठन किया है। प्राधिकरण के अध्यक्ष श्री नंदन निलेकणी हैं, जो इसके अध्यक्ष हैं। यह प्राधिकरण इस परियोजना के लिए कानूनी, तकनीकी और संस्थागत ढांचे का विकास और कार्यान्वयन करेगा। ❑

मानसून सत्र में कई वित्तीय विधेयक

वित्तीय विधेयकों के मामले में संसद का मानसून सत्र काफी महत्वपूर्ण होने जा रहा है। सरकार इस सत्र में वस्तु व सेवा कर (जीएसटी) के लिए संविधान में संशोधन और नई प्रत्यक्ष कर संहिता (डीटीसी) को कानून बनाने संबंधी विधेयक लाने पर विचार कर रही है। इसके साथ ही वह यूलिप स्कीमों के नियमन का अधिकार कानूनी तौर पर बीमा नियामक इरडा के हाथों में देने संबंधी विधेयक भी लाने जा रही है।

यूनिट लिंक्ड पॉलिसी यानी यूलिप स्कीमों को लेकर बाजार नियामक सेबी और इरडा के बीच हुए विवाद के बाद सरकार ने एक अध्यादेश के जरिये बीमा नियामक को यह अधिकार सौंपा था। अब इस अध्यादेश को कानून में बदलने के लिए विधेयक लाने का फैसला हुआ है। हालांकि इस अध्यादेश को लेकर रिजर्व बैंक (आरबीआई) अपनी आपत्ति जता चुका है। केंद्रीय बैंक का कहना है कि सरकार नियमन के मामले में इस तरह दखल देकर रेगुलेटरों के विवाद सुलझाने के लिए बनी समिति को नजरअंदाज कर रही है। रिजर्व बैंक की आपत्तियों पर वित्त सविच अशोक चावला का कहना है कि आरबीआई ने अपनी बात कह दी है। वित्त मंत्रालय इस पर विचार कर रहा है। लेकिन यह तय है कि इस विधेयक को संसद में पेश किया जाएगा।

जीवन बीमा कंपनियों द्वारा चलाई जा रही यूलिप स्कीमों को लेकर भारतीय प्रतिभूति व नियंत्रण बोर्ड (सेबी) और बीमा नियामक व विकास प्राधिकरण (इरडा) के बीच हुए विवाद के बाद केंद्र ने अध्यादेश जारी किया था। इस पर अपनी आपत्तियां जताने के लिए आरबीआई के गवर्नर डी. सुब्बाराव पिछले दिनों वित्तमंत्री से भी मिले थे। सुब्बाराव ने वित्तमंत्री से अध्यादेश पर पुनर्विचार करने की सिफारिश की थी।

मौजूदा व्यवस्था में सभी रेगुलेटरों के बीच विवादों को निपटाने के लिए रिजर्व बैंक की अध्यक्षता में एक उच्चस्तरीय समन्वय समिति बनी हुई है। इसमें वित्तीय क्षेत्र के सभी नियामक व वित्त मंत्रालय के अधिकारी सदस्य हैं। रिज़र्व बैंक को लग रहा है कि अगर सरकार रेगुलेटरों के झगड़े में इस तरह कानूनी प्रस्ताव लाएगी तो इस समिति की प्रासंगिकता ही समाप्त हो जाएगी।

उद्योग चैंबर सीआईआई के एक कार्यक्रम में राजस्व सचिव सुनील मित्रा ने बताया कि सरकार जीएसटी और डीटीसी के विधेयकों को भी संसद के मानसून सत्र में ही पेश करने पर विचार कर रही है। जीएसटी और डीसीसी दोनों को ही पहली अप्रैल, 2011 से लागू किया जाना है। जीएसटी कानून के मसौदे में बाकी रह गई अड़चनों को दूर करने के लिए बुधवार को प्रणब मुखर्जी राज्यों के वित्त मंत्रियों के साथ मुलाकात भी कर रहे हैं। सहमति बनने के बाद जीएसटी लागू करने के लिए संसद में विधेयक लाया जाएगा।

प्रत्यक्ष कर कोड और वस्तु एवं सेवा कर लागू करने के लिए जरूरी संविधान में संशोधन का बिल के मानसून सत्र में पेश होना तय दिख रहा है।

राजस्व सचिव सुनील मित्रा ने कहा कि 'हमें उम्मीद है कि डीटीसी बिल और संविधान में संशोधन का बिल मानसून सत्र में पेश किया जाएगा। वित्त मंत्री प्रणव मुखर्जी ने जीएसटी लागू करने के लिए जरूरी संविधान में संशोधनों पर विचार-विमर्श के लिए राज्यों के वित्त मंत्रियों के साथ बैठक की है। जीएसटी लागू होने के बाद केंद्रीय स्तर पर उत्पाद शुल्क और सेवा कर समाप्त हो जाएगा और राज्य स्तर पर वैल्यू एडेड टैक्स (वैट) और कुछ स्थानीय उपकर समाप्त हो जाएंगे। इससे देशभर में वस्तुओं और सेवाओं का बाजार बनाने में मदद मिलेगी।

जीएसटी लागू करने में पहले ही एक वर्ष की देर हो चुकी है। यह अब एक अप्रैल, 2011 में लागू होना है। लेकिन इसके लिए कर के ढांचे और संविधान में महत्वपूर्ण बदलावों पर केंद्र और राज्यों के बीच सहमति बननी जरूरी है। अगर बैठक में मतभेद सामने आते हैं तो नये कर को तय समय सीमा पर लागू करने के साथ ही संविधान में संशोधन का रास्ता मुश्किल हो जाएगा।

श्री मित्रा ने बताया, जीएसटी के सिलसिले में सूचना प्रौद्योगिकी प्रणाली का मुद्दा काफी महत्वपूर्ण है। नंदन नीलेकणी बैठक में एक प्रस्तुति देंगे। हमें पैन आधारित पंजीकरण के लिए एक साझा पोर्टल को लेकर महत्वपूर्ण फैसला लेने की जरूरत होगी। वित्तमंत्री इससे पहले ज्यादातर राज्यों के मुख्यमंत्रियों से मुलाकात कर जीएसटी जल्द लागू करने की जरूरत पर जोर दे चुके हैं। जीएसटी लागू होने के बाद राज्यों को राजस्व के संभावित नुक़सान की एवज़ में राहत पैकेज़ देने पर भी उच्चाधिकार प्राप्त समिति विचार-विमर्श करेगी। जीएसटी के लिए रास्ता आसान करने के उद्देश्य से केंद्र संविधान में मौजूदा सूचियों-केंद्रीय सूची, राज्य सूची और समवर्ती सूची में बदलाव करने पर विचार कर रहा है। ❑

जगजगी केंद्रों से सबके लिए शिक्षा

● सुजाता राघवन

शिक्षा के अधिकार कानून के जरिये जहां समाज के सभी वर्गों को शिक्षा सुविधाएं उपलब्ध कराने की कोशिशें की जा रही हैं, वहीं उत्तर बिहार के सीमांत जिले सीतामढ़ी में महिला समाख्या कार्यक्रम के अंतर्गत जगजगी केंद्र नारी शिक्षा प्रसार में महत्वपूर्ण भूमिका अदा कर रहे हैं। इन केंद्रों को बिहार शिक्षा परियोजना के अंतर्गत प्रोत्साहित किया जा रहा है।

इन केंद्रों की स्थापना उस ज़मीनी हक़ीक़त के ज़वाब में की गई जिसमें सैकड़ों छोटी बालिकाओं को स्कूल व्यवस्था में कोई जगह नहीं मिलती थी। इसके परंपरागत और दकियानूसी कारण बताए जाते थे जिनमें गरीबी और बालिका शिक्षा को लेकर पुरानी विचारधारा का घालमेल था। संभवत: लोग महिलाओं की गृहलक्ष्मी के रूप में ही कल्पना करते थे और यही कारण है कि उन्हें शिक्षित करने की ज़रूरत नहीं समझी जाती थी। जगजगी केंद्रों की स्थापना से इस समय सीतामढ़ी के 13 प्रखंडों में लगभग 230 केंद्र चल रहे हैं। व्यावहारिक रूप में हर गांव में एक केंद्र काम कर रहा है और बालिकाओं को ज्ञान के प्रकाश से आलोकित कर रहा है। वैसे भी, जगजगी का मतलब है जगमग रोशनी।

जगजगी केंद्रों की अपनी कोई इमारत नहीं होती। एक तरह से ये समुदाय के लिए हमेशा अपने दरवाज़े खुले रखते हैं। पंचायत भवन या किसी मकान के एक कमरे में अथवा खुले आसमान के नीचे इनकी कक्षाएं लग जाती हैं। यही कारण है कि लोग स्वाभाविक रूप से इन केंद्रों को समुदाय से जुड़ा पाते हैं और पुराने ज़माने से चली आ रही बालिकाओं की शिक्षा के बारे में विचारधारा और पूर्वाग्रह इन्हें प्रभावित नहीं करते।

जगजगी केंद्रों को बिहार शिक्षा परियोजना से विभिन्न मदों के अंतर्गत एक तय रक़म मिलती है। दरी, गिलास, पानी के जग आदि बुनियादी चीज़ें ख़रीदने के लिए उन्हें एकबारगी 2,075 रुपये मिलते हैं। इसी तरह साल में एक बार ब्लैकबोर्ड, चॉक, रंगीन पेंसिलें और चार्ट पेपर आदि ख़रीदने के लिए 3,075 रुपये की राशि मिलती है। हर केंद्र में एक शिक्षक होता है जिसे हर महीने 1,000 रुपये मिलते हैं। ये केंद्र इस राशि का इस्तेमाल करके अपनी गतिविधियां चलाते हैं और उन्होंने बालिका शिक्षा के प्रति ज़बरदस्त रचनात्मक रवैया दिखाया है।

जगजगी केंद्र इन अर्थों में भी अनोखे हैं कि उनकी कोई लंबी-चौड़ी योजनाएं नहीं हैं बल्कि वे स्थानीय बालिकाओं की ज़रूरतों के अनुसार चलते हैं और उनकी स्कूली ज़रूरतें पूरी करते हैं। इन केंद्रों में आने वाली अधिकांश बालिकाओं के माता-पिता खेतिहर मज़दूर हैं और उनके विचार में इन लड़कियों का जन्म घरेलू कामक़ाज़ निपटाने, छोटे बच्चों की देखभाल करने, घास काटने और मवेशियों की देखभाल करने के लिए होता है। लेकिन वे लड़कों को स्कूल भेजने के पक्षधर हैं और उनके लिए इस इलाक़े में अनेक प्राथमिक और माध्यमिक स्कूल खुले हुए हैं। इन केंद्रों के खुलने से पहले इलाक़े की बालिकाओं का निरक्षर रहते हुए किशोरावस्था में पहुंच जाना आम बात थी और उनका विकास वैसा ही माना जाता था जैसे गांव के आसपास जंगली घास का उगना।

जगजगी केंद्रों में शिक्षा का परंपरागत तरीक़ा अपनाने के बजाय एक नया तरीक़ा इस्तेमाल किया गया। इसमें इन बालिकाओं को उनके सहज परिवेश के अनुकूल सीखने के अवसर दिए जाते हैं। यह ऐसी शिक्षा व्यवस्था है जिसमें शब्द, संकेत और अक्षरों को उनके दैनिक जीवन से जोड़कर सिखाया जाता है। अक्षर ज्ञान कराते समय शिक्षक उनके प्रति रचनात्मक रवैया अपनाते हैं और परिवेश में मौजूद चीज़ों और परिस्थितियों से शिक्षा को जोड़ देते हैं। उदाहरण के लिए घर-परिवार सिखाते समय वे सिर्फ़ घ और प जैसे अक्षरों का ही ज्ञान नहीं कराते, बल्कि संयुक्त परिवार, उसमें बुजुर्गों की महत्ता, हर सदस्य की भूमिका, सह-अस्तित्व और एक-दूसरे के प्रति सम्मान की भी शिक्षा दी जाती है। पढ़ाई के दौरान हर छात्रा को विचार प्रकट करने का मौका दिया जाता है। इस तरह से उन्हें सिर्फ़ अक्षर ज्ञान ही नहीं कराया जाता, बल्कि इन शब्दों के पीछे के निहितार्थ की भी जानकारी दी जाती है।

इस प्रकार की शिक्षा व्यवस्था की खूबसूरती यह है कि यह अव्यावहारिक और परंपरागत सिद्धांतों पर आधारित नहीं है, बल्कि इन बच्चियों को शिक्षा व्यवस्था की मुख्यधारा में लाने का प्रयास भी है। इन केंद्रों में बालिकाओं को कक्षा-5 स्तर तक की शिक्षा दी जाती है और

उन्हें माध्यमिक स्कूल में दाखिला लेने के क़ाबिल बनाया जाता है।

अशोगी गोट गांव की रेणु कुमारी 18 वर्ष की है और वह इन केंद्रों में पढ़ी हुई छात्राओं की जीती-जागती मिसाल है। राम भरोसे के 6 बच्चों में से एक रेणु कुमारी पहले खेत में मज़दूर के रूप में काम करती थी और उसके परिवार में इससे पहले किसी बालिका ने शिक्षा नहीं पाई थी। जब वह 12 वर्ष की थी तो एक दिन किसी अन्य गांव की एक परिचित बालिका जगजगी केंद्र से आई और उसने रेणु को अपने अनुभव बताए तथा यह भी जानकारी दी कि वहां बच्चे क्या-क्या सीखते हैं। साथ ही, उसने रेणु के माता-पिता से उसे इस केंद्र में भेजने का अनुरोध किया। वह बालिका रेणु और उसकी मां को जगजगी केंद्र ले गई और वहां की व्यवस्था दिखाकर उसके पिता और भाइयों को भी समझाया। पहले ये सारे लोग लड़कियों को स्कूल भेजने के ख़िलाफ़ थे। लेकिन धीरे-धीरे उन्होंने विचार बदल दिया और रेणु के जीवन से एक नये अध्याय की शुरुआत हुई। उसके जीवन से अज्ञान का अंधेरा छंट गया और ज्ञान का प्रकाश आया।

अब रेणु एक होनहार छात्रा है और महिला समाख्या कार्यक्रम के समन्वयकर्ताओं ने उसके अंदर की प्रतिभा को विकसित होने में मदद की है। उसे गांव में चल रहे मध्याह्न भोजन योजना की देखरेख करने का काम सौंपा गया है। अब रेणु स्कूल के अंतिम वर्ष की छात्रा है और वह शिक्षा पूरी करके बीए की डिग्री लेना चाहती है। इसके बाद उसका रेल विभाग में नौकरी ढूढने अथवा शिक्षिका बनने का इरादा है। इस समय वह अपने परिवार में एकमात्र शिक्षित व्यक्ति है और उसे सभी सम्मान की नज़रों से देखते हैं। वह भी पारिवारिक मामलों में वही जिम्मेदारी निभा रही है जो एक शिक्षित व्यक्ति को निभाना चाहिए।

सीतामढ़ी में रेणु जैसी सैकड़ों बालिकाओं का जीवन इन केंद्रों के कारण बदल गया है। उनकी अपनी पहचान है और वे विचारधारा में बदलाव लाकर अब अपना जीवन खुद संवारना चाहती हैं। वे ऐसे लोग हैं जिन्हें जगजगी केंद्रों की भूमिका और महिला समाख्या के प्रयासों से लाभ मिला है। रेणु का कहना है कि महिला समाख्या ने उसके लिए शिक्षा के दरवाज़े खोल दिए और इसी कारण अब वह अपने पैरों पर खड़ी होने लायक बन गई है।

जगजगी केंद्रों से पढ़कर निकली अन्य बालिकाएं भी ऐसे काम कर रही हैं जिन पर इन केंद्रों को गर्व हो सकता है। स्कूली शिक्षा पूरी करके अब यहां से निकली बालिकाएं बीए और एमए कक्षाओं में दाख़िला ले रही हैं। पहले उनके लिए ऐसा करना असंभव था। अब वे विभिन्न क्षेत्रों में जाकर नये व्यवसाय शुरू कर सकती हैं तथा लोगों को यह दिखा सकती हैं कि शिक्षा वास्तव में व्यक्ति को क्या-से-क्या बना सकती है। शिक्षा के जरिये ही कोई अंधकार से निकल कर प्रकाश के पथ पर आगे बढ़ सकता है। शिक्षा के द्वारा इस क्षेत्र की बालिकाएं अब अलग-थलग नहीं हैं और गरीबी और तंगहाली से निकलकर अब वे अपनी नियति की निर्माता बन रही हैं। ❑

(लेखिका चरखा फ़ीचर्स **की कार्यक्रम प्रबंधक एवं संपादक हैं)**

इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

भूगोल विभाग

रोजगार उन्मुखी एक वर्षीय स्नातकोत्तर डिप्लोमा पाठ्यक्रम में प्रवेश

पर्यटन प्रशासन

उपर्युक्त रोजगार उन्मुखी पाठ्यक्रम में प्रवेश सम्मिलित प्रवेश परीक्षा और साक्षात्कार के आधार पर किया जायेगा। मान्यता प्राप्त विश्वविद्यालयों के स्नातक (किसी भी विषय में) प्रपत्र में आवेदन कर सकते हैं जो कि **''पाठ्यक्रम समन्वयक पर्यटन प्रशासन''** के पक्ष में भारतीय स्टेट बैंक विश्वविद्यालय शाखा को देय **350/- रु0** डिमाण्ड ड्राफ्ट अथवा **300/- रु0** नगद भुगतान कर भूगोल विभाग से **25 जून, 31 अगस्त , 10** के बीच प्राप्त कर उन्हें प्रस्तुत करें। आवेदन पत्र हमारी वेबसाइट से भी डाउनलोड किया जा सकता है और विधिवत् भरा आवेदन पत्र मात्र **350/- रु0** के डिमाण्ड ड्राफ्ट के साथ भेजें। आगे के विवरण के लिए **डा0 सतीश कुमार सिंह, मो0: 09451846139, 09450618665** पर सम्पर्क करें अथवा **www.allduniv.ac.in** पर लॉग ऑन कर प्राप्त कर सकते हैं।

प्रोफेसर : बी.एन. सिंह :- पाठ्यक्रम समन्वयक पर्यटन प्रशासन में स्नातकोत्तर डिप्लोमा
भूगोल विभाग, इलाहाबाद विश्वविद्यालय, इलाहाबाद

YH-8/10/2

टूथब्रश में ही टूथपेस्ट

उद्यमी और नवाचारी अगस्त्य नारायण शुक्ल ने एक ऐसा टूथब्रश तैयार किया है जिसमें टूथपेस्ट लगाने की प्रक्रिया का भी समावेश है। टूथपेस्ट को ब्रश के हिस्से में भर दिया जाता है और उसको अलग से लगाने की आवश्यकता नहीं होती।

दिल्ली में जन्मे अगस्त्य बचपन में अपने पिता के कारख़ाने में उनकी मदद किया करते थे। जब वे 12 वर्ष के थे अपने एक मित्र की भागीदारी में उन्होंने अपना खुद का एक छोटा-सा कारख़ाना खोला। उनकी उम्र के अन्य बच्चे जब पढ़ने और खेलकूद में व्यस्त रहते, वे अपने कारख़ाने में पुर्ज़े बना रहे होते थे।

उनके जीवन की दिशा सन् 1985 में घटित एक त्रासदी के कारण बदल गई। उनके पिता की असामयिक मृत्यु हो गई और उन पर कर्ज़ का भार आन पड़ा। कर्ज़दारों के पैसे लौटाने के लिए उन्हें अपना कारख़ाना बेचना पड़ा। सारा कर्ज़ चुकाने के बाद बचे हुए कुल 20 हज़ार रुपये लेकर 15 वर्षीय अगस्त्य ने जीविकोपार्जन के लिए मुंबई जाने का निर्णय लिया। परंतु तीन साल तक छोटे-मोटे काम करने और अपने आप को वहां ज़माने की असफल कोशिश के बाद उन्होंने वापस दिल्ली लौटकर अपने पिता के कारख़ाने को ही फिर से चलाने का फ़ैसला किया। कारख़ाना कुछ दिनों तक चला, परंतु पर्यावरण संबंधी सरकार के कठोर नियमों के कारण उन्हें शीघ्र ही कारखाना बंद करना पड़ा। तब उन्होंने कम लागत वाली एक इकाई लगाई जिसमें वे अपने

सभी उत्पाद दूसरों से बनवाया करते थे, ताकि लागत भी कम हो और ज़ोखिम भी कम रहे। अपने इस नये क़ारोबार में उन्हें अनेक नये-नये विचार आते। उनके पास काफ़ी वक़्त रहता था। वे अपने खाली समय में कुछ नया बनाने, कुछ नया करने के बारे में सोचा करते, ऐसा कुछ जो अच्छा क़ारोबार दे सके और दमदार व्यापार में बदल सके।

विचारों का प्रवाह

वर्ष 2001 में उन्होंने *नवभारत टाइम्स* में एक विज्ञापन देखा जिसमें राष्ट्रीय नवाचार पुरस्कारों के लिए प्रविष्टियां आमंत्रित की गईं थीं। कौतूहल से भरे उनके दिमाग में खट-खट शुरू हो गई और अनेक विचार आने लगे। उनके दिमाग में जो विचार आए उनमें सार्वजनिक कार्यक्रमों (समारोहों) के दौरान इत्र छिड़कने वाला यंत्र, कसरत करते समय पैदा होने वाली ऊर्जा को काम में लाना, ध्वनि नियंत्रण यंत्र, भोजन वितरण करने वाले वाहनों में भोजन को गर्म रखने के लिए वाहन के एग्ज़ॉस्ट से निकलने वाली ऊर्जा का उपयोग और वायु के दबाव का संकेत देने के लिए एक वायु वाहन डैशबोर्ड बनाने का विचार शामिल था।

आगे जाकर उन्होंने केरोसीन स्टोव के लिए एक सेफ्टी वाल्व का पहला नमूना तैयार कर उसका परीक्षण किया। यह सेफ्टी वाल्व स्टोव को फटने से बचाने के लिए बनाया गया था। इस प्रकार की दुर्घटनाओं में देशभर में अनेक लोग या तो मारे जाते हैं या फिर अपंग हो जाते हैं। उनके दिमाग में एक और विचार रेल लाइनों को पार करते हुए लोगों को रेलगाड़ियों से कुचलने अथवा कटने से बचाने का आया। उन्होंने जो समाधान सुझाया, वह था मानव रहित रेल फाटकों पर इस्तेमाल किए हुए काले इंजन तेल में भिगोए हुई रस्सियों के ज़ाल को लटकाना। जो भी व्यक्ति रेल पटरियों को कूदकर पार करने की कोशिश करता उसे काले तेल में भीगी रस्सियों के जाल से होकर गुज़रना पड़ता और इससे उसके कपड़े ख़राब होते। इस कारण लोग जल्दबाज़ी में रेल पटरियों से पार जाने में कतराने लगे।

जून 2003 में रेल से यात्रा करते हुए उनका ध्यान लोगों को अपने सामान में टूथब्रश और टूथपेस्ट खोजने पर गया। उन्होंने सोचा क्या टूथब्रश को सीधे टूथपेस्ट ट्यूब में ही नहीं लगाया जा सकता? वापस लौटने पर उन्होंने ऐसे किसी उत्पाद के बारे में सोचना शुरू किया। उन्होंने ब्रश के रेशे, उसकी बाहरी

आकृति और हत्थे का अध्ययन किया। फिर उन्होंने सामग्रियों के विकल्पों का अध्ययन किया और दिसंबर 2003 में उसका पहला नमूना (प्रोटोटाइप) तैयार कर लिया, जिसमें उन्होंने ब्रश के सिरे को एक सुई में लगाया। अपनी ख़ोज के बारे में आशंकित उन्होंने अपने मित्रों और संबंधियों के सामने उसका प्रदर्शन किया। उन्होंने प्रोत्साहित करते हुए उन्हें अपना काम जारी रखने को कहा। तब उन्होंने इसे विद्यार्थियों के समूह और हनी-बी नेटवर्क के सदस्यों के सामने प्रदर्शित किया जिनके प्रोत्साहन से उनके हौसले में और भी बढ़ोतरी हुई। अपनी डिज़ाइन में और भी सुधार करते हुए उन्होंने एक ऐसा टूथब्रश तैयार किया जिसके हत्थे में ही टूथपेस्ट के ट्यूब को समाहित कर दिया गया था। टूथपेस्ट को अपना चरित्र बनाए रखने और मांग के अनुसार ब्रश के रेशों के सिरे में बनाए गए एक छेद से पेस्ट निकालने के लिए उन्हें कड़ी मेहनत करनी पड़ी।

खोखले रेशों वाले ब्रश के सामने के हिस्से की सही डिज़ाइन तैयार करना उनके लिए काफ़ी कठिन था। क्योंकि इंजेक्टिंग मशीनों के बारे में उन्हें कोई ज्ञान नहीं थी। वर्ष 2003 में शुरू किए गए उनके इस प्रयास को सही आकार ग्रहण करने में दो वर्ष से अधिक समय और क़रीब तीन लाख रुपये लग गए तब जाकर प्रौद्योगिकी का सही ढंग से विकास हो सका और वाणिज्यिक नमूने तैयार किए जा सके।

टूथपेस्ट निकालने वाला टूथब्रश

इस टूथब्रश में टूथपेस्ट ट्यूब को इस प्रकार जोड़ा गया था कि एक ही चीज़ से दोनों काम हो सकते थे। पेस्ट को अलग से निकालकर ब्रश में लगाने की आवश्यकता नहीं थी। इसमें टूथब्रश के निचले सिरे पर लगी एक घुंडी को घुमाया जाता है जिससे पेस्ट की ट्यूब पर दबाव पड़ता है और वह ऊपर जाकर ब्रश के बालों वाले सिरे पर निकल आता है। यह टूथब्रश खाद्योपयोगी सामग्री का बना होता है। सभी हिस्से अलग कर उनको फिर से जोड़ा जा सकता है। आशय यह है कि टूथब्रश का उपयोग अधिक समय तक हो सके और जब आवश्यकता हो उसमें टूथपेस्ट भरा जा सके।

इस प्रकार के टूथब्रश कुछ फेरबदल के साथ पहले से उपलब्ध हैं, परंतु वे मौजूदा ख़ोज से काफ़ी भिन्न हैं। उनका डिज़ाइन और निर्माण बिल्कुल अलग क़िस्म का है। ख़ोजकर्ता श्री शुक्ल को इस टूथब्रश का पेटेंट 2007 में मिल गया है। उसे राष्ट्रीय नवाचार कोष (एनआईएफ) से सूक्ष्म उपक्रम नवाचार कोष (एमवीआईएफ) भी प्राप्त हुआ है।

अगस्त्य विभिन्न दुकानों के माध्यम से 125 रुपये प्रति ब्रश की दर से 250 से अधिक ब्रश बेच चुके हैं। इसमें सुधार के लिए उन्हें उपभोक्ताओं के सुझाव भी प्राप्त हुए हैं। बच्चों में इस टूथब्रश के लोकप्रिय होने की व्यापक संभावना है क्योंकि वे कौतूहल से भरे होते हैं और इसकी अनूठी डिज़ाइन से उनकी उत्सुकता बनी रहती है। अक़सर यात्रा करने वाले लोगों के लिए भी यह बहुत उपयोगी है। ❑

YH-8/10/5

वक़्फ़ बोर्ड ने लिखी मेवात में नयी तालिम की इबारत

मुसलिम समुदाय में तालीम और आधुनिकता के लिए जागरुकता आ रही है। इंजीनियरिंग कॉलेज़ व अन्य साधनों के जरिये नयी सोच और तालीम की फैल रही है रोशनी

नसीम अहमद ने अपने समुदाय की भलाई के लिए जो सपना देखा था वह हक़ीक़त में बदलने वाला है। जामिया हमदर्द के आईएएस स्टडी सर्किल के रहबर रहे नसीम को इस बात का पक्का यक़ीन है कि पिछड़ा कहा जाने वाला मुसलिम समुदाय सही अवसरों का फ़ायदा उठाकर अपनी क़िस्मत बदल सकता है। उनकी इस बात में दम है। इस साल आईएएस में अव्वल आने वाले शाह फ़ैसल उनके अध्ययन केंद्र की देन हैं।

अब नसीम नये लक्ष्य की ओर देख रहे हैं। अब वे हरियाणा वक़्फ़ बोर्ड के सदर हैं और नये अवसर पैदा करना चाहते हैं जो मुसलिम युवाओं को नयी राह दिखा सके। इसी मक़सद से बोर्ड मेवात जिले के पल्ला गांव में इंजीनियरिंग कॉलेज खोलने जा रहा है। मेवात क्षेत्र मुसलिम बहुल है जहां पुरुषों की साक्षरता दर बीस फ़ीसदी है जबकि महिलाएं महज़ पांच प्रतिशत साक्षर हैं। बहरहाल, अठारह एकड़ में फैले मेवात इंजीनियरिंग कॉलेज़ की शुरुआत गत जुलाई माह में हुई है। इसके पहले सत्र में 240 छात्र होंगे। मुसलिम छात्रों के लिए 42.5 सीटें आरक्षित होंगी।

हालांकि मेवात जैसे पिछड़े इलाक़े में इस तरह के संस्थान दुर्लभ हैं, लेकिन वक़्फ़ बोर्ड की इस पेशक़दमी का लोगों ने दिल खोलकर स्वागत किया है। असल में लोगों के सहयोग से ही बोर्ड का रास्ता आसान हुआ। वक़्फ़ बोर्ड के पास तेरह एकड़ की ज़मीन थी, लेकिन इंजीनियरिंग कॉलेज़ खोलने के लिए इतनी जगह नाकाफ़ी थी। नियमानुसार इसके लिए चौदह एकड़ ज़मीन ज़रूरी होती है। लेकिन पड़ोस के गांवों ने छह एकड़ ज़मीन दान देकर संकट दूर कर दिया। वैसे, इस ज़मीन की क़ीमत छह करोड़ बताई जाती है।

इतना ही नहीं, जब इंजीनियरिंग कॉलेज़ का काम शुरू हुआ तो लोगों ने बढ़-चढ़कर इमदाद की पेशकश की। स्थानीय ठेकेदार शम्सुद्दीन ने बाज़ार भाव से काफ़ी कम दर पर हॉस्टल बनाकर स्वयंसेवी किरदार अदा किया। ऐसे में भला सियासतदां कैसे पीछे रहते। इलाक़े के युवा विधायक आफ़ताब अहमद ने सरकारी मंजूरी में आने वाली अड़चनें दूर करने का ज़िम्मा निभाया तथा महिला छात्रावास के लिए अपना एक घर दिया।

पल्ला के सरपंच फ़ारूक कहते हैं कि सभी गांव वाले इस कॉलेज़ की अहमियत समझते हैं। वे कहते हैं, ''उचित अवसरों की कमी के कारण ज्यादातर छात्र दसवीं के बाद पढ़ाई छोड़ देते हैं। इस वक़्त क्षेत्र में एक भी इंजीनियरिंग कॉलेज़ नहीं है। जो निज़ी कॉलेज़ आ रहे हैं, उनकी फ़ीस चुकाना ग़रीब जनता के बूते से बाहर है।''

कॉलेज़ के पहले सत्र में इंजीनियरिंग की चार शाखाओं– कंप्यूटर साइंस, इलेक्ट्रॉनिक्स, इलेक्ट्रिकल और मैकेनिकल की पढ़ाई होगी। इसके लिए चौबीस संकाय सदस्य नियुक्त किए गए हैं जिनमें चार महिलाएं हैं। अन्य पदों के लिए भी स्क्रीनिंग चल रही है। कॉलेज के निदेशक डॉ. मुन्ना खान कहते हैं कि ''वक़्फ़ बोर्ड मदरसों को मदद देते रहे हैं, जहां छात्रों को पारंपरिक तालीम दी जाती है और इसमें मज़हबी रंग भी होता है। लेकिन हम इंजीनियरिंग कॉलेज़ व अन्य साधनों के जरिये नयी सोच और तालीम की रोशनी फैलाना चाहते हैं।'' मुन्ना खान आईआईटी, दिल्ली से पीएचडी हैं।

वर्ष 1972 बैच के आईएएस अधिकारी और हमदर्द मुसलिम विश्वविद्यालय के पूर्व उपकुलपति नसीम अहमद कहते हैं कि आईएएस में शाह फ़ैसल की क़ामयाबी ने उनके इस यक़ीन को पक्क़ा कर दिया है कि मुसलिम समुदाय में तालीम और आधुनिकता के लिए जागरुकता आ रही है। असल में समुदाय को सरकारी सहायता के भरोसे ही नहीं रहना चाहिए। अपने भले के लिए खुद कोशिश करनी होगी। लोगों को सुधार के प्रति अपनी इच्छा और झुकाव को दिखाना होगा। कॉलेज़ के व्याख्याता चौबीस वर्षीय आक़िब ज़ावेद कहते हैं कि मैं इस क्षेत्र में बड़ा हुआ हूं और इस क्षेत्र की शिक्षा संबंधी ज़रूरतों को समझता हूं। जावेद अपनी नौकरी छोड़कर पढ़ाने आए हैं। वे कहते हैं कि इलाक़े और समुदाय को उनके जैसे लोगों की मदद की दरक़ार है। अगर हम लोगों की मदद नहीं करेंगे तो कौन करेगा? ❑

मनरेगा में सामाजिक अंकेक्षण

● अरविंद प्रकाश

भारत के ग्रामीण क्षेत्रों में लघु एवं सीमांत कृषकों, खेतिहर मज़दूरों तथा अन्य श्रमिकों, शिल्पियों व विभिन्न सेवाएं देने वाले परिवारों का बाहुल्य है। इनमें से अधिकांश परिवार ग़रीबी रेखा के नीचे जीवनयापन कर जैसे-तैसे अपना पेट पालने वाले हैं। बढ़ती हुई ग्रामीण जनसंख्या को रोज़गार मुहैया कराने, ग़रीबी दूर करने, आर्थिक विषमता कम करने एवं बढ़ते शहरीकरण की समस्या का एकमात्र समाधान है गांवों में रोज़गार बढ़ाना। परिवार को अपनी बुनियादी ज़रूरतों की पूर्ति के लिए रोज़गार आवश्यक है। रोज़गार से अर्जित धन राशि से ही लोग अपने और अपने परिवार के लिए जीवन की मूलभूत सुविधाएं– रोटी, कपड़ा और मकान का प्रबंध कर सकते हैं। किसी भी राष्ट्र की समृद्धि का प्रतीक वहां के लोगों को उपलब्ध रोज़गार के अवसरों से होता है। जिस राष्ट्र के नागरिक जितनी अधिक संख्या में बेरोज़गार होंगे वह राष्ट्र उतना ही अधिक समस्याग्रत, बीमार व बेनूर होगा।

पूर्व में रोज़गार अवसरों के सृजन के लिए केंद्र सरकार एवं राज्य सरकारों द्वारा समय-समय पर अनेक श्रम साध्य कार्यक्रमों की शुरुआत की गई परंतु गांवों में बेरोज़गारी दूर करने में सफलता नहीं प्राप्त हो सकी। भारत में योजनागत विकास का यह अनुभव रहा है कि यद्यपि समाज के निम्न एवं पिछड़े वर्ग की विकास के मुख्यधारा से जोड़ने का अवसर सुलभ कराया गया था किंतु अशिक्षा, ग़रीबी एवं पिछड़ेपन के कारण वह न तो विकास प्रक्रिया को समझ सका न ही उसका लाभ ले सका। संपन्न वर्ग के द्वारा सदैव यह प्रयास किया गया कि पिछड़े को पिछड़ा बनाए रखा जाए। नौकरशाहों ने भी इसी वर्ग का साथ दिया। विभिन्न योजनाओं तथा कार्यक्रमों के अंतर्गत प्रचार-प्रसार प्राविधानित व्यवस्था का सदुपयोग नहीं किया गया। परिणामतः विकास कार्यों में जनसहभागिता नहीं हो सकी। भारत के 73वें संवैधानिक संशोधन के माध्यम से ग्रामीण इलाक़ों में पंचायती राज व्यवस्था सुदृढ़ करने का प्रावधान किया गया, ताकि विकेंद्रित नियोजन प्रणाली के माध्यम से ग्रामीण विकास किया जा सके। इस उद्देश्य से केंद्र सरकार द्वारा 2 फरवरी, 2006 में देश के चुने हुए 200 अति पिछड़े जनपदों में राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना लागू की गई। द्वितीय चरण में देश के 330 अन्य जनपदों को भी योजना में सम्मिलित किया गया तथा 1 अप्रैल, 2008 से रोज़गार गारंटी योजना को पूरे देश में चलाया जा रहा है जिसे 2 अक्तूबर, 2009 से केंद्र सरकार द्वारा नाम संशोधित करके राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना (नरेगा) से महात्मा गांधी राष्ट्रीय रोज़गार गारंटी योजना (मनरेगा) कर दिया गया है।

योजना के प्रभावी क्रियान्यवन और भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए योजना में जनजागरुता, जनसुनवाई, सामाजिक अंकेक्षण तथा सूचना

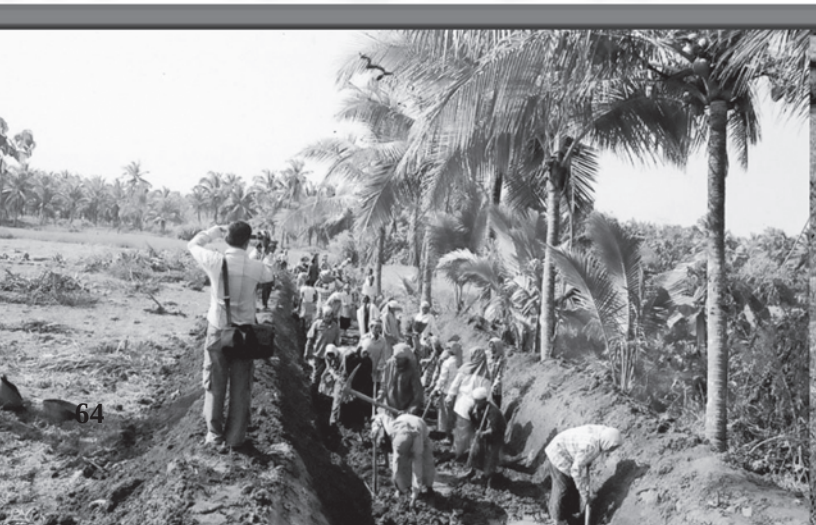

के अधिकार अधिनियम के अंतर्गत निर्माण के संदर्भ में समस्त जानकारियां लेते रहने का प्रावधान किया गया है।

सामाजिक अंकेक्षण की प्रक्रिया

- सार्वजनिक धन के सही उपयोग, टिकाऊ एवं उपयोगी कार्य आदि की जांच का हक़ जनता को है। जनता जब चाहे ख़र्चे का हिसाब एवं कार्यों की गुणवत्ता की जांच कर सकती है। यही कार्य सामाजिक अंकेक्षण कहलाता है।
- सामाजिक अंकेक्षण करने के लिए लोगों में जागरुकता होना आवश्यक है, यह कार्य एक व्यक्ति द्वारा संभव नहीं है। ग्रामसभा इस कार्य के लिए उपयुक्त मंच है जहां जनसुनवाई के माध्यम से सामाजिक अंकेक्षण किया जा सकता है।
- सामाजिक अंकेक्षण के लिए जनता एवं प्रतिनिधि, सामाजिक एवं स्वयंसेवी संस्थाओं के कार्यकर्ता, विशेषज्ञ, अधिकारी आदि सभी पक्ष मिलकर प्रभावी ढंग से कार्यवाही कर सकते हैं।
- किसी सार्वजनिक कार्य पर प्रारंभ से ही पूरी नज़र रखने की आवश्यकता होती है। सामग्री, संख्या, वजन, नाप-तौल, सीमेंट, लोहा तथा सामग्री की गुणवत्ता आदि का पूरा विवरण रखा जाना आवश्यक है।
- मज़दूरी पर लगे लोग, कार्य दिवस, भुगतान कार्यों का अनुमापन, स्थान जहां से सामग्री की ख़रीद की गई है– इस प्रकार का विवरण तैयार किया जाना चाहिए। बाज़ार में प्रचलित दरें, वस्तुओं की गुणवत्ता, काम में ली गई वस्तु की मात्रा आदि का तुलनात्मक अध्ययन किया जाना चाहिए।
- दस्तावेज़ी प्रमाण के साथ जनता एवं अधिकारियों के समझने योग्य विवरण तैयार कर सूचनाओं को ग्रामसभा में जनसुनवाई के दौरान प्रमाणों के साथ प्रस्तुत किया जाना चाहिए।
- कार्य करवाने के लिए जिम्मेदार कर्मचारियों, अधिकारियों जनप्रतिनिधियों द्वारा की गई अनियमितताओं का उत्तर देने का मौका देना चाहिए।
- अनियमितताओं को सूचीबद्ध कर संबंधित विभागों को कार्यवाही के लिए प्रेषित किया जाना चाहिए एवं संलिप्तता सिद्ध होने पर कठोर दंड का प्रावधान किया जाना चाहिए।

सामाजिक अंकेक्षण एवं पारदर्शिता

- प्रत्येक कार्य के संपादन, पर्यवेक्षण, प्रगति तथा गुणवत्ता का आकलन करने के लिए प्रत्येक ग्रामस्तर पर एक सर्तकता समिति का गठन किया जाना चाहिए।
- योजना के प्रभावी क्रियान्वयन तथा भ्रष्टाचार से मुक्त रखने के लिए राजस्व ग्रामस्तर, न्याय पंचायतस्तर, विकास खंड स्तर तथा जिलास्तर पर सशक्त निगरानी तंत्र की व्यवस्था का प्रावधान योजना के अंतर्गत किया जाना चाहिए।
- ग्रामसभा की प्रत्येक त्रैमासिक बैठक में रोज़गार की मांग, पंजीयन, जॉबकार्ड, कार्यरत लोगों की सूची अथवा ऐसे लोगों की सूची जिन्हें रोज़गार प्राप्त नहीं हुआ आदि रिकार्ड के आधार पर जानकारियां देनी चाहिए।
- भुगतान की राशि, अकुशल मानव श्रम, कुशल श्रमिक, कार्य पूर्ण करने में लगा समय, सामग्री, सृजित मानव दिवस, सतंर्कता एवं मूल्यांकन समिति की रिपोर्ट, मस्टररोल की प्रतियां ग्राम सभा के समक्ष प्रस्तुत की जानी चाहिए।
- योजना के अंतर्गत लाभान्वित परिवारों का वर्गवार अर्थात अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति, अन्य पिछड़ा वर्ग तथा सामान्य वर्ग के लोगों को उपलब्ध कराए गए रोज़गार दिवसों की जानकारी खुली बैठक में दी जानी चाहिए।
- शारीरिक रूप से विकलांगों एवं महिलाओं को उपलब्ध रोज़गार दिवसों की जानकारी भी होने वाली खुली बैठक में दी जानी चाहिए।
- स्कीम के अंतर्गत प्रत्येक जनपद में समस्त कार्यों के भौतिक एवं वित्तीय अंकेक्षण की व्यवस्था वित्तीय वर्ष की समाप्ति पर किया जाना आवश्यक है।
- योजना के अंतर्गत कार्यस्थल पर प्रदान की जाने वाली सुविधाओं जैसे दवा, पालना घर, पीने के पानी की व्यवस्था तथा शेड इत्यादि की जानकारी तथा सुविधा उपलब्ध करवाने में व्यय धनराशि की जानकारी भी खुली बैठक में दी जानी चाहिए।
- ऑडिट में पाई गई गंभीर अनियमितताओं की सूचना जिला कार्यक्रम समन्वयक और ग्रामीण रोज़गार गारंटी परिषद को भेजना चाहिए तथा परिषद द्वारा गंभीर अनियमितताओं के निराकरण हेतु प्रभावी तंत्र की स्थापना के साथ संबंधित कर्मचारियों एवं अधिकारियों को कठोरतम दंड देना चाहिए जिससे ग़रीबों के कल्याण हेतु चलाई जा रही योजनाओं को प्रभावित करने का साहस अन्य कर्मचारी तथा अधिकारी न कर सकें।
- योजना के अंतर्गत कराए जा रहे कार्यों में गुणवत्ता आकलन एवं संधारण हेतु राज्य एवं जिलास्तर पर पैनल तैयार करने का प्रावधान किया जाना चाहिए तथा पैनल में योग्य एवं ईमानदार अधिकारियों की नियुक्ति की जानी चाहिए।
- सूचना के अधिकार के अंतर्गत अधिनियम के प्रावधानों एवं राज्य सरकारों द्वारा जारी निर्देशों के अनुसार प्रत्येक स्तर पर आवेदन कर्ता को योजना के संबंध में सूचनाएं उपलब्ध करवाने का प्रावधान किया गया है।
- समस्त आलेख जैसे जॉब कार्ड, मस्टररोल, कार्यों का विवरण आदि को कंप्यूटराइज्ड किया जाना चाहिए। यह विवरण इंटरनेट पर उपलब्ध रहने से पारदर्शिता रहेगी।

मनरेगा के कार्यों के चयन की प्राथमिकताएं

मनरेगा के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्र में अकुशल श्रमिकों को सौ दिन के रोज़गार उपलब्ध कराने के साथ-साथ गांवों में स्थायी परिसंपत्तियों के सृजन को महत्व दिया गया है। योजना के अंतर्गत किए जाने वाले कार्यों की प्राथमिकताएं निम्नलिखित हैं :

- रोज़गार गारंटी अधिनियम में यह प्रावधान है कि राज्य रोज़गार गारंटी परिषद प्राथमिकता के आधार पर एक वित्तीय वर्ष में किए जाने वाले कार्यों की सूची तैयार करे।
- योजना के अंतर्गत कार्यों को उनकी वरीयता के आधार पर क्रियान्वित किया जाएगा।
- जल-संरक्षण और जल-संग्रहण के कार्य योजना के अंतर्गत किए जाएंगे।
- सूखा नियंत्रण के कार्य, जिनमें वन विकास एवं वृक्षरोपण के कार्य सम्मिलित हैं।
- सिंचाई नहरें (जिनमें माइनर और माइक्रो सिंचाई के कार्य सम्मिलित हैं)।
- अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के परिवारों के भूमि स्वामियों की भूमि के लिए सिंचाई सुविधाओं के कार्य करवाना।
- परंपरागत जलस्रोत्रों का जीर्णोद्धार, नवीकरण

तथा तालाब से गाद (मिट्टी) निकालने का कार्य सम्मिलित है।

- भूमि विकास के कार्य करवाना, बाढ़ नियंत्रण एवं बाढ़ बचाव कार्य में जल अवरुद्ध क्षेत्र में जल निकासी के कार्य।
- अन्य कोई कार्य जिन्हें केंद्र सरकार राज्य सरकार के परामर्श से अधिसूचित करें।
- सूची में वर्णित कार्यों के अंतर्गत सृजित संपत्ति के रखरखाव पर भी होने वाला व्यय इस योजना के अंतर्गत किया जाएगा।
- योजना के अंतर्गत कराए जाने वाले कार्यों में श्रम एवं सामग्री का क्रमशः 60:40 का अनुपात रहेगा। बड़ी परियोजना में यह अनुपात जिलास्तर पर सुनिश्चित किया जाएगा।
- विभिन्न प्रकार के निर्माण कार्यों के मॉडल डिज़ाइन ग्रामीण कार्य निदेशिका में वर्णित जिलावार निर्धारण समिति द्वारा अनुमोदित दरों के अनुसार कार्यों के अनुमान तैयार कर कार्य संपादित कराए जाने का प्रावधान है।

मज़दूरी भुगतान एवं बेरोज़गारी भत्ता

योजना के अंतर्गत श्रमिकों को मज़दूरी का भुगतान न्यूनतम मज़दूरी अधिनियम के आधार पर पुरुष एवं महिला श्रमिकों को एक समान किए जाने का प्रावधान है। मज़दूरी के भुगतान में पूरी पारदर्शिता बरतने के उद्देश्य से पारिश्रमिक का भुगतान बैंक खाता अथवा डाकघर खाता के माध्यम से किया जाता है। काम करने के इच्छुक व्यक्ति द्वारा काम की मांग किए जाने के 15 दिन के अंदर रोज़गार नहीं उपलब्ध कराया जाता है तो उसे बेरोज़गार भत्ता प्रदान किया जाए साथ ही यदि श्रमिक को उसके आवास से 5 किमी की परिधि से बाहर रोज़गार उपलब्ध कराए जाने की स्थिति में उसे परिवहन और निर्वाह व्यय के लिए 10 प्रतिशत अतिरिक्त मज़दूरी देने का प्रावधान कार्यक्रम में किया गया है। बेरोज़गारी भत्ते की दरें राज्य सरकारों द्वारा राज्य रोज़गार गारंटी परिषद की सलाह से समय-समय पर अधिसूचित किए जाने की व्यवस्था है। इस मद की धनराशि एक वित्तीय वर्ष में 30 कार्य दिवस हेतु न्यूनतम मज़दूरी दर के एक चौथाई से कम नहीं होगी तथा शेष अवधि के लिए न्यूनतम मज़दूरी दर से आधी से कम नहीं होनी चाहिए। रोज़गार उपलब्ध नहीं कराए जाने की स्थिति में संबंधित व्यक्ति को बेरोज़गारी भत्ते का भुगतान सुनिश्चित करने का दायित्व कार्यक्रम अधिकारी का होगा तथा इस मद की राशि इस योजना में राज्य के 10 प्रतिशत अंशदान में चुकाए जाने की व्यवस्था की गई है।

महात्मा गांधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार गारंटी योजना के लाभ

- मनरेगा के प्रभावी क्रियान्वयन से ग्रामीण परिवारों की न्यूनतम वार्षिक आय सुनिश्चित कर जीवनस्तर में सुधार किया जा सकता है।
- इस योजना के संचालित होने से गांवों से शहरों की ओर काम की खोज में होने वाले पलायन को गांव में ही कार्य उपलब्ध कराकर कम करने में सफलता मिल रही है।
- योजना के अंतर्गत होने वाले कार्यों में 33 प्रतिशत महिलाओं की सहभागिता सुनिश्चित होने से ग्रामीण माहिलाओं में आर्थिक सशक्तीकरण को बल मिलेगा।
- योजना के अंतर्गत ग्रामीण क्षेत्रों में स्थायी परिसंपत्तियों का सृजन हो रहा है।
- गांवों में पहले से निर्मित कार्यों की मरम्मत, पानी के स्रोतों, तालाबों आदि से गाद निकालना एवं उनके रखरखाव के कार्य नियमित रूप से किया जा सकेगा।
- रोज़गार की गारंटी से ग्रामीण समाज का शक्ति समीकरण बदलेगा, शक्ति को सामाजिक क्षमता निर्माण के आधार पर देखा जा सकेगा।
- योजना के क्रियान्वयन से असंगठित मज़दूरों में मोल-तोल की क्षमता में वृद्धि होगी साथ वे न्यूनतम मज़दूरी एवं सामाजिक सुरक्षा जैसे कई महत्वपूर्ण अधिकारों के लिए लड़ सकेंगे।
- योजना के अंतर्गत वृक्षारोपण कार्यक्रम चलाकर वन्य क्षेत्रफल को बढ़ाने तथा पर्यावरण असंतुलन को कम करने में सफलता मिलेगी।
- ग्रामीण क्षेत्रों में योजना के अंतर्गत मत्स्य पालन, फूलों की खेती तथा औषधि उत्पादन आदि कार्यक्रमों को सम्मिलित करके ग्रामीण परिवारों लाभान्वित किया जा सकता है।
- देश के विभिन्न क्षेत्रों में आर्थिक विषमता एवं राज्यों की सत्ता के विरोध में बनने वाले आतंकवादी संगठन एवं उनके द्वारा फैलाए जाने वाले आतंक पर भी योजना के क्रियान्वयन से रोक लगेगी।

ग्रामसभा में जनसुनवाई के माध्यम से सामाजिक अंकेक्षण बराबर चलते रहना चाहिए। सामाजिक अंकेक्षण से पारदर्शिता आएगी। इसमें सूचना का अधिकार पारदर्शिता लाने में मदद करेगा। निश्चित रूप से योजना के अंतर्गत ऐसे प्रावधान किए गए हैं कि किसी स्तर पर गड़बड़ी होने की संभावना न रहे लेकिन चालाक और भ्रष्ट कर्मचारियों और अधिकारियों द्वारा योजना में गड़बड़ियों के प्रमाण मिले हैं। इसको रोकने के लिए क्रियान्वयन तंत्र को मज़बूत बनाने की आवश्यकता है। किसी भी स्तर पर अनियमितताओं को रोकने के लिए व्यक्तियों एवं अधिकारियों को सतर्क रहने की आवश्यकता है। योजना के अंतर्गत राशि पंचायतों को सीधे ही मिल रही है। धन के सही उपयोग के लिए प्रशासनिक ढांचा भी मज़बूत करना होगा। राज्य सरकारों को चाहिए कि जिन राज्यों में पंचायतों का ढांचा बिल्कुल नहीं है उसे निर्मित करने के साथ ही जिन राज्यों में पंचायतों का ढांचा कमज़ोर है उसे सशक्त किया जाए। यदि ग्राम सभा में सभी लोग मिलकर सही निर्णय करें और साथ ही प्रभावी निगरानी प्रणाली को विकसित किया जाए तो अगले कुछ वर्षों में ही गांवों का कायाकल्प किया जा सकेगा। ❑

(लेखक फ़ीरोज गांधी कॉलेज, रायबरेली के अर्थशास्त्र विभाग में रीडर हैं।

ई-मेलः ganga.verma@yahoo.co.in)

सामुदायिक रेडियो और विकास

● शैलेंद्र प्रताप

भारत विविधताओं का देश है। यह विविधता जीवन के प्राय: हर क्षेत्र में, परिलक्षित होती है। सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक, शैक्षणिक, यहां तक कि भौगोलिक विविधता इसका सौंदर्य है। इस विविधता का परिणाम बहुपक्षीय रहा है। फलस्वरूप कृषि, शिक्षा, स्वास्थ्य, पारंपरिक रोज़गार, हस्तशिल्प व्यवसाय आदि में विविधता के साथ-साथ देश-काल आधारित परिस्थितिजन्य विषमता भी दिखलाई पड़ती है। इन विषमताओं को दूर करने और समाज के हर तबके को विकास के समान अवसर उपलब्ध कराने तथा उन्हें विकास की मुख्यधारा से जोड़ने हेतु आवश्यक है कि सूचना समर्थित विकास की प्रक्रिया लोकतांत्रिक एवं स्थानीय ज़रूरतों के मुताबिक संचालित हो ताकि लक्ष्य समुदाय की पहचान एवं विकास कार्यक्रम में सामुदायिक भागीदारी सुनिश्चित हो सके। इस प्रक्रिया में सूचना एवं जनसंचार माध्यमों की भूमिका अति महत्वपूर्ण हो सकती है। वर्तमान में ऐसा ही एक माध्यम सामुदायिक रेडियो के रूप में हमारे सामने आया है जो मीडिया में लोकतांत्रिक भागीदारी का सर्वोत्तम उदाहरण बन सकता है।

सामुदायिक रेडियो

आकाशवाणी के बहुजन हिताय, बहुजन सुखाय की अवधारणा एवं व्यावसायिक एफएम चैनलों की गला काट प्रतियोगिता से अलग सामुदायिक रेडियो क्षेत्रीय तथा स्थानीय आवश्यकताओं के अनुरूप विकासपरक सूचना संप्रेषण का सशक्त माध्यम है। इसका प्रसारण क्षेत्र सीमित, कार्यक्रम की संरचना स्थानीयता के अनुरूप तथा उद्देश्य विकास समर्थक होता है। प्रसारित होने वाले कार्यक्रमों का स्वरूप गैर-व्यावसायिक तथा विकास के मुद्दों यथा- कृषि, वानिकी, पशुपालन, विद्युत, जल व्यवस्था, आपदा प्रबंधन, शिक्षा, स्वास्थ्य, स्थानीय कौशल आदि को समर्पित होता है। स्थानीय बोली-भाषा में कार्यक्रमों का प्रसारण तथा स्थानीय लोगों का कार्यक्रम निर्माण में भागीदारी सामुदायिक रेडियो की अन्य विशेषताएं हैं। मनोरंजन, विज्ञापन एवं समाचार के कार्यक्रम सामुदायिक रेडियो में लगभग प्रतिबंधित होते हैं। दरअसल सामुदायिक रेडियो का पूरा ज़ोर सामयिक, प्रासंगिक एवं स्थानीय मुद्दों पर विकास समर्थित संचार करना होता है।

सामुदायिक रेडियो को वैधानिक बनाने की प्रक्रिया का प्रारंभ '90 के दशक के मध्य से हुआ। फरवरी 1995 में सर्वोच्च न्यायालय ने अपने एक अति महत्वपूर्ण निर्णय में 'हवाई तरंगों' को सार्वजनिक संपत्ति घोषित कर दिया। इस निर्णय ने भारत में सामुदायिक रेडियो का रास्ता खोल दिया। किंतु प्रारंभिक विकास काल में सामुदायिक रेडियो के संचालन की अनुमति सिर्फ़ शैक्षणिक संस्थानों को ही दी गई थी।

भारत का पहला सामुदायिक रेडियो अन्ना एफएम के नाम से 1 फरवरी, 2004 को प्रारंभ हुआ। यह कैंपस रेडियो शैक्षणिक एवं मल्टी मीडिया शोध केंद्र (ईएमआरसी) द्वारा संचालित होता है। इसके सभी कार्यक्रम अन्ना विश्वविद्यालय में मीडिया साइंसेज के विद्यार्थियों द्वारा निर्मित और प्रसारित किए जाते हैं। इस विकास क्रम में 16 नवंबर, 2006 को भारत सरकार ने सामुदायिक रेडियो संचालन हेतु नये दिशानिर्देशों जारी किए जिसके अंतर्गत गैर-सरकारी संगठन तथा अन्य नागरिक संस्थाओं को भी सामुदायिक रेडियो संचालन की सशर्त अनुमति प्रदान की गई है। वर्तमान में तक़रीबन 4,000 सामुदायिक रेडियो केंद्रों के संचालन हेतु आवेदन सूचना एवं प्रसारण मंत्रालय के पास विचाराधीन हैं। इनमें मुख्यतया शिक्षा क्षेत्र, कृषि क्षेत्र (कृषि विश्वविद्यालय एवं कृषि विज्ञान केंद्र) एवं गैर-सरकारी संगठनों के आवेदन हैं।

30 नवंबर, 2008 तक देश में कुल 38 सामुदायिक रेडियो केंद्र कार्य कर रहे थे। इनमें से 36 केंद्र शैक्षणिक संस्थानों तथा 2 केंद्र गैर सरकारी संगठनों द्वारा संचालित हैं। गैर-सरकारी संगठन क्षेत्र का पहला सामुदायिक रेडियो 15 अक्तूबर, 2008 को 'संघम रेडियो' के नाम से पास्तापुर गांव, मेडक जनपद, आंध्र प्रदेश में शुरू किया गया। इसका संचालन डेक्कन डेवलपमेंट सोसायटी (डीडीएस) द्वारा किया जा रहा है, जिसका उद्देश्य इस क्षेत्र के 75 गांवों की महिला समूहों को विकासपरक सूचना उपलब्ध कराना है। गैर-सरकारी क्षेत्र का एक अन्य सामुदायिक रेडियो मध्य प्रदेश के जनपद ओरछा में 'बुंदेलखंड रेडियो' के नाम से संचालित है। यह सामुदायिक रेडियो डेवलपमेंट

आलटरनेटिव्स (डीए) नामक संगठन द्वारा चलाया जा रहा है। जिसका उद्देश्य बुंदेलखंड क्षेत्र के लोगों के विकास के विकल्पों की तलाश में सहायता हेतु सूचनाएं उपलब्ध कराना है।

नयी सामुदायिक रेडियो नीति के अंतर्गत कोई संवैधानिक संस्था बिना किसी लाभ के उद्देश्य से केंद्र की स्थापना एवं संचालन कर सकता है। किसी व्यक्ति, राजनीतिक दल या उनसे जुड़े लोग, अपराधी, प्रतिबंधित संगठनों को सामुदायिक रेडियो के संचालन से दूर रखा गया है। सामुदायिक रेडियो की प्रसारण क्षमता 100 वाट (ईआरपी) तथा प्रसारण क्षेत्र लगभग 12 किलोमीटर की परिधि तक होता है। सामुदायिक रेडियो के लिए आवश्यक है कि कुल कार्यक्रमों का 50 प्रतिशत स्थानीय ज़रूरतों को समर्पित हो तथा उसका प्रसारण स्थानीय बोली-भाषा में ही किया जाए। हालांकि अभी शीघ्र ही सरकार ने यातायात, मौसम, क्षेत्रीय त्योहारों, जल एवं विद्युत, आपदा चेतावनी, शैक्षणिक गतिविधियों एवं स्वास्थ्य जागरुकता से जुड़े समाचारों के प्रसारण की अनुमति सामुदायिक रेडियो केंद्रों को दी है। साथ ही साथ हर घंटे 5 मिनट तक के विज्ञापनों के प्रसारण की छूट भी सरकार ने केंद्रों को दी है। किंतु प्रायोजित कार्यक्रमों, केंद्र एवं राज्य सरकारों द्वारा प्रायोजित कार्यक्रमों को छोड़ अन्य की मनाही है।

विकास और सामुदायिक रेडियो

विकास की क्रिया में जनसंचार माध्यमों का योगदान सर्वविदित है। 70 के दशक की हरित क्रांति इसका सशक्त उदाहरण है। विकास की प्रक्रिया को गतिशील तथा प्रभावी बनाने हेतु आवश्यक है कि सूचनाओं का संप्रेषण स्थानीय ज़रूरतों के अनुसार हो ताकि प्रेषक और प्रापक के बीच लोकतांत्रिक भागीदारी सुनिश्चित की जा सके। सामुदायिक रेडियो में प्रभावी एवं सार्थक सूचना संप्रेषण का सशक्त माध्यम बनने की पूरी क्षमता है। खासतौर से ग्रामीण क्षेत्रों में सामुदायिक रेडियो एक बहुउद्देश्यीय विश्वसनीय माध्यम के रूप में कार्य कर सकता है।

भारत एक कृषि प्रधान देश है। लगभग 65 प्रतिशत लोगों को प्रत्यक्ष या परोक्ष रूप से कृषि आधारित रोज़गार मिलता है। ऐसे समर्थ क्षेत्र के उन्नयन तथा कृषि विविधीकरण के विकास आदि में सामुदायिक रेडियो की अग्रणी भूमिका हो सकती है। फसलों की बुवाई का समय, बीज शोधन, प्रजाति चयन, कृषि रक्षा कार्य, भंडारण, विपणन आदि ऐसे अनेक कार्य हैं जिनमें सामुदायिक रेडियो सटीक एवं सामाजिक सूचनाओं के द्वारा किसानों की सहायता कर सकता है। इसके अतिरिक्त अनाज भंडारण का वैज्ञानिक तरीक़ा (एक अनुमान के अनुसार लगभग 10 प्रतिशत अनाज उचित भंडारण के अभाव में ख़राब हो जाता है), मौसम की पूर्व जानकारी, बाज़ार भाव आदि की सूचना कृषकों के लिए अत्यंत उपयोगी हो सकती है।

बढ़ती जनसंख्या का दबाव तथा उसके अनुपात में चिकित्सा सुविधाओं की कमी, शिक्षा दर में कमी, ऋतु आधारित संक्रमण तथा बीमारियां, टीकाकरण आदि कितने ही विषय हैं जहां सामुदायिक रेडियो सामयिक सूचना प्रसारित कर स्वस्थ जागरुकता ला सकता है।

तटीय क्षेत्रों में चक्रवात, तूफान, सुनामी आदि की पूर्व चेतावनी देकर सामुदायिक रेडियो द्वारा जान-माल की होने वाले अपूरणीय क्षति को बचाया जा सकता है। इसके अतिरिक्त शिक्षा, रोज़गार, ग्रामीण शिल्प, पशुपालन, पर्यावरण जागरुकता जैसे कार्यों में भी सामुदायिक रेडियो की भूमिका निश्चय ही प्रभावी हो सकती है।

निष्कर्ष के रूप में हम यह कह सकते हैं कि सही मुद्दों की पहचान तथा उनका स्थानीय स्तर पर सामुदायिक निराकरण विकास के लिए आवश्यक होता है। सामुदायिक रेडियो इस पैमाने पर सही उतरता है। ज़रूरत इस बात की है कि इसके व्यापक उपयोग हेतु लाइसेंस व्यवस्था में उदारीकरण लाया जाए सामुदायिक रेडियो के व्यापक प्रचार-प्रसार हेतु सरकार को आगे आना चाहिए। ❑

(लेखक पत्रकारिता एवं जनसंचार विभाग, इलाहाबाद में परामर्शदाता हैं।
ई-मेलः sail1970@rediffmail.com)

जीएसटी के लिए तीन-स्तरीय ढांचे का प्रस्ताव

वित्तमंत्री प्रणब मुखर्जी ने वस्तु एवं सेवा कर (जीएसटी) के लिए तीन-स्तरीय कर ढांचे का ख़ाका पेश करते हुए माल पर 20 फीसदी, सेवाओं पर 16 और आवश्यक वस्तुओं पर 12 फीसदी की रियायती कर दर रखे जाने का प्रस्ताव किया है। अप्रत्यक्ष कर प्रशासन को सरल और पारदर्शी बनाने के लिए इस क्षेत्र में जीएसटी लाने की तैयारी की जा रही है। जीएसटी लागू होने के बाद केंद्रीय स्तर पर लगने वाला उत्पादन शुल्क, सेवा कर और राज्यों में लगने वाला मूल्य वर्धित कर इसमें समाहित हो जाएंगे।

वित्तमंत्री ने राज्यों के वित्त मंत्रियों के साथ नयी दिल्ली में हुई बैठक में जीएसटी दरों के बारे में यह प्रस्ताव रखा। प्रस्ताव के मुताबिक जीएसटी से मिलने वाला राजस्व केंद्र और राज्यों के बीच बराबर-बराबर बांटा जाएगा। माल पर लिए जाने वाले 20 फीसदी जीएसटी में 10 फीसदी केंद्र को और दस फीसदी संबंधित राज्य को मिलेगा। सेवा कर के मामले में भी प्राप्त राजस्व को केंद्र और राज्य के बीच बराबर-बराबर बांटा जाएगा।

वित्तमंत्री ने जीएसटी व्यवस्था में जहां माल पर 20 फीसदी की अधिकतम दर का प्रस्ताव किया है, वहीं आवश्यक वस्तुओं के लिए इसे 12 फीसदी रखने का प्रस्ताव है। आवश्यक वस्तुओं पर मिलने वाले कर को भी केंद्र और राज्य के बीच बराबर-बराबर बांटा जाएगा। वस्तुओं के मामलों में दोहरे कर ढांचे को विस्तार देते हुए वित्तमंत्री ने कहा कि इसकी अधिकतम प्रभावी दर 15 फीसदी के आसपास बैठेगी, जो व्यापार और उद्योग के लिए स्वीकार्य स्तर है। उन्होंने कहा कि माल और ज़रूरी वस्तुओं के इस दोहरे कर ढांचे से औसतन प्रभावी दर 15 फीसदी तक बैठेगी।

मुखर्जी ने राज्यों को भरोसा दिलाया कि केंद्र ज़रूरत और आपसी सहमति से तैयार फार्मूले के आधार पर मुआवज़ा राशि बढ़ाएगा। यानी 13वें वित्त आयोग ने इस बारे में जो सिफारिश की है, केंद्र ने उससे ज्यादा राशि मुआवज़े के रूप में देने का संकेत दिया है। केंद्र और राज्यों के बीच राजस्व बंटवारे पर सुझाव देने वाले वित्त आयोग ने कहा कि जीएसटी लागू होने की स्थिति में राज्यों को होने वाले किसी भी संभावित घाटे को भरपाई के लिए केंद्र को 50 हज़र करोड़ रुपये की राशि अलग रखनी चाहिए। ❑

स्वच्छता अभियान तथा निर्मल ग्राम

● राजेश्वरी

स्वच्छता मानव विकास की मूलभूत पहचान है। यह उसकी सामर्थ्य का प्रतीक है तथा उसकी प्रगति का पैमाना भी है। स्वच्छता एक मूलभूत मौलिक अधिकार व दायित्व दोनों है। 21वीं शताब्दी में जहां तकनीकी विकास व खुशहाली के नये आयाम खोजे जा रहे हैं, वहीं विश्व के किसी भाग में या समाज के किसी हिस्से में अस्वच्छ जल व अस्वच्छता जनित कारणों से बड़े पैमाने पर मृत्यु होना एक विडंबना ही है। 'स्वच्छता' क्या है? यह एक वृहत शब्द है जिसमें व्यक्तिगत सफ़ाई, मनुष्य व पशुओं के मल का समुचित निपटान, कूड़ा-करकट का उचित प्रबंधन, जल निकासी का उचित प्रबंध व आरोग्य युक्त जीवन में सहायक साफ़-सुथरा निर्मल वातावरण आदि सम्मिलित हैं। विश्व स्वास्थ्य संगठन (डब्ल्यूएचओ) के अनुसार, "स्वच्छता का अभिप्राय मनुष्य के स्वस्थ निर्वहन को प्रभावित करने वाले भौतिक पर्यावरण के उचित प्रबंधन से है।" अत: मोटे तौर पर यह कहा जा सकता है कि स्वच्छता में मानव व्यवहार तथा वातावरण को साफ़-सुथरा बनाए रखने के लिए भौतिक सुविधाएं, जैसे शौचालयों की व्यवस्था, बहते पानी की समुचित निकासी संबंधी व्यवस्था आदि शामिल हैं।

स्वच्छता की आवश्यकता : मानव विकास का सीधा संबंध उसकी रोगरहित दीर्घायु से है। अस्वच्छता मानव स्वास्थ्य व उसके विकास पर प्रतिकूल प्रभाव डालती है। यह अनेक बीमारियों की जन्मदाता है। असमय व बारंबार रोगों से ग्रस्त रहने से न केवल व्यक्तिगत व पारिवारिक परेशानियां बढ़ती हैं अपितु उसकी असमर्थतता से आर्थिक उत्पाकदता भी घटती है। इसके अतिरिक्त छोटी उम्र में रोगों से उनके समस्त शारीरिक विकास, मानसिक विकास आदि पर भी असर पड़ता है। इस प्रकार मानव विकास में खलल डालने वाला यह चक्र एक दुश्चक्र के रूप में पूरे समाज व राष्ट्र की उन्नति को प्रभावित करता है।

विश्व स्वास्थ्य संगठन के एक अनुमान के अनुसार प्रतिवर्ष लगभग 50 लाख लोगों की मानव मल जनित बीमारियों से मृत्यु हो जाती है तथा इनमें 5 वर्ष से कम उम्र के बच्चों की संख्या अधिक है। विकासशील देशों में यह स्थिति अधिक दयनीय है। डायरिया से होने वाली कुल मृत्यु का एक चौथाई भाग अकेले भारत में है। पोलियो जैसी बीमारी का विकसित देशों में नामोनिशान तक नहीं है। जबकि विश्व के आधे पोलियो ग्रस्त लोग भारत में हैं। यह तथ्य भी चौंकाने वाला है कि विश्व में लगभग 200 करोड़ जनसंख्या शौच सुविधाओं के बिना जीवनयापन करती है तथा उसकी एक बड़ी तादाद यानी 63 करोड़ लोग भारत में हैं। बिना शौच सुविधाओं के रहना अर्थात अपने आस-पास के वातावरण को दूषित करना या ऐसे वातावरण में रहना जहां हवा में लगातार कीटाणु हों व गंदगी में उन कीटाणुओं को पनपने के अवसर देना, लोगों का उनके संपर्क में आना तथा न चाहते हुए भी संक्रामक बीमारियों के घेरे में रहना इसका परिणाम है। शोध बताते हैं कि बहुत हद तक कुपोषण भी अस्वच्छता का परिणाम है। ऐसा इसलिए कि संक्रमित जल तथा अस्वच्छता से उत्पन्न आंत के कीड़ों के विषाणु भोजन के पोषक तत्वों को शरीर में अवशोषित नहीं होने देते, जिससे रोग अवरोधकता कम हो जाती है। परिणामस्वरूप बच्चों का भौतिक विकास नहीं हो पाता। भारत में विश्व की 19 प्रतिशत बाल जनसंख्या है तथा कुपोषण से पीड़ित कुल बालकों का एक चौथाई भाग भी भारत में ही है।

इस प्रकार इस संपूर्ण दुश्चक्र की सबसे महत्वपूर्ण कड़ी स्वच्छता है। यह कड़ी सबसे कमज़ोर भी है क्योंकि कम लागत यानी कुछ बुनियादी सुविधाओं तथा व्यवहार में बदलाव से इसको तोड़ा जा सकता है तथा इन बीमारियों के पूरे चक्र को ख़त्म किया जा सकता है। शोध दर्शाते हैं कि केवल शौचालयों की उपलब्धता व उपयोग से संक्रामक बीमारियों में लगभग 80 प्रतिशत तक की कमी लाई जा सकती है। यह भी ध्यान रहे कि भारत में इन संक्रमित बीमारियों से हुई मृत्यु का लगभग 16 प्रतिशत है।

प्राय: यह भी माना जाता है कि अस्वच्छता का प्रमुख कारण ग़रीबी है। ग़रीबी का दुश्चक्र व सुविधाओं का अभाव ही उपरोक्त बातों का मूल कारक है। लेकिन यह भ्रामक है। तथ्य यह है कि शौचालयों की उपलब्धता व इनके उपयोग का संपन्नता से अधिक संबंध नहीं है। विश्व स्तर पर भी यह देखा गया है कि कुछ राष्ट्र आर्थिक रूप से समृद्ध न होते हुए भी स्वच्छता में अग्रणी स्थान रखते हैं। भारत में भी

संपन्न कहे जाने वाले प्रांतों, जैसे गुजरात, महाराष्ट्र, हरियाणा, तमिलनाडु आदि के केवल 35 से 45 प्रतिशत घरों में ही शौचालयों की सुविधाएं हैं। निश्चय ही स्वच्छता लोगों की जागरुकता, अवधारणा व आदतों से जुड़ी है। आश्चर्यजनक तथ्य यह है कि हरियाणा जैसे समृद्ध प्रांत में भी 56 प्रतिशत घरों के लोग खुले में ही शौच जाते हैं। इससे उत्पन्न कीटाणु व वातावरण के दूषित होने की स्थिति का अनुमान ही भयावह है। अस्वच्छता की यह तस्वीर ग्रामीण व शहरी दोनों इलाक़ों में दयनीय है। यद्यपि ग्रामीण इलाक़ों में खुले स्थान अधिक होने और अशिक्षा, बीमारियों संबंधी जागरुकता कम होने के कारण स्वच्छता को दरकिनार कर दिया जाता रहा है। लेकिन शहरों में भी बेइंतहा गंदगी व्याप्त है, शहरों की स्थिति अपेक्षाकृत अधिक भयावह इसलिए भी है क्योंकि यहां जनसंख्या का घनत्व अधिक है, खुले स्थान न के बराबर हैं और ऐसे में थोड़ी लापरवाही से ही मलजनित बीमारियां महामारी का रूप ले सकती हैं। भारत निर्माण कार्यक्रम के तहत शक्तिशाली ग्रामीण भारत के विकास में स्वच्छता की महत्ता को समझा गया तथा इसके क्रियान्वयन में ग्राम पंचायतों की सक्रिय भागीदारी पर विशेष ज़ोर डाला गया। इसके अतिरिक्त इसकी नीतियों में महिलाओं की भागीदारी, स्कूलों में पढ़ रहे बच्चों के माध्यम से उनकी सहभागिता, आंगनबाड़ी कार्यकर्ताओं तथा अन्य स्वयंसेवी समूहों द्वारा जनसंख्या को जागरूक करने आदि संबंधी भागीदारी सम्मिलित है। इस अभियान की सफलता को पुरस्कृत निर्मल गांव के रूप में देखा जा सकता है। राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित आठ राज्यों के लगभग 1,600 गांव इस प्रयास के सफल उदाहरण हैं।

भारत निर्माण के तहत स्वच्छता अभियान की शुरुआत में विभिन्न राज्यों में सन् 2003-04 से हुई तथा 2005 में कुल 40 गांवों को निर्मल गांव घोषित किया गया जिसमें 26 गांव महाराष्ट्र व तमिलनाडु के थे। सन् 2006 में सम्मानित गांवों की संख्या 760 हो गई तथा इसमें भी 381 ग्राम पंचायतें महाराष्ट्र की थीं। सन् 2007 में 4,947 ग्राम पंचायतों को सम्मानित किया गया। इसमें महाराष्ट्र 1,974 ग्राम पंचायतों के साथ पहले, गुजरात 576, उत्तरप्रदेश 488 तथा पश्चिम बंगाल 475 निर्मल ग्राम पंचायतों के साथ दूसरे, तीसरे व चौथे स्थान पर थे। 2007 में हरियाणा के 60 ग्राम इस संदर्भ में राष्ट्रपति द्वारा सम्मानित किए गए। आज हरियाणा की लगभग 800 ग्राम पंचायतें इस स्वच्छता अभियान में सक्रिय भागीदारी व निर्मल ग्राम के रूप में पुरस्कृत हैं। यह सभी ग्राम पंचायतें इस बात की साक्षी हैं कि किसी कार्यक्रम की सफलता में आंगनबाड़ियों, स्कूलों, स्वयंसेवी समूहों आदि को एकजुट रखने के प्रयास व प्रशासनिक इच्छाशक्ति महत्वपूर्ण भूमिका अदा करती है। हरियाणा को अपने सभी आयामों में संपूर्ण विकास के लिए इन्हीं प्रयासों से सबक लेने की आवश्यकता है। ❑

(लेखिका भूगोल विभाग, कुरुक्षेत्र विश्वविद्यालय, कुरुक्षेत्र में प्राध्यापक हैं।
ई-मेल : rajeshwariku@gmail.com)

सदस्यता कूपन

नयी सदस्यता / नवीकरण / पता बदलने के लिए

(जो लागू होता हो उस पर '✓' का चिह्न लगाएं।)

मैं ..... (पत्रिका का नाम एवं भाषा) का ❑ वार्षिक (100 रुपये) ❑ द्विवार्षिक (180 रुपये)

❑ त्रिवार्षिक (250 रुपये) सदस्य बनने का इच्छुक हूं। डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर संख्या ..... तारीख .....

नाम .....

वर्ग ❑ विद्यार्थी ❑ शिक्षक ❑ संस्था ❑ अन्य

पता :.....

.....

.....

पिन .....

नवीकरण/पता बदलने के लिए कृपया अपनी सदस्य संख्या यहां लिखें

डिमांड ड्राफ्ट/भारतीय पोस्टल आर्डर/मनीआर्डर *'निदेशक, प्रकाशन विभाग'* के नाम से बनवाएं और कूपन के साथ इस पते पर भेजें :

व्यापार व्यवस्थापक (प्रसार) प्रकाशन विभाग,

पूर्वी खंड-IV, सातवां तल, रामकृष्णपुरम, नई दिल्ली-110066

वर्षा जल संचयन से रोकिए बरसात का पानी

● नरेन्द्र देवांगन

लगातार बढ़ते तापमान और घटते जल स्तर के कारण जल प्रबंधन अब आम जनता की व्यापक भागीदारी के बिना संभव नहीं है। शहरों और गांवों की अलग-अलग परिस्थितियों को देखते हुए पानी रोकने, जल संरक्षण और संवर्धन के अलग-अलग उपाय किए जा सकते हैं। बहुत से उपाय व्यक्तिगत स्तर पर किए जा सकते हैं और बहुत से उपाय ऐसे भी हैं, जिसके लिए सरकार की विभिन्न योजनाओं की मदद ली जा सकती है।

घरों, दफ़्तरों, सरकारी भवनों जैसे स्कूल, अस्पताल, छात्रावास आदि ऐसे स्थानों पर जहां अधिक खुली ज़मीन उपलब्ध नहीं है, वहां वर्षा जल संचयन ढांचा बनाए जा सकते हैं। ये ढांचे वर्षा जल को ज़मीन के भीतर ले जा सकते हैं और इस तरह भूजल को रिचार्ज करने में उपयोगी हैं। इससे भूजल का स्तर बढ़ाने में मदद मिलती है।

कितना पानी रोका जा सकता है वर्षा जल संचयन से : किसी क्षेत्र के ऊपर वर्षा के रूप में प्राप्त कुल जल उस क्षेत्र का वर्षाधन कहलाता है। इसमें से जल की वह मात्रा जिसका प्रभावी रूप से संचयन के लिए प्रयोग किया जा सकता है, जल संचयन क्षमता कहलाती है।

संचयन क्षमता से मतलब है किसी क्षेत्र में होने वाली बारिश के पानी की कितनी मात्रा का उपयोग संचयन के लिए किया जा सकता है, क्योंकि भाप बनने, बह जाने और पहली बारिश के पानी को संचयन क्षमता की गणना के समय निकाल दिया जाता है।

मान लीजिए किसी भवन की पक्क़ी छत का क्षेत्रफल 1,000 फीट (92.90 वर्गमीटर) है। किसी एक राज्य की औसत वार्षिक वर्षा 1,200 मिलीमीटर है। अत: 1 वर्ष में इकट्ठा किया जा सकने वाला जल, 100 वर्गमीटर की छत पर 1,200 मिलीमीटर ऊंचाई तक जल का आयतन इस प्रकार नापा जा सकता है :

छत का क्षेत्रफल

= 1,000 वर्गफीट (92.90 वर्गमीटर)

वर्षा जल की ऊंचाई

= 1,200 मिलीमीटर = 1.2 मीटर

अत: छत पर एकत्रित जल

= छत का क्षेत्रफल × वर्षा जल के आयतन की ऊंचाई

= 92.90 वर्गमीटर × 1.2 मीटर

= 111.48 घनमीटर

= 1,11,480 लीटर

इस तरह यह समझा जा सकता है कि वर्षा जल का 60 प्रतिशत ही प्रभावी रूप से संचयन के लिए उपयोग किया जा सकता है। 1,000 वर्गफीट की छत में वर्षा द्वारा एकत्रित जल से 66,888 लीटर जल संचयन के लिए वर्षभर में एकत्रित किया जा सकता है। इतना पानी प्रतिव्यक्ति प्रतिदिन 100 लीटर खपत के आधार पर 5 सदस्यों के परिवार के लिए साढ़े 4 माह के लिए पर्याप्त हो सकता है। इस गणना से यह समझा जा सकता है कि हम वर्षा जल संचयन प्रक्रिया अपना कर किस तरह अपनी ज़रूरत के पानी का इंतजाम कर सकते हैं।

ज़मीन की संरचना के अनुरूप ही वर्षा जल संचयन की संरचना बनवाएं : इस कार्य के लिए ज़मीन की संरचना को मुख्यत: 2 भागों में बांटा जाता है। पहला शैल एवं सैंड स्टोन क्षेत्र और दूसरा लाईम स्टोन क्षेत्र। इन दोनों स्थानों के लिए अलग-अलग तरह की वर्षा जल संचयन प्रणाली अपनाई जा सकती है।

पहला : शैल एवं सैंड स्टोन क्षेत्र के लिए :

कुएं द्वारा पुनर्भरण : यह विधि वहां उपयोगी है, जहां ज़मीन की उपलब्धता सीमित है। बारिश का पानी, छत में इकट्ठा होकर लगातार पहुंचने से बहाव द्वारा जमा होता है। यह पानी गाद मुक्त होना चाहिए। इस कूप को पानी की निकासी के लिए भी प्रयोग में लाया जा सकता है। यह उस क्षेत्र के लिए अधिक उपयोगी है जहां जल स्तर नीचे हो तथा चिकनी मिट्टी की अधिकता हो। ऐसी संरचनाओं की संख्या इमारतों के चारों ओर के सीमित क्षेत्र तथा छत के ऊपर के क्षेत्रफल को ध्यान में रखते हुए निश्चित की जा सकती है।

कुआं सह नलकूप द्वारा पुनर्भरण : यह तकनीक उस क्षेत्र के लिए उपयोगी है जहां सतही मिट्टी में पानी रिसाव की क्षमता नहीं है या मिट्टी के पानी रिसाव की क्षमता (पारगम्य स्तर) भूमि सतह के 3 मीटर के अंदर मौजूद है। ऐसे क्षेत्रों में जहां अधिक मात्रा में छत से प्राप्त वर्षा जल या सतही बहाव काफी समय के अंतर से भारी वर्षा के कारण उपलब्ध हो पाए। ऐसे में खाई/पिट बनाने में फिल्टर माध्यम से

पानी पुनः भरा जाता है। 100 से 300 मिलीमीटर व्यास के पुनर्भरण कुएं की डिज़ाइन इस तरह तैयार की जाती है कि कम से कम गहराई में काम चल जाए जिसमें छिछले व गहरे जल स्रोत के सामने छेददार पाईप डाला जाता है। पुनर्भरण की प्रक्रिया वाले कुएं को मध्य में रखते हुए जल की उपलब्धता पर आधारित 1.5 से 3 मीटर चौड़ी तथा 10 से 30 मीटर लंबी खाई का निर्माण किया जाता है। खाई में कुएं की संख्या जल की उपलब्धता व क्षेत्र विशेष में चट्टानों की रिचार्जिंग क्षमता के आधार निर्धारित की जा सकती है। यदि जलस्रोत 20 मीटर से ज्यादा गहराई पर उपलब्ध हो तब जल की उपलब्धता के आधार पर 2 से 5 मीटर व्यास व 3 से 5 मीटर गहरी छिछली शाट के अंदर 100 से 300 मिलीमीटर व्यास का रिचार्ज कुआं बनाया जाता है। पुनर्भरण कुओं को जाम होने से बचाने के लिए शाट के तल में फिल्टर पदार्थ भर दिया जाता है।

रिचार्ज ट्रेंच/शाट बोरवेल सहित : यह उन क्षेत्रों के लिए उचित है जहां जल रिसाव का स्तर अधिक गहराई पर होता है। इसमें एक ट्रेंच/शाट 1.5 मीटर से 3 मीटर चौड़ी तथा 10 मीटर से 30 मीटर लंबी एवं 2.5 से 5 मीटर गहरी होती है इसके बीच में 1 या 2 बोरवेल 100 मिलीमीटर से 300 मिलीमीटर तक व्यास वाले जिसकी गहराई 30 से 40 मीटर (पारगम्य परत तक) होती है। बोरवेल के केसिंग पाईप में छेद होता है। शाट या खाई में फिल्टर पदार्थ कंकड़, पत्थर, कोयला तथा रेत आदि को भरा जाता है।

सीधे बोरवेल या ट्यूबवेल हैंडपंप में : इस विधि से भवन की छत से इकट्ठा बरसाती पानी को फिल्टर करके सीधे ट्यूबवेल/बोरवेल में प्रवाहित किया जाता है।

फिल्टर के पूर्व एक सेफ्टी वाल्व लगाया जाना आवश्यक होता है, ताकि पहली बरसात के पानी को ट्यूबवेल अथवा बोर में जाने से पूर्व बाहर निकाला जा सके, क्योंकि पहली बरसात के पानी में छतों की गंदगी साथ में रहती है, जिससे ट्यूबवेल का पानी गंदा होने की संभावना होती है। यह विधि उन क्षेत्रों में उपयोगी है, जहां पर सूखे ट्यूबवेल अथवा कम जलस्तर वाले ट्यूबवेल हैं।

दूसरा : लाइम स्टोन वाले क्षेत्र के लिए :

पुनर्भरण गड्ढा : इस विधि से भवनों की छत से वर्षा के पानी को पुनर्भरण गड्ढा में इकट्ठा किया जाता है। यह पुनर्भरण पिट 1.20 मीटर × 1.20 मीटर × 1.5 मीटर गहराई का खोदकर बनाया जाता है, जिसमें ईंटों की जुड़ाई से लाइनिंग कर उसमें कंकड़, पत्थर, कोयला और बजरी का उपयोग किया जाता है। छतों का पानी पाइपों के माध्यम से गड्ढे में आता है, जिससे आसपास के ट्यूबवेल, कुएं इत्यादि का जल स्तर बढ़ जाता है। इस गड्ढे से लगभग 1 लाख लीटर वर्षा जल हर साल भूजल के रूप में एकत्रित किया जाता है।

जलोढ़ क्षेत्र में जहां रिसन क्षमता वाली चट्टानें या तो ज़मीन की सतह पर या बहुत छिछली गहराई पर हों वहां छत से प्राप्त बरसाती पानी जमा करने का काम पुनर्भरण गड्ढे के माध्यम से किया जा सकता है। यह तकनीक लगभग 100 वर्गमीटर क्षेत्रफल वाली छत के लिए उपयुक्त है व इसका निर्माण छिछले जलस्रोत को पुनः भरने के लिए होता है। छत से जल निकासी के स्थान पर जाली लगानी चाहिए ताकि पेड़ों के पत्ते, डंठल या किसी अन्य ठोस पदार्थ को गड्ढे में जाने से रोका जा सके व ज़मीन पर एक गाद निस्तारण के लिए कक्ष बनाया जाना चाहिए जो महीन कण वाले पदार्थों को पुनर्भरण गड्ढे की तरफ बहने से रोक सके। पुनर्भरण की प्रक्रिया की गति को बनाए रखने के लिए ऊपरी रेत की परत को समय-समय पर साफ़ करना चाहिए। जल इकट्ठा करने वाले कक्ष से पहले बरसाती पानी को बाहर जाने देने के लिए अलग से व्यवस्था होनी चाहिए।

पुनर्भरण खाई : पुनर्भरण खाई 200-300 वर्गमीटर क्षेत्रफल वाली छत के भवन के लिए तथा जहां जलस्तर छिछली गहराई में उपलब्ध होता है उसके लिए उपयुक्त है पुनर्भरण करने योग्य जल की उपलब्धता के आधार पर खाई 0.5 मीटर से 1 मीटर चौड़ी, 1 से 1.5 मीटर गहरी तथा 10 से 20 मीटर लंबी हो सकती है। यह शिलाखंड (5 से 20 सेंटीमीटर), बजरी (5 से 10 मिलीमीटर) एवं मोटी रेत (1.5 से 2 मिलीमीटर) से क्रमानुसार भरा होता है ताकि बहाव के साथ जाने वाली गाद मोटी रेत पर जमा हो जाए जिसे आसानी से हटाया जा सके। जाली छत से जल निकलने वाले पाइप पर लगाई जानी चाहिए ताकि पेड़ों के पत्ते या अन्य ठोस पदार्थों को खाई में जाने से रोका जा सके एवं सूक्ष्म पदार्थों को खाई में रोकने के लिए गाद निकासी कक्ष या संग्रहण कक्ष ज़मीन पर बनाया जाना चाहिए। पहली बरसात का पानी संग्रहण कक्ष में जाने से रोकने के लिए कक्ष से पहले एक दूसरे रास्ते की व्यवस्था की जानी चाहिए। पुनर्भरण प्रक्रिया दर को बनाए रखने के लिए रेत की ऊपरी सतह की सफ़ाई समय-समय पर की जानी चाहिए।

छोटा पुनर्भरण कुआं : यह विधि उन क्षेत्रों के लिए उपयुक्त है जहां पर पानी रिसाव करने वाली संरचनाएं ज़मीन की सतह पर रहती हैं, जिनमें पानी रिस नहीं पाता है। ऐसे स्थानों पर छतों का पानी इकट्ठा कर छोटे पुनर्भरण कुएं में पहुंचाया जाता है। इस विधि में 2.5 फीट व्यास की ज़मीन को 10 से 12 फीट गहराई तक कुआंनुमा खोदकर उसकी लाइनिंग सीमेंट कंक्रीट से की जाती है तथा पुनर्भरण कुएं में पानी को छानने वाली सामग्री भरी जाती है। इसे ऊपर से ढक्कन लगाकर बंद कर देते हैं। इस विधि में लगभग 5 लाख लीटर वर्षा जल इकट्ठा किया जा सकता है। यह विधि उन क्षेत्रों में सबसे अधिक उपयोगी है, जहां पर पीली एवं काली मिट्टी है।

परकोलेशन गड्ढा : इसमें 30 सेंटीमीटर व्यास का बोर खोदा जाता है जो 3 से 10 मीटर गहरा होता है। इसके लिए हाथ से चलाने वाले आगर का इस्तेमाल तब तक किया जाता है जब तक ऊपरी सतह वाली कठोर चट्टान प्राप्त न हो जाए। बोर में यदि कठोर मिट्टी, जैसे क्ले है तो इसमें सीधे पानी छानने वाली सामग्री जैसे कंकड, पत्थर, कोयला, रेत डाल दिया जाता है। इस पाइप में छेद होना चाहिए, जिसमें किनारों से जल का रिसाव हो सके।

सरकार सख्त हो : बरसाती पानी शुद्ध होता है इसे उचित वर्षा जल संचयन संरचना के माध्यम से बचाना हर व्यक्ति की जिम्मेदारी है। स्थानीय शासन को चाहिए कि नया मकान बनाने वालों को बिना वर्षा जल संचयन संरचना के प्रावधान किए उनका नक्शा पास न करे और मकान बनाने के बाद बिजली कनेक्शन वगैरह लेने के पहले भी उपयुक्त संरचना के निर्माण की जांच की जाए। ❑

(लेखक स्वतंत्र पत्रकार हैं।
ई-मेलः narendra_khr@rediffmail.com)

प्रकाशन विभाग की प्रशासनिक सेवाओं पर पुस्तकें

हमारे विक्रय केंद्र:

नई दिल्ली (फोन 24365610, 24367260) दिल्ली (फोन 23890205) कोलकाता (फोन 22488030) नवी मुम्बई (फोन 27570686) चेन्नई (फोन 24917673) तिरुअनंतपुरम (फोन 2330650) हैदराबाद (फोन 24605383) बेंगलूरु (फोन 25537244) पटना (फोन 2683407) लखनऊ (फोन 2325455) गोवाहाटी (फोन 26656090) अहमदाबाद (फोन 26588669)

ज्यादा जानकारी के लिए हमारी वेबसाइट देखें – www.publicationsdivision.nic.in
e-mail – dpd@sb.nic.in, dpd@hub.nic.in

प्रकाशन विभाग
सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार

प्रकाशक व मुद्रक वीना जैन, अपर महानिदेशक द्वारा प्रकाशन विभाग के लिए ब्रजबासी आर्ट प्रेस लिमिटेड, ई-46/11, ओखला औद्योगिक क्षेत्र, फेस-2, नयी दिल्ली-110 020 से मुद्रित एवं प्रकाशन विभाग, सूचना भवन, सी.जी.ओ. कॉम्प्लेक्स, लोधी रोड, नयी दिल्ली-110 003 से प्रकाशित। संपादक : राकेशरेणु

Licenced under U (DN)-53/09-11
आर.एन.आई. 951/57
R.N.I. 951/57

रजि.सं.डीएल (एस)-05/3231/2009-11 तथा डाक व्यय की पूर्व अदायगी के बिना डाक में डालने के लिए लाइसेंस-प्राप्त
Reg. No. D.L.(S)-05/3231/2009-11 Licenced to post without pre-payment at RMS, Delhi
26 जुलाई, 2010 को प्रकाशित • 29-30 जुलाई, 2010 को डाक द्वारा जारी

For Sure
Success
in All Competitive Exams.

Comprehensive Coverage of all Important Events

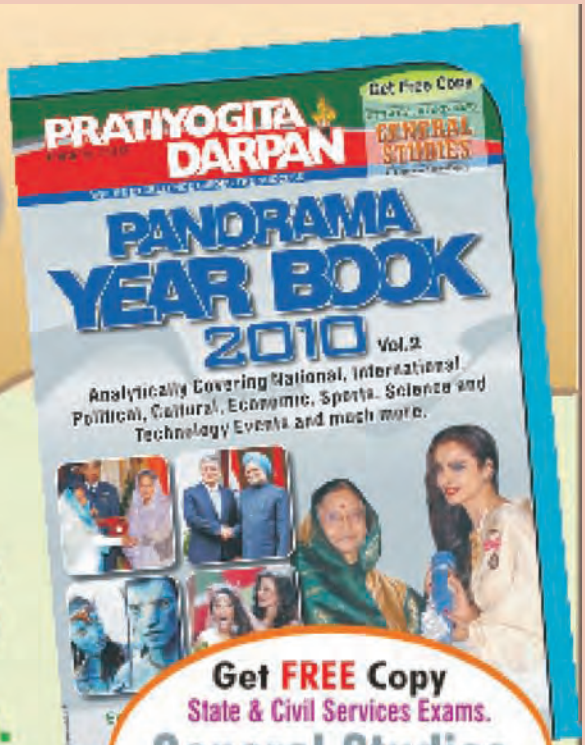

Get FREE Copy
State & Civil Services Exams.
General Studies
Collection of Solved Papers
Code No. 800 ■ Rs. 240.00

HIGHLIGHTS

- ☑ India : At a Glance
- ☑ Indian Economy A Few Facts : At a Glance
- ☑ Indian Polity : At a Glance
- ☑ Geography : At a Glance
- ☑ Analysis of Vital National and International Events
- ☑ Important News from Sports World
- ☑ Science and Technology Developments
- ☑ Trade and Corporate Updates
- ☑ Books and Authors
- ☑ Awards and Honours
- ☑ Important Persons, Places and Projects
- ☑ Summits, Conferences, Committees and Pacts
- ☑ Memorable Points and Much More

Hindi Edition
Code No. 862
Rs. 235.00

PRATIYOGITA DARPAN 2/11 A, Swadeshi Bima Nagar, AGRA-282 002
Ph. : 4053333, 2530966, 2531101; Fax : (0562) 4053330, 4031570. E-mail : publisher@pdgroup.in

To purchase online log on to
www.pdgroup.in

YH-8/10/1